बृहत् जैन शब्दार्णव

द्वितीय खंड।

संग्रहकर्ता—

स्वर्गीय पं० विहारीलालजी जैन मास्टर 'चैतन्य' C. T. बुलंदशहरी–अमरोहा।

सम्पादक—

श्रीमान् ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी,

[समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, तत्वभावना, स्वयंभूस्तोत्र, समाधिशतक, आत्मानुशासन आदिके टीकाकार तथा प्रतिष्ठापाठ, गृहस्थधर्म, जैनधर्म प्रकाश, प्राचीन जैन स्मारक, मोक्षमार्ग प्रकाशक आदि २ ग्रंथोंके संपादक।]

प्रकाशक—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगम्बरजैनपुस्तकालय, कापड़ियाभवन–सूरत।

"जैनमित्र" के ३४ वें वर्षके ग्राहकोंको

भेंट।

PUBLISHER
SITALPRASAD BRAHMCHARI,
Editor
Jain-Mitra Karyalaya,
HIRABAG, GIRGAON, BOMBAY.

Printed by
C. S. DEOLE
at his Bombay Vaibhav Press,
1, Sadashiv Lane, Girgaon,
BOMBAY.

भूमिका ।

अमरोहा निवासी मास्टर विहारीलालजी जैन चैतन्य एक परोपकारी धर्मात्मा थे। उन्होंने बृहत् जैन शब्दार्णवके लिये शब्दोंका संग्रह उनके संकेतोंके साथ एक रजिष्टरमें सम्पादन कर लिया था। तदनुसार वे प्रथम ही जिल्द प्रकाशित करा सके और अचानक कालने उनके तनको चर्वण कर लिया। प्रथम जिल्दमें वे अकारके 'अण्ण' शब्द ही तक देसके। मास्टरसाहबने बहुत विस्तारके साथ शब्दोंके अर्थ लिखे। मेरे वे धर्ममित्र थे। मुझे बहुधा यह ध्यान आजाया करता था कि यह कोष यदि पूर्ण कर दिया जाय तो जिनवाणीके स्वाध्याय करनेवालोंको बहुत ही लाभ हो। ऐसा विचारकर मैंने इस वर्ष अमरोहा जिला मुरादाबादमें अपना वर्षाकाल बिताया, जहां उक्त माष्टर साहबका संग्रहीत पुस्तकालय है। और नगरके बाहर बागमें ठहरा व रात्रि दिन परिश्रम करके आज उस कोषकी पूर्ति की है। मैंने जिस विस्तारसे माष्टर साहबने लिखा है उस विस्तारसे लिखनेके विचारको इसलिये छोड़ दिया कि वैसा कार्य होनेके लिये कई वर्षोंकी आवश्यक्ता है या एकसाथ कई विद्वानोंका मेल मिलाना है। इसलिये इस कार्यको असंभव जानकर शब्दोंके अर्थ व भाव अति संक्षेपमें लिखकर इस बृहत् कोषको पूर्ण किया। हर शब्दके साथ यथासंभव उसका संकेतिक शास्त्रका नाम व पत्र व गाथा व श्लोक नं० देदिया गया है। जिससे शब्दखोजी इस विशेष ग्रन्थको देखकर विशेष मालूम कर सकें। माष्टर साहबने इस कोषमें जैन जेम डिक्शनरी जिसको स्व० बा० जुगमन्दरलाल जज हाईकोर्ट इन्दौरने संकलित किया था, उसके शब्द व पं० गोपालदासजी बरैया कृत जैन सिद्धांत प्रवेशकाके सब उपयोगी शब्द इस कोषमें आगए हैं।

हरएक स्वाध्याय करनेवाले भाई बहनको उचित है कि वह इस कोषको अपने पास रक्खें। यदि कोई इस कोषको ही मात्र स्वाध्यायमें लेकर शब्दोंको समझ जायगा तो उसे बहुतसी प्रसिद्ध व उपयोगी जैन सिद्धांतकी बातोंका ज्ञान होजायगा।

मैंने अपनेमें शक्ति न होते हुए भी इस कार्यको मात्र जिनवाणीके प्रेमवश किया है व पूरी सावधानी रक्खी गई है कि जो अर्थ शास्त्रमें है वही प्रगट किया जावे। तथापि प्रमादवश यदि कोई भूल होगई हो तो विद्वान पाठकगण क्षमा करेंगे व सूचित करनेकी कृपा करेंगे।

अमरोहा।
कार्तिक सुदी ११ वीर सं० २४५७
वि० सं० १९८७ रविवार ता० २-११-१९३०

जैन धर्मका सेवक—
ब्र० सीतलप्रसाद।

× × ×

नोट—इस बृहत् शब्दार्णव द्वितीय भागमें ६०६९ शब्द आए हैं व प्रथम भागके ५२५ शब्दोंको मिलाकर दोनों भागोंमें ६५९४ शब्द हुए हैं। तथा प्रथम भागमें १२०० [illegible] गये हैं। इस कोषका लाभ जैनमित्रके ग्राहकोंको बिना मूल्य ही मिल जावे, इसलिये जैन समाजके धर्मी महाशयोंसे अपील की गई तो हर्षकी बात है कि नीचे लिखे महाशयोंने [illegible] कृपा हुई है—

आवश्यकता है । इस दूसरे भागमें महावीर भगवानके निर्वाणके समय जैनधर्मकी क्या अवस्था थी, दूसरे कौन कौन धर्म थे, वे कैसी अवस्थामें थे, कौन कौन राजा जैनी थे, किन किन देशोंमें जैनधर्मका प्रचार था, जैनसाहित्य और मुनियोंका संघ किस अवस्थामें था, दूसरे धर्मोंपर उसका क्या प्रभाव पड़ा, पीछे कब तक जैनधर्मकी उन्नतिका काल रहा और कब उसकी अवनति आरंभ हुई, अवनति होनेके कारण क्या थे, संघभेद कब और क्यों हुए, साम्प्रदायिक भेद, उपभेद, गण, गच्छ, अन्वयादि कितने हुए, किन कारणोंसे उनमें मतविभिन्नता हुई, किन किन भाषाओंमें जैनसाहित्य अवतीर्ण हुआ, और इस समय जैनधर्म जैन-साहित्य और जैनजातिकी क्या अवस्था है, इत्यादि बातोंका समावेश होना चाहिए । इसका सम्पादन करना ऐतिहासिक तत्त्वोंके मर्मज्ञ और नाना भाषाओंके ज्ञाता विद्वानोंका कार्य है । उसके लिये उपयुक्त साधनोंकी भी बहुत आवश्यकता है । इस लिये उसकी पूर्तिकी चर्चा करना मेरे लिये "छोटा मुंह बड़ी बात' की कहावतको चरितार्थ करना है । परन्तु इस भागके अन्तर्गत जो ग्रन्थ-कर्त्ता विद्वानों और आचार्योंका इतिहास है, जैनधर्मके ग्रन्थोंका स्वाध्याय करते रहनेसे उसका थोड़ा बहुत परिचय मुझे होता रहता है और परिश्रम करनेसे उसके थोड़े बहुत साधन इधर उधरसे भी मिल जाते हैं, इस लिये मैंने उसके एक अंशकी पूर्ति करनेका यह प्रयत्न किया है । मुझे आशा है कि जबतक इस विषयका कोई अच्छा ग्रन्थ नहीं बना है, तबतक समाज एक अल्पज्ञकी इस छोटीसी भेंटको सस्नेह स्वीकार करनेकी उदारता दिखलायगा और यदि इसमें

कहा कि मेरी जो अंतिम इच्छा है उसका यह कागज आप लेवें और इसी मुताबिक व्यवस्था करना। तथा आप व पं० परमेष्ठीदासजी मिलकर किसी प्रकारसे भी इस कोषका काम अवश्य२ पूरा करना। तथा मेरा सब साहित्य विषयक सामान आप सम्हाल लें व उसकी उचित व्यवस्थित करना क्योंकि मेरे जीवनका मुझे भरोसा नहीं है। ऐसा कहतेर आपकी आंखोंमें अश्रु आगये थे! फिर सुवह होते ही जहां आप कोषका कार्य कर रहे थे वहां हम गये और सब सामग्री सम्हाली। परन्तु सुवहसे आपकी बीमारीमें कुछ पल्टा आया व धीमेर आपको आराम मालूम होने लगा। तब दो दिन ठहरकर हम ब्रह्मचारीजीकी आज्ञासे सूरत वापिस लौटे और श्रीमान् ब्रह्मचारीजीको १५-२० दिनमें आराम होगया व आपने तुर्त ही अपूर्ण कार्य हाथमें लिया और उसे फिर परिश्रम करके पूर्ण किया। व उसके बाद ही अमरोहा छोड़ा था।

अब ग्रन्थका संपादन तो हो गया परन्तु उसका प्रकाशन करना सहज न था क्योंकि ऐसे ग्रन्थ अधिक नहीं बिकते व प्रथम भाग बहुत कम बिका था। अतः इसको अब कैसे प्रकट करना चाहिये इसी विचारमें आप संलग्न रहतेर दो तीन माह बाद सूरत पधारे और हमसे इस विषयमें परामर्श किया। तो अंतमें हम दोनोंने यह निश्चय किया कि कुछ सहायता प्राप्त करके इसको छपाकर 'जैनमित्र' के ग्राहकोंको भेंटमें दिया जावे तो अच्छा प्रचार होजावेगा। यदि इसके लिये कमसे कम ८००) श्री० ब्रह्मचारीजी इकट्ठे कर दें तो शेष हमने लगानेका स्वीकार किया। फिर श्री० ब्रह्मचारीजीने देहली जाकर देहली व नजीबाबादसे ८००) की सहायता लिखवाई जिसमें १००) नगद मिले। उसके बाद छपाईका काम धीरे२ होसका व अंतमें श्री० ला० जौहरीमलजी शर्राफ देहलीके परिश्रमसे कुल ७००) वसूल हुये व एक दानीके १००) स्वीकार किये हुये नहीं आये तब शेष १००) भी हमें लगाने पड़े। इस प्रकार इस महान ग्रंथको पूर्ण छापकर प्रकट किया है। अतः इस ग्रन्थके संपादन व प्रकाशन कार्यके लिये श्रीमान् ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजीने जो जीजानसे परिश्रम किया है उसके लिये सारा जैनसमाज व विशेष करके 'जैनमित्र' के पाठक व हम ब्रह्मचारीजीके हृदयसे सदाके लिये आभारी रहेंगे। अब हम जैनमित्रके ग्राहकोंसे निवेदन करेंगे कि वे इस बृहत् जैन कोषको सम्हाल कर रखें तथा जब कभी कोई भी जैन शब्दका अर्थ जानना हो तो इस कोषका उपयोग करें तथा इस कोषको प्राप्त होते ही एक-बार इसका स्वाध्याय ध्यानपूर्वक शांतिसे अवश्य कर जावें जिससे आपको जैनधर्मके सिद्धांतका ज्ञान होजावे।

इस ग्रन्थका प्रथम खंड जिसमें 'अ' से 'अण्ण' तकके शब्द हैं व जो विस्तृतरूपसे स्वाध्याय करने योग्य लिखा है उसे हरएक पाठक बिजनौरसे या हमसे मगा लेवें व ग्रंथ पूरा करलेवें तब ठीक होगा।

अंतमें हम फिरसे श्रीमान् ब्रह्मचारीजीका व इस ग्रन्थमें ७००) सहायता देनेवाले शास्त्रदानी महानुभावोंका आभार मानकर इस अल्प निवेदनको पूर्ण करते हुए आशा रखते हैं कि ऐसे शास्त्रदानका अनुकरण जैन समाजमें अधिकर होता रहे।

सूरत-वीर सं० २४६०
प्र० वैशाख सुदी ३
ता० १९-४-३४.

जैनसमाज सेवक—
मूलचंद किसनदास कापड़िया,
प्रकाशक।

कवि हस्तिमल्ल, पुष्पदन्त, प्रभाचन्द्र आदि विद्वानोंका परिचय रहेगा।

जैनहितैषीमें उक्त लेखोंके प्रकाशित होनेके बाद जो नई नई बातें मालूम हुई हैं, वे सब इस पुस्तकमें शामिल कर दी गई हैं और जो बातें पहले भ्रमवश लिख दी गई थीं, उनका इसमें संशोधन कर दिया गया है। अतएव जो महाशय इन लेखोंको पहले जैनहितैषीमें पढ़ चुके हैं उनसे भी हमारा अनुरोध है कि वे एक बार इस संग्रहका स्वाध्याय अवश्य करें। उन्हें इसमें बहुत कुछ नवीनता मिलेगी। साधारण पाठकोंके लिये तो इसमें सब ही कुछ नवीन है। वे तो इसे मन लगाकर पढ़ेंगेही।

जिस समय इस पुस्तकका छपाना प्रारंभ हुआ,उसी समय मैं बीमार हो गया, इसलिये इसका संशोधन जैसा चाहिए वैसा नहीं हो सका। आशा है कि पाठक इस दोषपर ध्यान न देकर पुस्तकमें यदि कुछ गुण हों तो केवल उन्हें ही ग्रहण करनेकी उदारता दिखलावेंगे।

नाथूराम प्रेमी।

शुद्धाशुद्धि पत्र।

पृ.	का.	ला.	अशुद्धि	शुद्धि
२८१	२	३२	२ पहर	८ पहर
२८७	१	१६	८–६	६
२८९	१	३	बनाया हो	बनाया हो उसे लेते हैं
,,	,,	१८	अधः	अन्य
२९३	२	२४	३३ जाति	२३ जाति
२९४	२	२८	अवस्था	अनवस्था
२९५	१	१	पासवाला	व्यासवाला
,,	,,	८	शास्त्रका कुंड	शलाका कुंड
,,	,,	२४	माननेमें	अनादि माननेमें
२९८	२	९	नहीं रखना	रखना
३०७	१	१६	अप्रत्याख्यान	प्रत्याख्यान
,,	२	१७	अनुपम	अनुभय
,,	,,	२४	अनुभवमई	अनुभयमई
३०८	१	२५	पर मारद्वा	परमाणु
३०९	१	२७	पदार्थ	परार्थ
३१०	१	२३	(२६४–१)	($२^{६४}$–१)
३१३	१	२४	पासवाले	व्यासवाले
,,	२	७	क्रमानुष	कुमानुष
३१४	१	२८	विमाए	विद्याएँ
३१४	२	१७	हेतक	शोक
३१६	१	२९	रुदन	भोजन
३२५	२	३५	प्र०	पु०
३२६	२	२०	दुःखी	दुखर
३३०	१	१३	घम	घन
३३०	१	१५	वैसुसिक	वैसृसिक
३३१	२	१३	वादी न	वादी व
३३२	१	१५	पारस	या रस
३३६	१	१	अमृतां	अमृतं
३३६	१	२७	हवि	द्वीप
३३८	१	९	योग्य	योग
३३८	१	१५	मानेमें	अन्तमें
३४०	१	१८	तक	एक
३४१	१	३०	देडक	इन्द्रक
३४१	२	२८	निवृत्ति,	पदार्थ,
३४१	१	३५	एक अन्तर	एक अक्षर
,,	२	६	एक दृष्टि	एकड़ी
३५२	२	२२	सुर्यगुल	सूच्यंगुल
३५५	१	३५	त्यागी हो	त्यागी न हो

पृ.	का.	ला.	अशुद्धि	शुद्धि
३६२	१	२१	त्रिओंके	सिद्धोंके
३७०	२	२३	घात करना	घात न करना
,,	२	२५	न होने देना	होने देना
,,	२	३१	घात न करना	घात करना
३७२	१	९	ज्ञान उल्टे	उल्टे
३७४	१	१२	अनुष्ट	अनुत्तर
,,	१	२५	कर लेंगे	करलें
३८५	१	२१	पड़ते	पतले
३८७	१	८	पूर्णनयका	पूर्ण
३९०	२	४	अन्वक	अधिक
३९२	१	५	७×७×२×२	७×७×३८$\frac{१}{२}$×२
३९९	१३	३४	विनन	विनय
४१२	२	२३	द्रव्यकर्म नोकर्म,	नोकर्म
४१५	१	३५	४४०००	४२०००
४१६	२	११	कवंति....मांति	कपंतिहिंसंतिःति
४२०	२	१७	भीतरसे	भीतसे
४२३	२	३१	वेयगाद्दा	वेय गाथा
४२५	२	२५	बतावे	बचावे
४२७	१	३	निष्ठायक	निष्ठापन
,,	१	८	निष्ठायन	,,
४२९	१	८	सर्ग	सर्व
४३१	१	१८	अनायोग	अनाभोग
४३२	१	१	जबतक	जब एक
,,	,,	२८	कालितक	फालितक
४३३	१	९	निनदल	निजरस
४३९	१	१	रहित	सहित
,,	,,	२	पापोंका	मायोंका
४४१	०	१	वर्गणादि	वर्णादि
४४५	०	१३	३०६	३६
४४८	२	३	पहुँच	पहुँचा
४५२	२	१	दक्षिण	पश्चिम
४५५	१	१३	केवलज्ञान हुए	केवलज्ञान [illegible]
४५५	२	३३	$\frac{८×२×१×८}{२}$	$\frac{८×[illegible]×१×८}{२}$
४५५	२	३०–३४–३६	शांति	क्षांति
४६१	१	५	६००००	[illegible]
४६१	२	१८	लगते	[illegible]
४६१	२	२	ला०	[illegible]

बृहत् जैन शब्दार्णव।

द्वितीय खण्ड।

मङ्गलाचरण।

अर्हत् सिद्धाचार्य गुरु, साधु चरण नमि माथ।
कोष कार्य आरंभमें, जिनवाणी दे साथ॥ १॥

*अ

(प्रथम खण्ड पृ० २८० से आगे)

अतदाकार–जिसका आकार निश्चित न हो। सं० प्रतिमा या मूर्ति या स्थापना। जिसकी मूर्ति या प्रतिमा या स्थापना की जाय उसका वैसा ही रूप न बनाकर किसी भी वस्तुमें उसको मान लेना। जैसे शतरंजकी गोटमें हाथी, घोड़ा, बादशाह मानना। तदाकार स्थापनामें वैसा ही रूप बनाकर स्थापना करते हैं जिससे रूप देखते मात्र हीसे देखनेवालेको जिसका रूप है उसका स्वरूप झलक जाता है परन्तु अतदाकार स्थापनामें दूसरेके कहनेसे ही मालूम पड़ता है कि यह अमुककी स्थापना है। "परोपदेशात् एव तत्रसोऽयम् इति" (श्लो० अ० १ सू० ९ श्लोक ५४)।

अतिकाम–रावणकी सेनामें रामके साथ युद्ध करते हुए एक योद्धा (प्रा. इ. २ पृष्ठ १६७)।

अतिकाय–महोरग जातिके व्यन्तर देवोंके एक इन्द्रका नाम। आठ तरहके व्यंतर देव होते हैं। हरएकके दो दो इन्द्र दो दो प्रत्येन्द्र होते हैं। १६ इन्द्रोंके नाम हैं–किन्नर जातिके किन्नर व किंपुरुष, २ किंपुरुषोंके सत्पुरुष, महापुरुष, ३ महोरगोंके अतिकाय, महाकाय, ४ गंधर्वोंके गीतरति, गीत यश, ५ यक्षोंके पूर्णभद्र माणिभद्र, ६ राक्षसोंके भीम, महाभीम, ७ भूतोंके प्रतिरूप, अप्रतिरूप, ८ पिशाचोंके काल, महाकाल। (सर्वार्थ० अ० ४ सू० ६)

अतिक्रम–उल्लंघन, मर्यादाको लांघ जाना। जो प्रमाण किया हो उससे अधिक रख लेना सो प्रमाणातिक्रम है (रा० अ० ७ पृ० २९), छोटा मनका दोष, कोई प्रतिज्ञा करी हो उसके खंडनका एक भाव मात्र आकर रह जाना अर्थात् मनकी शुद्धिमें दोष लगना (अमितगति द्वा० श्लोक ९) अतीचार, प्रतिक्रमण।

अतिक्रमण–अतिक्रम, इंद्रिय विषयकी इच्छा (मू० १०२६)।

अतिक्रांत–उल्लंघन कर गया।

अतिक्रांत-प्रत्याख्यान–चतुर्दशी आदि पर्वमें उपवास करके उनके बीतनेपर भी जो पूर्णिमा आदि तिथियोंमें चार प्रकारके आहारका त्याग कर देना (मू० ए० ४२६)।

अति रुद्र–राजा–यह भरतचक्रीका नवमा पूर्व भव। तब यह कुकर्म करके नरक गया था। (आदि० ६७)।

अतिचार–व्रतमें शिथिलता व असावधानी [illegible] की हुई मलिनता एक देश भंग। विषयोंमें [illegible] वर्तना, (मू० १०२६)।

क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं,
व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनम्।

* प्रारम्भ ता० १९-७-२० [illegible]।

होगा। जैसा कि, महाकवि धनंजयने भगवानकी स्तुति करते समय कहा है:—

तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य।
तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजन्ति॥

अभिप्राय यह है कि, हे भगवन्! जो लोग आपका इस प्रकार कुल प्रगट करके प्रशंसा करते हैं कि आप अमुकके पुत्र हैं और अमुकके पिता हैं, वे मानो हाथमें आये हुए सोनेको पत्थर समझकर फेंक देते हैं!

वास्तवमें बात ऐसी ही है। जिनसेनस्वामी और गुणभद्रस्वामीके कुलका पता लगानेसे उनकी उस प्रशंसामें कुछ वृद्धि नहीं हो सकती है, जो कि उनकी कृतिसे और उनके अपार पांडित्यसे हो रही है। परन्तु वर्तमानमें ऐतिहासिक दृष्टिसे इसका विचार करनेकी भी आवश्यकता है। अनुमानसे हम इतना कह सकते हैं कि, या तो ये भट्टाकलंकदेवके समान राजाश्रित किसी उच्च ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए होंगे, या इन्होंने जैन ब्राह्मण(उपाध्याय)और चतुर्थ पंचम आदि तीन चार जातियोंमेंसे किसी एकको वा दोको अपने जन्मसे पवित्र किया होगा। क्योंकि जिस प्रान्तमें ये रहे हैं तथा जहां इनके जन्मकी संभावना है, वहां इन्हीं जातियोंमें जैनधर्म पाया जाता है। भगवान् जिनसेनके विषयमें तो निश्चयपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता है। परन्तु गुणभद्रस्वामीके विषयमें द्राविड़भाषाके चूडामणिनिघंटुसे पता लगता है कि, वे तिरुनरुङ्कुण्डम् (Tirunarunkundam) नामक ग्रामके रहनेवाले थे, जो कि इस समय दक्षिण

महासिंधुकी वेदी व अन्य गुप्त स्थानोंमें छिप जाते हैं। दयावान विद्याधर या देव बहुतसे मानव व पशुओंके युगलोंको सुरक्षित स्थानपर ले जाते हैं। इस अनिष्ट वर्षासे शेष प्राणी नष्ट होजाते हैं। पृथ्वी जलकर १ योजन (२००० कोश) तक नीचे चूर्ण हो जाती है। फिर उत्सर्पिणीका प्रथम अतिदुःखम काल प्रारम्भ होता है। तब सात दिन क्रमसे जल, दुग्ध, घी, अमृत आदि रसके जलकी वर्षा ४९ दिनतक होती है, जिससे पृथ्वी जम जाती है, वृक्षादि निकलने लगते हैं। जो मानव व पशु चले गए थे व लेजाएं गए थे सो सब लौट आते हैं। (त्रि० ८६९–८७०)।

अतिपिंगल–पिंगल कोतवालका पुत्र–सुलोचनाके पूर्वभवकी कथामें (आदि० ४६–२६१)

अतिपुरुष–आठ प्रकार व्यंतर जाति देवोंमें किंपुरुष जातिके १० प्रकार हैं, उनका छठा भेद। वे १० हैं–१ पुरुष, २ पुरुषोत्तम, ३ सत्पुरुष, ४ महापुरुष, ५ पुरुषप्रिय, ६ अति पुरुष, ७ मरु, ८ मरुदेव, ९ मरुत्प्रभ, १० यशस्वान (त्रि० २५९)

अतिप्रसंग–एक पाप स्थान। जो साधु विना गुरुकी आज्ञाके स्वच्छंद एकाकी विहार करता है उसके आज्ञालोप, अति प्रसंग, मिथ्यात्व आराधन, सम्यक्तघात, संयमघात ये पांच पाप स्थान होते हैं (मू० १५४), व्रतकी मर्यादा उल्लंघनका निमित्त।

अतिशायेण–अति प्रचुरतासे, बहुत अधिक। अवसर्पिणीके पहले कालमें ३ दिन बीचमें छोड़कर, दूसरेमें २ दिन, तीसरेमें १ दिन, बीचमें अंतर देकर, चौथेमें १ दिनमें १ वार, पांचवेंमें कईवार व छठे कालमें अति बहुवार वहांके निवासी भोजन करते हैं (त्रि० ७८९)

अतिबल–आगामी उत्सर्पिणी कालमें भरतक्षेत्रमें होनेवाले ७वें नारायण (त्रि० ८८०), ऋषभदेवके पूर्वभवमें राजा महाबलके पिता (आदि० ४-१२२); ऋषभदेवके ७५वें गणधर (हरि० पृ० १६६) सूर्यवंशमें भरतचक्रीके पीछे एक राजा विद्युद्द विद्याधरके पूर्व भवोंमें साकेतपुरका राजा (हरि० पृ० २९३); सुमतिनाथ तीर्थंकरके पूर्वभवके मांडलिक राजाका नाम (हरि० पृ० ५६५); भरतके आगामी उत्सर्पिणीके छठे नारायण (ह० पृ० ५६६); सुकुमाल स्वामीके पूर्व भवमें कौशाम्बीका राजा (आ० सार० पृ० ९४)।

अतिबाल विद्या–उपासकाध्ययनी ७ वें अंगके १० अधिकार वस्तु हैं, उनमें पहला। वे १० हैं–१ अतिबालविद्या, २ कुलविद्या, ३ वर्णोत्तमत्त्व, ४ पात्रत्व, ५ सृष्ट्यधिकारत्व, ६ व्यवहारेशिता, ७ अवध्यत्त्व, ८ अदंड्यता, ९ मानार्हता, १० प्रजासंबंधांतर। ७ द्विजोंको बाल्यकालसे विद्याभ्यास करानेका उद्योग। आदि० प. ४०, १७५.... १७८)

अतिभारारोपण–न्याय रूप भारसे अधिक बोझा लादना (सर्वा० ७।२५) यह अहिंसा अणुव्रतका चौथा अतीचार है, अतिभारवहन परिग्रहप्रमाण अणुव्रतका प्रथम अतीचार, (रत्न० ६२)

अतिमब्बे–देखो शब्द अजितपुराण (प्र० जि० पृ० १८५–६) कर्णाटक जैन कविरत्न (ई० सन् ९४९) की पुत्री, चालुक्यनरेश आहवमल्लका सेनापति नागदेवकी स्त्री, एक हजार जिनप्रतिमाएं बनवाईं। लाखोंका दान किया। इसको दानचिन्तामणि कहते थे (क० नं० १६)।

अतिमुक्तक–राजा कंसका बड़ा भाई मुनि (हरि० पृ० ३२५)।

अतिरथी–समस्त योद्धाओंमें मुख्य जरासंधके मुकाबलेमें कृष्णकी सेनामें रथनेमि, कृष्ण और बलभद्र, ये अतिरथी थे (हरि० पृ० ४६८)।

अतिलौल्य–अति गृद्धता, भोगोंकी अतितृष्णा (रत्न० ९०) यह भोगोपभोग परिमाण व्रतका तीसरा अतीचार है।

अतिवाहन–शक्तिसे अधिक वाहनोंको चलाना। यह परिग्रह प्रमाण व्रतका प्रथम अतीचार है (रत्न० ६२)।

ज्येष्ठ शुक्लकी पंचमी, सुन्दर लगन विचार ।
महापुराण स्थापित करौ, सब ग्रन्थनकौ सार ॥ १४॥
चेला श्रीगुणभद्रजी, गुरुआज्ञाकौं धार ॥
आदि अंत तक सब कथा, रच दीनी विस्तार ॥१५॥
तिनहीका परिपट्टमें, सब मुनिका सरदार ।
ये मुनी जिनचन्द्रजी, संयमपालनहार ॥ १६ ॥
ष्य भये तिनके सही, कुन्दकुन्द मुनिराज ।
ध्यानिनमैं उत्तम भये, जैसें सिरके ताज ॥ १७ ॥

इसमें एक तो यह बात बिलकुल गलत है कि, जिनसेनजीके गुरुका नाम अपराजित था । क्योंकि महापुराणमें तथा पार्श्वाभ्युदय आदिमें उन्होंने स्वयं अपने गुरुका नाम वीरसेन लिखा है, जैसा कि आगे दिखलाया जायगा । दूसरे गुणभद्रकी शिष्य परिपाटीमें जिनचन्द्र और कुन्दकुन्दको बतलाना अच्छी तरहसे स्पष्ट कर रहा है कि, ग्रन्थकर्त्तामें ऐतिहासिक ज्ञानका सर्वथा अभाव था। कहां तो विक्रमकी पहली दूसरी शताब्दिके कुन्दकुन्दाचार्य और कहां नवमी शताब्दिके गुणभद्राचार्य ! यदि कुन्दकुन्दकी परिपाटीमें गुणभद्रको लिखते, तो भी ठीक था । परन्तु यहां तो गुणभद्रकी परिपाटीमें कुन्दकुन्दको लिखकर उलटी गंगा बहाई गई है !

इसके सिवाय पं० बखतरामजीकृत बुद्धिविलास नामक भाषापद्यग्रन्थमें खंडेलाका राजा खंडेलगिरि बतलाया है, जो चौहान वंशका था और जिनसेनस्वामीका उक्त नगरमें कहींसे विहार करते

अतीचार—देखो अतिचार।

अतीतकाल—जो समय वीत गया हो। सं०—चौवीसी—जो २४ तीर्थंकर इस कालके पहले हो गए हों। इस भरतक्षेत्रमें भूत चौवीसीके तीर्थंकर होचुके हैं। वे हैं—१ निर्वाण, २ सागर, ३ महासाधु, ४ विमलप्रभ, ५ शुद्धाभदेव, ६ श्रीधर, ७ श्रीदत्त, ८ सिद्धाभ, ९ अमलप्रभ, १० उद्धार, ११ अग्निदेव, १२ संयम जिन, १३ शिव जिन, १४ पुष्पांजलि, १५ उत्साह, १६ परमेश्वर, १७ ज्ञानेश्वर, १८ विमलेश्वर, १९ यशोधर, २० कृष्णमति, २१ ज्ञानमति, २२ शुद्धमति, २३ श्रीभद्र, २४ अनंतवीर्य। (पंचकल्याणकदीपिका द्वि० अ० पृ० ३२)

अतीत ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्यनिक्षेप—किसी पदार्थके ज्ञाताका शरीर जो उस विषयमें उपयुक्त नहीं है, नो आगम द्रव्यनिक्षेप कहलाता है। उनका शरीर जो भूतकालमें था अब नहीं है सो अतीत, व भूतज्ञायक शरीर है। (गो. क. ५५-५६)

अतीत स्मरण अब्रह्म—पूर्व भोगे हुए व सुने हुए भोगोंको याद करना। (भ० पृ० २०७)

अतुलार्थ—समवसरणकी रचनामें उत्तर दिशाका एक दरवाजा। (हरि० पृ० ५०८)

अतींद्रिय—जो इंद्रियोंके गोचर न हो। सं० सुख—वह सुख जो इंद्रियोंकी सहायता विना आत्माके ही द्वारा प्राप्त हो। ज्ञान—केवलज्ञान जो आत्माका स्वभाव है। इस ज्ञानमें विना क्रमसे सर्व जाननेयोग्य पदार्थ एक कालमें झलक जाते हैं। इसमें किसीकी सहायताकी जरूरत नहीं (सर्वा० अ० १ सू० ९ व २९) "सर्व द्रव्यपर्यायेषु केवलस्य"—केवलज्ञान सर्व द्रव्य व पर्यायोंको जान सक्ता है।

अत्यनुभव—विषय भोगोंको अत्यन्त आसक्त होकर सेवना, यह भोगोपभोग परिमाण व्रतका पांचवां अतीचार (रत्न० ९०)।

अत्यन्ताभाव—एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यमें बिलकुल न होना, एकका दूसरेमें अभाव। जैसे जीवका अभाव पुद्गलमें व पुद्गलका अभाव जीवमें। अभाव चार तरहका होता है। प्रागभाव—एक किसी द्रव्यमें उसकी होनेवाली पर्यायका अभाव जैसे—मिट्टीमें घरकी पर्याय। प्रध्वंसाभाव—एक किसी द्रव्यमें उसकी भूतपर्यायका अभाव, जैसे कपाल खंडमें टूटे हुए घटका अभाव। इतरेतराभाव या अन्योन्याभाव—एक द्रव्यकी दो भिन्न २ पर्यायोंमें वर्तमानमें एक दूसरेका अभाव। जैसे घटमें पटका, पटमें घटका। दोनों एक पुद्गल द्रव्य हैं इससे कभी घटके परमाणु पट रूप भी होसक्ते हैं व पटके घटरूप होसक्ते हैं, अत्यन्ताभाव बिलकुल ही पृथक् द्रव्योंमें परस्पर होता है (आ० मी० १०-११ व जैं० सि० प्र० १८१-१८५)।

अत्र अवतर अवतर—पूजा करते हुए पहले जिसकी पूजा करनी होती है उसका सन्मान करते हुए—ये मंत्र पढ़ते हैं, अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट्। भाव यह है कि—हे पूज्य! यहां पधारिये, यहां विराजिये, यहां आकर मेरे हृदयके निकटवर्ती होजाइये।

अत्रिलक्षणा—जिसमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीन लक्षण एक साथ न हो। एक एक लक्षण उत्पाद या व्यय या ध्रौव्य अत्रिलक्षण है। (सि० द० पृष्ट २०)।

अथाख्यात चारित्र—चारित्र मोह या सर्व क्रोधादि कषायोंके नाश होजानेपर या उनके उपशम होजानेपर जो निर्मल वीतराग भाव या जैसा चाहिये वैसा चारित्र प्रगट हो। यह ११वें व १२वें, १३वें, १४वें गुणस्थानमें होता है। इसको यथाख्यात चारित्र भी कहते हैं। यह आत्माके स्वभावमें स्थितिरूप है। (तत्वार्थ अ० ९ सू० १८)

अयाणा या अयाना—[illegible] जो [illegible] आदिका करता है। इसकी मर्यादा ८ [illegible] २४ [illegible] सहित नहीं है। [illegible] होसक्ते हैं। देखो अजान शब्द ([illegible] ५६)।

१ नान्दिसंघ, २ देवसंघ, ३ सेनसंघ और ४ सिंहसंघ । और इन संघोंमें भी बलात्कार, पुन्नाट, देशीय, काणूर आदि गण तथा सरस्वती, पारिजात, पुस्तक, आदि गच्छ स्थापित हुए । ये भेद केवल मुनियोंके संघरागके कारण हुए हैं, किसी प्रकारके मतभेदसे नहीं हुए हैं । अर्थात् इन संघोंके तथा गण गच्छोंके मान्य पदार्थोंमें श्वेताम्बरों और दिगम्बरों जैसा अन्तर नहीं है, सब ही एक ही मार्गके अविभक्त उपासक हैं । जैसा कि समयभूषणमें श्रीइन्द्रनन्दिसूरिने कहा है:—

तदेव यतिराजोऽपि सर्वनैमित्तकाग्रणीः ।
अर्हद्बलिगुरुश्चक्रे संघसघट्टनं परम् ॥ ६ ॥
सिंहसंघो नन्दिसंघः सेनसंघो महाप्रभः ।
देवसंघ इति स्पष्टं स्थानस्थितिविशेषतः ॥ ७ ॥
गणगच्छादयस्तेभ्यो जाताः स्वपरसौख्यदाः ।
न तत्र भेदः कोप्यस्ति प्रव्रज्यादिषु कर्मसु ॥ ८ ॥

---

१. श्रुतावतार कथामें लिखा है कि, जब अर्हद्बलिआचार्यने युगप्रतिक्रमणके समय मुनिजनोंके समूहसे पूछा कि, “ सब यति आ गये ? ” तब उन्होंनें कहा कि, “हां भगवन् । हम सब अपने २ संघसहित आ गये ।” इस वाक्यसे अपने २ संघके प्रति मुनियोंकी निजत्वबुद्धि वा रागबुद्धि प्रगट होती थी । इससे आचार्य महाराजने निश्चय कर लिया कि, अब आगे यह जैनधर्म भिन्न २ संघों वा गणोंके पक्षपातसे ठहरेगा, उदासीन भावसे नहीं । इस प्रकार विचार करके उन्होंने जो मुनि गुफामेंसे आये थे, उनकी नन्दि, जो अशोक वाटिकासे आये थे, उनकी देव, जो पंचस्तूपोंसे आये थे उनकी सेन और जो, खंडकेसर वृक्षोंके नीचेसे आये थे, उनकी सिंह संज्ञा रक्खी ।

तींक लोकव्यापी एक अखण्ड द्रव्य है, जो स्वयं ठहरनेवाले जीव और पुद्गलोंको ठहरनेमें सहकारी होता है, प्रेरणा नहीं करता है। जैसे छाया पथिकको ठहरनेमें कारण होती है वैसे ही उदासीनपनेसे यह कारण पड़ता है। इतना जरूरी है कि यदि इसकी सत्ता न माने तो कोई वस्तु थिर नहीं रह सकेगी। यह लोक जो ३४३ घन राजू प्रमाण एक मर्यादामें है यह न रहेगा, यदि अधर्म द्रव्यको न माना जायगा। यह द्रवण या परिणमनशील है, इससे इसको द्रव्य कहते हैं। इसमें लोकव्यापीपना है। अर्थात् यह असंख्यात बहु प्रदेशी है। इसलिये इसको अस्तिकाय कहते हैं। एक प्रदेशीको अस्तिकाय नहीं कह सक्के। जैसे कालद्रव्य (सर्वा० अ० ५ सू० १ व ८ व १३ व १७)।

अधिकरण–आधार–जिसमें कोई वस्तु रहे। पदार्थोंको जाननेकी ८–६ रीतियां हैं १ निर्देश–स्वरूप कथन, २ स्वामित्व-मालिक बताना, ३ साधन-होनेका उपाय बताना, ४ अधिकरण–कहां वह रहती है सो बताना, ५ स्थिति–कालकी मर्यादा बताना, ६ विधान–उसके भेद बताना (सर्वा० अ० १ सू० ७), कर्मोंके आनेके कारण जो भाव हैं उनमें अधिकरण भी है। जीव व अजीवके भेदसे दो प्रकार अधिकरण है। जीवाधिकरण अर्थात् जीवोंके भावोंके आधार, जिनसे कर्म आते हैं। वे १०८ तरहके होते हैं। संरंभ (इरादा) समारम्भ (प्रबन्ध) आरम्भ (शुरू करना) इन तीनको मन, वच, काय, व कृत, कारित अनुमोदना व क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायोंसे गुणनेपर ३×३×३×४= १०८ भेद होजाते हैं। जैसे क्रोध सहित मन द्वारा कृत संरंभ एक भेद हुआ कि क्रोधके वश हो मनमें किसीको मारनेका विचार करना। अजीवाधिकरणके ११ भेद हैं जिनके निमित्तसे कर्मोंके आस्रवका निमित्त होता है। देखो शब्द अजीवाधिकरण (प्र० जि० पृ० १९३–२०३)

अधिकरणिकी क्रिया–हिंसाके उपकरणोंको ग्रहण करनेकी क्रिया। यह २५ क्रियाओंमेंसे ८वीं क्रिया है जो आस्रवके आनेमें कारणभूत है। देखो अपकारी क्रिया शब्द (प्र० खं० पृ० ७६)।

अधिकरणिक–मुख्य जज–गुजरातमें वल्लभी राजाओंका राज्य था, उस समय १८ अधिकारी नियत होते थे–(१) आयुक्तिक या विनियुक्तिक–मुख्य अधिकारी (२) द्रांगिक–नगरका अधिकारी (३) महत्तरि–ग्रामपति, (४) चाटभट–पुलिस सिपाही, (५) ध्रुव ग्रामका हिसाब रखनेवाला वंशज अधिकारी, तलाटी या कुलकरणी, (६) अधिकरणिक मुख्य जज, (७) डंडपासिक–मुख्य पुलिस आफिसर, (८) चौरोद्धरणिक-चोर पकड़नेवाला, (९) राजस्थानीय–विदेशी राजमंत्री, (१०) अमात्यमंत्री, (११) अनुत्पन्नादान समुद्ग्राहक–पिछलाकर वसूल करनेवाला, (१२) शौल्किक–चुंगी आफिसर, (१३) भोगिक या भोगोद्धरणिक–आमदनी या कर वसूल करनेवाला (१४) वर्त्मपाल–मार्गनिरीक्षक सवार, (१५) प्रतिसारक क्षेत्र और ग्रामोंके निरीक्षक, (१६) विषयपति–प्रांतके आफिसर (१७) राष्ट्रपति–जिलेके आफिसर, (१८) ग्रामपति–ग्रामका मुखिया (ब० स्मा० पृ० १९०)।

अधिकारमद–अपनी हुकूमतका घमंड करना। सम्यग्दृष्टीको आठ मद नहीं करना योग्य है। (देखो शब्द-अष्टस्थान मद प्र० जि० पृ० १३–१४) यह सातवां मद है।

अधिकार वस्तु–ज्ञानप्रवाद [illegible] १० वस्तु अधिकार हैं (देखो शब्द [illegible]

अधिगम–पदार्थोंका ज्ञान, सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके दो बाहरी कारण होते हैं। [illegible], वह जो परोपदेशसे हो वह अधिगम [illegible] परोपदेशके बिना ही वह निसर्ग, अर्थात् स्वभाव [illegible] अधिगमज [illegible] कहते हैं। [illegible] दर्शन, वेदना [illegible] सू० १०७) [illegible], देखो [illegible] सू० ३–२)।

यस्य वाचां प्रसादेन ह्यमेयं भुवनत्रयम् ।
आसीदष्टाङ्गनैमित्तज्ञानरूपं विदां वरम् ॥
तच्छिष्यप्रवरो जातो जिनसेनमुनीश्वरः ।
यद्वाङ्मयं पुरोरासीत्पुराणं प्रथमं भुवि ॥
तदीय प्रियशिष्योभूद्गुणभद्रमुनीश्वरः ।
शलाका पुरुषा यस्य सूक्तिभिर्भूषिताः सदा ॥
गुणभद्रगुरोस्तस्य महात्म्यं केन वर्ण्यते ।
यस्य वाक्सुधया भूमावभिषिक्ता मुनीश्वराः ॥

श्रीजिनसेनाचार्यने अपने हरिवंशपुराणके अन्तमें महावीर भगवानसे लेकर अपने समय तकके आचार्योंके नाम दिये हैं। परन्तु उनमें समन्तभद्र, शिवायन, शिवकोटि, वीरसेन आदि किसीका भी नाम नहीं है। इससे मालूम होता है कि, उक्त परम्परा केवल एक पुन्नाटगणकी है, जो कि सेनसंघकी एक शाखा है। महापुराणके कर्त्ता जिनसेन इस पुन्नाटगणमें नहीं, किसी दूसरे ही गणमें हुए हैं, इसलिये उनकी गुरुपरम्परा पुन्नाटगणसे नहीं मिलती है। वीरसेन जिनसेन और गुणभद्रके किसी भी ग्रन्थसे इस बातका पता नहीं लगता है कि, उनका गण तथा गच्छ कौनसा था। उन्होंने जहां २ अपना उल्लेख किया है; वहां केवल सेनसंघका उल्लेख किया है। गण और गच्छका नाम भी नहीं लिया है। यथाः——

श्रीमूलसंघवाराशौ मणीनामिव सार्चिषाम् ।
महापुरुषरत्नानां स्थानं सेनान्वयोऽजनि ।

जनित दोष हो उसको ग्रहण करना। साधु ऐसे भोजनको नहीं करते हैं जो उनके निमित्त हो, जो गृहस्थने अपने लिये बनाया हो।

अधःप्रवृत्त–जिन भागहारोंसे शुभ कर्म या अशुभ कर्म संसारी जीवोंके अपने परिणामोंके वशसे संक्रमण करे या बदल जावे। अर्थात् अन्य प्रकृतिरूप होजावे। वे भागहार पांच हैं। उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसंक्रम, सर्व संक्रम। इनमेंसे अधःप्रवृत्तरूप संक्रमण उन कर्मोंका वहांतक होता रहता है जहांतक उनका बंध संभव है। (गो० क० ४०९–४१६) अधःप्रवृत्त आदि तीन करण रूप परिणामोंके बिना ही कर्म प्रकृतियोंके परमाणुका अन्य प्रकृति रूप होना सो उद्वेलन संक्रमण है। जहां स्थिति अनुभाग घटता जाय ऐसा संक्रमण जो गुण श्रेणि आदि परिणामोंके पीछे हो सो विध्यात संक्रमण है। जहां समय २ श्रेणी रूप असंख्यात २ गुणे परमाणु अन्य प्रकृति रूप परिणमें सो गुण संक्रमण है। अंतमें परमाणु अधः प्रकृति रूप हों सो सर्व संक्रमण है।

अधःप्रवृत्तकरण–देखो शब्द अधःकरण।

अधःप्रवृत्त संक्रमण–देखो शब्द अधःप्रवृत्त।

अध्यधि दोष–संयमी साधुको आता देख उनको देनेके लिये अपने निमित्त बनते हुये भातमें जल व तंदुल और मिलाकर पकावे अथवा जबतक भोजन तय्यार न हो तबतक उस साधुको धर्मप्रश्नके बहाने रोक रक्खे। यह दाताके लिये अध्यधि दोष है। (मू० ४२७)।

अध्ययन–पढ़ना, शास्त्रका प्रकरण (अ० मा० पृ० १७६)।

अध्ययन क्रिया–ज्ञानकी विनय आदि सहित शास्त्र पढ़ना।

अध्यवसान–अंतःकरणका परिणाम, भाव।

अध्यवसाय–अभिप्राय, परिणाम, भाव, कषाय सहित भाव, वे भाव जिनसे कर्मोंमें स्थिति व अनुभाग पड़ता है। जितने प्रकारके अध्यवसाय होते हैं उनको स्थान कहते हैं। वे असंख्यात लोकप्रमाण हैं (गो० क० ९४९)। जिन भावोंसे स्थिति पड़ती है उनको कषायाध्यवसाय कहते हैं। जिनसे अनुभाग पड़ता है उनको अनुभागाध्यवसाय कहते हैं। कषायाध्यवसायको ही स्थितिबंधाध्यवसाय भी कहते हैं।

अध्यात्म–आत्मसम्बन्धी भाव।

अध्यात्म तरंगिणी–श्री सोमदेव दि० जैन आचार्यप्रणीत ग्रंथ ४० श्लोक, मुद्रित माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला नं० १३।

अध्यात्म द्रव्यार्थिकनय–जैन सिद्धांतमें आत्माके शुद्ध स्वरूपका व अन्य द्रव्यके शुद्ध स्वरूपका कथन जिस नय व अपेक्षासे किया जाता है उसे द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। इसमें मात्र एकरूप शुद्ध द्रव्यको ही लक्ष्यमें लिया जाता है। जैसे संसारी जीव भी यदि द्रव्यार्थिकनयसे देखे जावें तो उनको शुद्ध एकरूप अपने स्वभावमें ही देखा जायगा।

अध्यात्मपचीसी–पं० दीपचंद कासलीवाल (आमेर–जैपुरी कृत) भाषा छंद–(दि० जैन नं० ६२)

अध्यात्म पंचाशिका–एक ग्रंथका नाम।

अध्यात्म पद–शुभचंद्र कृत टीका (दि० जैन ग्रं० नं० ३३४)

अध्यात्म पर्यायार्थिक नय–आत्माके कथन करनेवाले ग्रंथोंमें भेदरूप व अशुद्ध अवस्था रूप कथन जिस नय या अपेक्षासे होता है उसको पर्यायार्थिक नय कहते हैं।

अध्यात्म बारहखड़ी–पं० [illegible] भाषामें (दि० जैन नं० ४४)

अध्यात्म रस–आत्माका विचार, अनुभव, कथन व श्रवण करनेसे अलौकिक आनन्द झलकता है, वह अध्यात्म रस है।

अध्यात्म रहस्य–[illegible] जिस तरह हो उसे अध्यात्म रहस्य कहते हैं। पं० आशाधर कृत संस्कृत ग्रंथ (दि० ग्रं० १००)

अध्यात्म संग्रह–एक ग्रंथ मुद्रित

हमारे चरित्रनायकोंकी गुरुपरम्पराका क्रमवद्ध पता चित्रकूट-पुर निवासी एलाचार्यसे प्रारंभ होता है। एलाचार्यके पास वीरसेन-स्वामीने सम्पूर्ण सिद्धान्तशास्त्रोंका अध्ययन करके उपरितम आदि आठ अधिकारोंको लिखा था। ये एलाचार्य कौन थे, और उनकी गुरुपर-म्परा क्या थी, इसका पता अभीतक कुछ भी नहीं मिला है। श्रुता-वतारमें केवल इतना ही उल्लेख मिलता है:—

> काले गते कियत्यपि ततः पुनश्चित्रकूटपुरवासी।
> श्रीमानेलाचार्यो वभूव सिद्धान्ततत्त्वज्ञः॥ १७६॥
> तस्य समीपे सकलं सिद्धान्तमधीत्य वीरसेनगुरुः।
> उपरितमनिवन्धनाद्यधिकारानष्टं लिलेख॥ १७७॥

वीरसेन स्वामीके विनयसेन, जिनसेन, और दशरथगुरुनामके तीन शिष्योंका पता लगता है। इनमेंसे विनयसेनका उल्लेख जिनसेन स्वामीने अपने पार्श्वाभ्युदयकाव्यकी प्रशस्तिमें किया है:—

> श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृङ्गः
> श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान्।
> तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण
> काव्यं व्यधायि परिवेष्टितमेघदूतम्॥ ७१॥

---

१. यह चित्रकूटपुर कहां है, यह ठीक २ नहीं कहा जा सकता है।

२. जयधवलटीकाकी प्रशस्तिमें एक श्रीपाल नामके आचार्यका उल्लेख है, जिन्होंने इस टीकाको सम्पादन की है। क्या आश्चर्य है कि, वे भी वीरसेनस्वामीके एक शिष्य हों:—

> टीका श्रीजयचिह्नितोरुधवला सूत्रार्थसंवोधिनी
> स्थेयादारविचन्द्रमुज्ज्वलतमा श्रीपालसम्पादिता।

जिसके गृह सम्बन्धी तृष्णा चली गई हो (सर्वा० अ० ७ सू० १९)। अनगारके पर्यायवाची शब्द हैं १ श्रमण-जो तपसे आत्माको खेद युक्त करे, २ संयत-इंद्रियोंको वश करनेवाला, ३ ऋषि-सब पापोंको दूर करे व ऋद्धि प्राप्त, ४ मुनि-स्वपरकी अर्थसिद्धिको जाने, ५ साधु-रत्नत्रयको साधे, ६ वीतराग-जिसके राग नहीं, ७ अनगार-गृह आदि परिग्रह रहित, ८ भदंत-जो सब कल्याणोंको प्राप्त हों, ९ दान्त-जो पंचेन्द्रियोंके रोकनेमें लीन हों, १० यति-जो चारित्रमें यत्न करे (मू० गा० ८८६) शीतलनाथ तीर्थंकरके मुख्य गणधर (S. ए० ५७६)

अनगारव्रत-साधुके व्रत-१३ प्रकार चारित्र व २८ मूल गुण।

अनगार भावना सूत्र-मुनि धर्मकी स्थिरताके लिये जो भावनाएं की जावें उनका वर्णन जिनमें हो। उसके १० भेद हैं-१ लिंग शुद्धि, २ व्रत शुद्धि, ३ वसति शुद्धि, ४ विहार शुद्धि, ५ भिक्षा शुद्धि, ६ ज्ञान शुद्धि, ७ उज्झन शुद्धि, (शरीरसे मोह न करना) ८ वाक्य शुद्धि, ९ तप शुद्धि, १० ध्यान शुद्धि। (मू० गा० ७६९-७७०)

अनगारकेवली-या अगृहकेवली-जो साधु सर्व परिग्रह त्याग करके केवलज्ञानी होजाते हैं। (उ० पु० ए० १११ श्लो० ९६)

अनगारधर्मामृत-मुनिधर्मका शास्त्र-पंडित आशाधरजीने सं० १३०० में भव्यकुमारचंद्रिका टीका इसी स्वरचित मूल ग्रंथपर लिखी।

अनगारिक-साधुकी क्रियाएं (अ० मा० ए० १९०)

अनगुप्त भय-देखो अगुप्त भय (प्र० सि० ए० ५४)

अनङ्गकुसुमा-रावणकी बहन चन्द्रनखाकी पुत्री जो हनूमानको विवाही गई थी (ह० २ ए० ८३)

अनङ्गपुष्पा-

अनङ्गक्रीड़ा-(अनंगरमण)-कामसेवनके जो स्त्री व पुरुषके नियत अंग हैं उनको छोड़कर अन्य अंगसे अन्य रूपसे कामचेष्टा करना। यह ब्रह्मचर्य अणुव्रतका चौथा अतीचार है। (सर्वा० अ० ७ सू० २८)।

अनंगलवण-रामचन्द्रके पुत्र जो मोक्ष गए। (ह० २ ए० १९९)।

अनंग १३-महावीर जयंति (चैत्र सुदी १३)

अनछना जल-विना छना हुआ पानी।

अनतिक्रमण-जिसमें दोष न हो, ऐसा उत्तर जिसमें अति व्याप्ति आदि दोष न हो (अ० मा० ए० १४०)।

अनध्यवसाय-सम्यग्ज्ञानका बाधक एक दोष, जैसे मार्गमें चलते हुए तृणका स्पर्श हुआ। तब यह प्रतिभास होना कि कुछ होगा। निश्चय करनेके लिये अनुत्साह। ज्ञानमें तीन दोष न होने चाहिये। १ संशय-यह शंका करना कि यह सीप है या चांदी है। विरुद्ध अनेक तरफ झुकनेवाला अनिर्णीत ज्ञान। २ विपर्यय-विपरीत निश्चय कर लेना। जैसे सीपको चांदी जान लेना, ३ अनध्यवसाय-निश्चय करनेमें आलस्य (जै० सि० प्र० ८२-८३-८४)।

अननुगामी अवधिज्ञान-जो अवधिज्ञान जहां उत्पन्न हो उसी क्षेत्रमें रहे, वह जीव अन्य क्षेत्र या अन्य भवमें जाय तो साथ न जावे (सर्वा० अ० १ सू० २२) इसके तीन भेद हैं।

१ क्षेत्राननुगामी-जो अवधिज्ञान जिस क्षेत्रमें उपना हो उस क्षेत्रमें तो जीव उसी शरीरमें हो या अन्यमें हो साथ रहे, यदि वह अन्य क्षेत्रमें जाय व जन्मे तो साथ न रहे। २ भवाननुगामी-जो ज्ञान उसी भवमें साथ रहे जिसमें उत्पन्न हुआ है, चाहे वह कहीं भी जावे, दूसरे भवमें साथ न जावे। ३ उभयाननुगामी-जो ज्ञान और क्षेत्र व और भवमें जाते हुए साथ न रहे (गो० जी० गा० ३७३)।

अननुयोगिनिवेदन-

अननुभाषन-

अनन्त-जिसका अंत न हो। यह अक्षयी

श्रीवीरसेन इत्यात्तभट्टारकपृथुप्रथः ।
स नः पुनातु पूतात्मा कविवृन्दारको मुनिः ॥ ५५ ॥
लोकवित्वं कवित्वं च स्थितं भट्टारके द्वयम् ।
वाङ्मिता वाग्मिता यस्य वाचा वाचस्पतेरपि ॥ ५६ ॥
सिद्धान्तोपनिबन्धानां विधातुर्मद्गुरोश्चिरम् ।
मन्मनःसरसि स्थेयान्मृदुपादकुशेशयम् ॥ ५७ ॥
धवलां भारतीं तस्य कीर्तिं च विधुनिर्मलाम् ।
धवलीकृतनिःशेषभुवनां तन्नमीम्यहम् ॥ ५८ ॥

इन श्लोकोंका अभिप्राय यह है कि, भट्टारककी¹ बड़ी भारी प्रसिद्ध पदवी प्राप्त करनेवाले, पवित्रात्मा और कविशिरोमणि श्रीवीरसेनाचार्य हमें पवित्र करें। लौकिक ज्ञान और कविता ये दोनों गुण वीरसेन भट्टारकमें हैं। उनकी वाणी बृहस्पतिके पांडित्यको भी पराजित करती है। सिद्धान्तोंकी धवल जयधवल टीकाएं करनेवाले मेरे इन गुरुमहाराजके कोमल चरणकमल मेरे मनरूपी सरोवरमें चिरकाल तक ठहरें। उनकी धवला अर्थात् उज्ज्वल अथवा धवलाटीकासम्बन्धी वाणीको तथा चंद्रमाके समान निर्मल कीर्तिको जो कि सारे संसारको धवल कर रही है, मैं पुनःपुनः नमस्कार करता हूं।

---

1. भट्टारकका लक्षण नीतिसारमें इस प्रकार लिखा है:—

सर्वशास्त्रकलाभिज्ञो नानागच्छाभिवर्द्धकः ।
महामनाः प्रभाभावी भट्टारक इतीष्यते ॥

अर्थात् जो सारे शास्त्रोंका और सारी कलाओंका जाननेवाला हो, अनेक गच्छोंका बढ़ानेवाला हो, विचारशील और प्रभावशील हो, उसे भट्टारक कहते हैं।

पिताके साथ दीक्षा ले मुनि हुए नाम अनन्तवीर्य प्रसिद्ध हुआ। (प० पु० ए० ४३३)

अनन्तविजय—श्री रिषभदेवके पुत्र (इति० १ ए० ७८) और उनके गणधर, श्री अनन्तनाथ तीर्थंकरके पुत्र (इति० २ ए० ९)

अनन्तवियोजक—अनन्तानुबन्धी ४ कषायके कर्मपिंडको अन्य कषायरूप बदलनेवाला चौथे अविरत सम्यग्दर्शन गुणस्थानसे लेकर ७वें अप्रमत्त विरतक (सर्वा० अ० ९ सू० ४५)

अनन्तवीर्य—भरत चक्रवर्तीके सेनापति जयकुमारका बड़ा पुत्र (जै० इ० १ ए० ७८)। भरतके आगामी २४वें तीर्थंकर (च० स० नं० १२१)

अनन्तवीर्यसूरि—प्रमेयरत्नमालाके रचयिता।

अनन्तव्रत—अनन्तचतुर्दशीका व्रत।

अनन्तव्रतकथा—एक कथा।

अनन्तव्रतपूजा—जिनदास ब्रह्मचारी कृत (सं० १५१०) शांतिदास ब्र०कृत (दि० जैन नं० २८४) श्री भूषण भट्टारक कृत (दि० जैन नं० ३४७) (दि० जैन नं० ९७)

अनंतव्रतोद्यापन—गुणचन्द्र भ० (सं० १६००) कृत (दि० जै० नं ६८), जिनदास ब्र० कृत (सं० १५१०) (दि० जै० नं० ९७); धर्मचन्द्र भ० कृत (दि० जै० नं० १२६), रत्नचन्द्र भ० (सं० १६००) कृत (दि० जै० नं० २९२)

अनन्तसम्यक्त—क्षायिक सम्यग्दर्शन जो कभी छूटे नहीं।

अनन्तसुख—आत्मीक स्वाभाविक आनन्द जो अरहंतके १३वें गुणस्थानमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय चार घातीय कर्मोंके नाशसे प्रगट होता है।

अनन्तसेन—भगवान ऋषभदेवके पुत्र अनंतवीर्यके पुत्र जो इस अवसर्पिणीमें भरतमें सबसे पहले मोक्ष गए (इ० २ ए० ७८)।

अनन्तज्ञान—केवलज्ञान जो सर्व लोकालोकके पदार्थोंको एक साथ जान लेता है।

अनन्तर क्रमभाव—पूर्व या उत्तर कार्य कारण भाव। जैसे कृतिकाका उदय रोहिणीसे अंतर्मुहूर्त पहले होता है। (परी० १८।३ भ०)

अनन्ताचार्य—न्यायविनिश्चयालंकारकी वृत्तिके कर्ता—(दि० जैन नं० ३९६)

अनन्तानन्त—एक तरहकी अलौकिक माप, देखो अंक गणना शब्द (प्र० जि० ८६–९०) अनंतको अनंतसे गुणनेपर अनंतानंत होता है।

अनन्तानुबन्धी—अनंत संसारका कारण जो मिथ्यात्व उसको सहायता करे 'अनंतं अनुबंधिनः' (सर्वा० अ० ८।२०९)

अनन्तानुबन्धी कषाय—अनंत संसारके कारण क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय। जो सम्यग्दर्शन व स्वरूपाचरण चारित्रको घात करे (गो० जी० गा० २८३) इस कषायका वासनाकाल छः माससे अधिक अनंत काल तक रह सका है। (गो० क० गा० ४६)

अनन्तानुबन्धी चतुष्क—ऊपर देखो।

अनन्तानुबन्धी चौकड़ी— ,,

अनन्तानुबन्धी क्रोध— ,,

अनन्तानुबन्धी मान— ,,

अनन्तानुबन्धी माया— ,,

अनन्तानुबन्धी लोभ— ,,

अनन्ताणु वर्गणा—देखो शब्द [illegible] वर्गणा (प्र० जि० ए० ७५) २३ जातिके पुद्गल वर्गणाओंमें चौथी जातिकी वर्गणा, जिन वर्गणामें अनंत परमाणुका बन्धरूप स्कन्ध हो (गो० जी० गा० ५९४–९५)

अनन्तादिक—

अनन्त[illegible]—रिषभदेवके पुत्र [illegible] (आ० ए० [illegible])।

अनपवर्त्यायु—जिनकी आयु विष, वेदना, शस्त्र, आदि बाहरी कारणोंसे घटकर न छिदे, जो पूर्ण आयु भोगके मरे, जैसे देव, नारकी, भोगभूमि, [illegible] देहधारी, भोगभूमिये हैं (सर्वा० [illegible])

जानेसे जिसकी प्रतिभा तथा बुद्धि प्रकाशित हो रही है, विद्याओं और उपविद्याओंके जो पार पहुंच गया है, सारे नय और प्रमाणोंके (न्यायशास्त्र के) जाननेमें जो चतुर है और इस प्रकारके जो अगणित गुणोंसे भूषित है।

इससे दो बातें मालूम होती हैं, एक तों यह कि, दशरथगुरु जिनसेन स्वामीके सतीर्थ थे और दूसरे यह कि गुणभद्रस्वामीके भी वे गुरु थे। बहुत करके गुणभद्रस्वामीके विद्यागुरु दशरथगुरु होंगे और दीक्षागुरु जिनसेनस्वामी होंगे।

इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारमें जो कि कोल्हापुरमें छपा है, लिखा है कि—

> विंशति सहस्रसद्ग्रन्थरचनया संयुतां विरच्य दिवम्।
> यातस्ततः पुनस्तच्छिष्यो जयसेनगुरुनामा ॥ १८२ ॥
> तच्छेषं चत्वारिंशता सहस्रैः समापितवान्। इत्यादि।

अर्थात् वीरसेनस्वामी जयधवला टीकाके २० हजार श्लोक बनाकर स्वर्गलोकको सिधारे, तब उनके शिष्य जयसेनगुरुने उसका शेष भाग ४० हजार श्लोकोंमें बनाकर पूर्ण किया। इससे मालूम होता है कि वीरसेनस्वामीके एक जयसेन नामके भी शिष्य थे। परन्तु यथार्थमें यह एक भ्रम है। लेखकके प्रमादसे मूल पुस्तकमें या छपाते समय संशोधकके दृष्टिदोषसे 'जिनसेनगुरु' की जगह 'जयसेनगुरु' लिख अथवा छप गया है। क्योंकि जैसा कि हम आगे लिखेंगे, जयधवला टीकाका शेषभाग जिनसेनस्वामीका ही बनाया हुआ है। अतएव वीरसेनस्वामीके जयसेन नामके शिष्य नहीं थे। हां जिनसेनस्वामीके

पासवाला व १००० योजन गहरा दूसरा अनवस्था कुण्ड किया जाय। फिर खाली किया जाय। इस तरह इतनी दफे खाली किया जावे जब १ शलाका कुण्ड जो १ लाख योजन चौड़ा व १००० योजन गहरा है शिखाऊ भर न जावे। तब १ सरसों उतने ही बड़े प्रतिशलाका कुण्ड ४ में डाले। इस तरह क्रमसे जब प्रति शलाका कुंड भर जावे तब एक सरसों महा शलाकामें डाले, यह भी उतना ही बड़ा है। इस क्रमसे जब महाशलाका भी भर जावे तब जहांतक सरसों फेंकी गई थी उस अन्ततकके व्यासवाले अनवस्था कुण्डमें जितनी सरसों आवेंगी उतना प्रमाण जघन्य परीतासंख्यातका है।

अनवस्था दोष—वह दोष जिसमें जो प्रमाण दिया जाय वह अन्तमें टिके नहीं। जैसे कहना जगतको ईश्वरने बनाया, क्योंकि कोई वस्तु ईश्वर विना नहीं होती। तब ईश्वरको भी कोई बनानेवाला चाहिये, बस हम आगे नहीं चल सके। यही अनवस्था दूषण है। यदि कोई कहे कि ईश्वरने पृथ्वी आदि मूर्ति बनाई सो अन्य मूर्तीकको लेकर बनाई तब उन मूर्तीकको दूसरे मूर्तीकसे बनाई, यदि सादि जगतको मानोगे तो अनवस्था दूषण आवेगा, क्योंकि एक कोई मूर्तीक पदार्थ योंही उत्पन्न होना मानना पड़ेगा माननेमें यह दूषण नहीं आयगा।

अनवस्थित अवधिज्ञान—वह अवधिज्ञान जो सम्यग्दर्शनादि गुणोंके बढ़नेसे कभी बढ़े व कभी उनके घटनेसे घटे। जैसे वायुके वेगके कारण जलमें तरंग एकसी नहीं रहती हैं (सर्वा० अ० १ सू० २२)।

अनवेक्षा—इसमें जीव जन्तु हैं अथवा नहीं हैं ऐसा विचारकर देखनेको अवेक्षा कहते हैं सो नहीं करना अनवेक्षा है (सागा० श्लो० ४०)।

अनवेक्षिताप्रमार्जित आदान—विना देखे व बिना झाड़े कुछ उठाना।

अनवेक्षिताप्रमार्जित उत्सर्ग—विना देखे बिना झाड़े भूमिपर मल मूत्र करना।

अनवेक्षिताप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण—विना देखे विना झाड़े भूमिपर चटाई आदि बिछाना।

ये तीनों प्रोषधोपवास प्रथम शिक्षा व्रतके तीन अतीचार हैं। (सागा० श्लो० ४०)।

अनशन—चार प्रकार आहारका त्याग करना। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य (चाटने योग्य) व पेय।

अनशन तप—तपके १२ भेद हैं। छः बाहरी भेदोंमें पहला भेद किसी फलकी इच्छा न करके संयमकी सिद्धि, रागका विजय व कर्मोंके नाश व ध्यानकी प्राप्तिके लिये जो उपवास किया जाय, सो अनशन तप है (सर्वा० अ० ९ सू० १९) इसके दो भेद हैं।

(१) इत्वरिय, (२) यावज्जीव। जो कालकी मर्यादासे उपवास हो वह इत्वरीय है, जो आकांक्षा रहित मरण पर्यन्त चार प्रकार आहारका त्याग है वह यावज्जीव है। एक दिनमें दो समय भोजन भोजन है। चार दफेका भोजन छोड़े उसे चतुर्थ या उपवास कहते हैं। पहले दिन १ दफे ले, बीचमें दोनों दफे न ले, तीसरे दिन १ दफे सो चतुर्थ है। छः वेलाका भोजन छोड़े अर्थात् एक दिनके दो समय और न ले वह षष्ठतम या बेला है। इसी तरह तेलेको अष्टम, चौलेको दशम, पंचमको द्वादश इस तरह जानना। १५ दिनका व १ मासका भी उपवास होता है। इसी तरह कनकावली, एकावली, मुरज, सिंह निष्क्रीडित आदि तप मर्यादा सहित इत्वरिय या साकांक्ष अनशन तप है।

२—निराकांक्ष अनशन तप ३ प्रकार है (१) भक्त प्रतिज्ञा—जिसमें २ से लेकर ४८ मुनि तक समाधिमरण करनेवाले मुनिकी सेवा करें व आप भी अपनी सेवा करे इस तरह आहार त्याग करना। (२) इंगिनी मरण—ऐसा सन्यास मरण जिसमें दूसरोंकी सहायता न ले आप अपनी करे। (३) प्रायोपगमन मरण—जिसमें शरीरकी अपनी दूसरोंकी अपेक्षा न करे आप भी अपनी सहायता न करे। (मू० गा० २४८-२६९)।

अर्थात् उन गुणभद्रसूरिके सम्पूर्ण शिष्योंमें लोकसेन नामके मुनीश्वर मुख्य शिष्य हुए, जो कि कवि हैं और सकल चारित्रके पालन करनेवाले हैं, तथा इस पुराणके रचनेमें गुरुविनयरूप बड़ी भारी सहायता देकर जो विद्वानोंके द्वारा मान्य हुए हैं। मंडलपुरुषने अपने कोशमें स्वयं लिखा है कि, गुणभद्रस्वामी मेरे गुरु हैं। क्षत्रचूडामणिकी प्रस्तावनामें श्रीयुक्त कुप्पूस्वामी शास्त्रीने मंडलपुरुषकृत चूडामणिनिघंटुकी प्रशस्ति उद्धृत की है, परन्तु द्राविड़ भाषाका ज्ञान नहीं होनेसे हम उसे प्रकाशित नहीं कर सके।

इस तरह हमारे चरित्रनायकोंके वंशवृक्षका निम्नलिखित रूप होता है:—

एलाचार्य[२]
|
वीरसेन
|
- विनयसेन
  - कुमारसेन (काष्ठासंघी)
    - अमोघवर्ष महाराज
- जिनसेन
  - गुणभद्र
    - लोकसेन
    - मंडलपुरुष
- दशरथगुरु
- श्रीपाल (सशंकित)
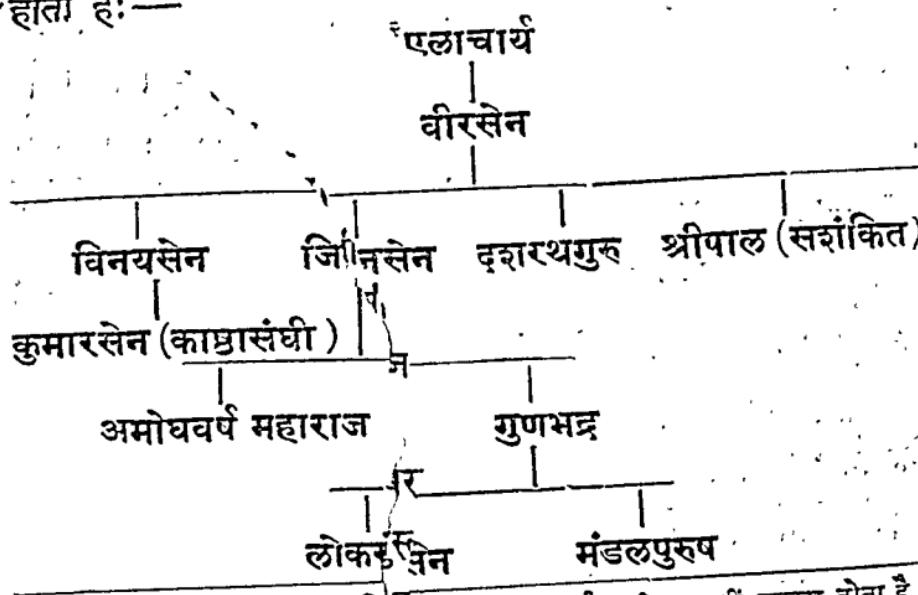
१. मंडलपुरुष यह नाम मुनिके अथवा आचार्य सरीखा नहीं मालूम होता है बहुत करके मंडलपुरुष विद्वान् गृहस्थ ही होंगे।

२. हो सकता है कि एलाचार्य सेनसंघके आचार्य न हों और वीरसेन स्वामी उनके समीप सिद्धान्त पढ़ने गये हों तथा वीरसेनस्वामीके दीक्षागुरु कोई दूसरे ही आचार्य हों।

कीर्ति, १२ पूर्णबुद्धि, १३ निःकषाय, १४ विमलप्रभ, १५ बहुलप्रभ, १६ निर्मल जिन, १७ चित्रगुप्ति, १८ समाधिगुप्ति, १९ स्वयंभूजिन, २० कंदर्पजिन, २१ जयनाथ, २२ विमलजिन, २३ दिव्यवाद, २४ अनंतवीर्य (पंचकल्याणकदीपिका भ० द्वि० पृ० ४१)।

अनागत ज्ञायकशरीर नोआगम द्रव्यनिक्षेप–ज्ञाताको जो शरीर आगामी प्राप्त होगा (सर्वा० पृ०७ अ० १) (गो० क०का०गा० ४–५५–५६)

अनागत प्रत्याख्यान–प्रत्याख्यानके १०भेदोंमें पहला भेद, भविष्यकालमें उपवासादि करना (मू० गा० ६३७)।

अनागताभिलाप अब्रह्म–अब्रह्म या कुशील १० प्रकार है उसमें ९ वां भेद, भविष्यमें काम भोग क्रीडा शृंगारादिकी इच्छा। वे १० भेद हैं–१ स्त्री विषयाभिलाष, २ वस्तिविमोक्ष (वीर्यका छूटना विकारी भावसे), ३ प्रणीत रस सेवन या वृष्याहार सेवन (कामोद्दीपक पदार्थका खाना), ४ संसक्त द्रव्य सेवन (स्त्री व कामी पुरुषसे संसर्ग किये हुए शय्यासन महल वस्त्राभरणका सेवना), ५ इंद्रियावलोकन, ६ सत्कार, ७ संस्कार (शृंगार), ८ अतीत स्मरण, ९ अनागताभिलाष, १० इष्ट विषय सेवन। (भ० आ० पृ० २०७)।

अनागार–गृहरहित मुनि।

अनागारी–गृहरहित मुनि।

अनाचरित दोष व अन्याचरित दोष–वस्तिकाके ४६ दोषोंमें १२ वां उद्गम दोष जो संयमीकी वस्तिका बनानेके लिये सामग्री अन्य ग्रामसे लावे। (भग० पृ० ९३)।

अनाचार–देखो शब्द अतीचार–अत्यन्त आसक्त होकर प्रतिज्ञाको तोड़ डालना।

अनाचिन्न अभिघट दोष–मुनियोंको दान देनेके लिये जो १६ उद्गमदोष दाताको बचाने चाहिये उनमेंसे १२ वें अभिघट दोषके दो भेद हैं। आचिन्न–जो पंक्तिबन्ध सीधे तीन या सात घरोंसे लाया हुआ भोजन हो सो ग्रहण योग्य है इसके विरुद्ध पंक्तिबंध घर न हों ऐसे ७ घरोंसे लाया हुआ व ८वां आदि घरसे लाया हुआ भोजन अनाचिन्न अर्थात् ग्रहण योग्य नहीं है। (मू० गा० ४३९)।

अनात्म–अपनेसे अन्य।

अनात्मभूत–जो वस्तुके स्वरूपमें मिला न हो।

अनात्मभूत क्रिया–

अनात्मभूत नय–

अनात्मभूत लक्षण–किसी पदार्थको पहचाननेके लिये जो लक्षण किया जावे वह दो तरहका होता है १ आत्मभूत, २ अनात्मभूत। जो लक्षण वस्तुके स्वरूपमें मिला हो अर्थात् वस्तुका गुण, पर्याय या स्वभाव हो वह आत्मभूत लक्षण है, जैसे अग्निका लक्षण उष्णपना या जीवका लक्षण उपयोग। जो लक्षण वस्तुके स्वरूपमें मिला न हो परन्तु अन्य वस्तुको लेकर किया जाय वह अनात्मभूत लक्षण है जैसे दंडी पुरुषका लक्षण दंड। (जै० सि० प्र० नं० ४–५)।

अनादर–जम्बूद्वीप व लवण समुद्रका स्वामी व्यंतरदेव (त्रि० गा० ९६१) इसके मंदिर जम्बूवृक्षकी पूर्व, दक्षिण, पश्चिम शाखाओं पर हैं। भक्ति व विनय व प्रेमका न होना।

अनादर अतिचार–श्रावकके १२ व्रतोंमें सामायिक शिक्षाव्रतका व प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतका चौथा अतीचार। सामायिक व उपवास करनेमें उत्साहका न होना। (सर्वा० अ०७ सू० ३४–३५)।

अनादर क्रिया–

अनादि–जिसका आदि न हो।

अनादिअनन्त–जिसका आदि न अंत हो।

अनादि धर्म–धर्म अनादिसे है, जो स्वभाव अनादिसे हो।

अनादि नित्यपर्यायार्थिक नय–[illegible] जिसके द्वारा अनादिकालसे चली आनेवाली स्थूल

यसेनमुनिकी मृत्यु होनेपर सिद्धान्तोंका उपदेश किया और पीछे वे भी स्वर्गलोकको सिधारे।

इससे यह जान पड़ता है कि, **वीरसेनस्वामीके** पश्चात् पद्मनन्दि नामके मुनि और फिर उनके पीछे **जिनसेनस्वामी** आचार्यपदपर सुशोभित हुए थे। इसी प्रकारसे **जिनसेनस्वामीके** पश्चात् विनयसेन और फिर **गुणभद्रस्वामी** पट्टाधीश हुए थे। **पद्मनन्दि** आचार्य कौन थे, इस विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। **जिनसेन** और **गुणभद्रके** प्राप्य ग्रन्थोंमें उनका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु यदि **पद्मनन्दि** एलाचार्यका ही नामान्तर हो—जैसा कि प्रसिद्ध है, तो ऐसा हो सकता है कि, **वीरसेनके** गुरु जो एलाचार्य थे—जिसका कि उल्लेख श्रुतावतार कथामें है—वे ही **वीरसेनके** पीछे संघाधिपति हुए होंगे और उनके पीछे **जिनसेन** हुए होंगे। **विनयसेन** जिनसेन स्वामीके सतीर्थ थे, और विद्वान थे, इसलिये उनके पश्चात् वे आचार्य हुए ही होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। **विनयसेनका** उल्लेख **पार्श्वाभ्युदयकाव्यमें** मिलता भी है। **गुणभद्रस्वामीके** पश्चात् आचार्यका पट्ट बहुत करके उनके मुख्य शिष्य **लोकसेनने** सुशोभित किया होगा।

---

१. **पद्मनन्दि** यह नाम **नन्दिसंघके** आचार्य सरीखा जान पड़ता है। क्योंकि **नन्दि, चन्द्र, कीर्ति** और **भूषण** ये चार शब्द प्रायः नन्दिसंघके मुनियोंके नामके साथ ही रहा करते हैं। **सेनसंघके** आचार्योंके नाममें तो **सेन, भद्र-राज** और **वीर्य** शब्द लगाये जाते हैं। हां ऐसा हो सकता है कि, किसी कारणसे नन्दिसंघी होकर भी **पद्मनन्दि** सेनसंघके आचार्य बना लिये गये हों।

पर्वत व विजयार्द्ध दोनोंके अन्तमें ८, ऐसे ही २४ द्वीप लवणोदधिके बाहरी तरफ हैं। इसीतरह २४ कालोदधिके भीतर व २४ उसके बाहर हैं, सब ९६ द्वीप हैं। इनमें लवणोदधिके २४ द्वीपोंका हाल यह है कि जो ८ दिशाओंके द्वीप हैं वे जम्बूद्वीपकी वेदीसे ५०० योजन छोड़कर हैं, जो इनके अंतरके हैं वे ५५० योजन छोड़कर व जो पर्वतोंके अन्तमें हैं वे ६०० योजन छोड़कर हैं। दिशाओंके द्वीप १०० बड़े योजन चौड़े हैं, अंतरालके ५० व पर्वतोंके अंतवाले २५ योजन चौड़े हैं इनमें जो पूर्व दिशाके द्वीपवाले अनार्य एक जांघवाले हैं, पश्चिमके पूंछवाले हैं, उत्तरके गूंगे ह, दक्षिणके सींगवाले हैं। चार दिशाओंके क्रमसे खरगोशसे कानवाले शष्कुली यवर्कनाली या एक तरहकी मछलीकेसे कानवाले, कानोंको बिछानेवाले, लम्बे कानवाले होते हैं। ८ अंतरालमें घोड़ामुख, सिंहमुख, कुत्तामुख, भैंसामुख, बाघमुख, काकमुख, घूघूमुख, व कपिमुख होते हैं। शिखरीके दोनों तरफ मेघमुख व बिजली मुख, हिमवतके दोनों तरफ मछलीमुख व कालमुख, उत्तर विजयार्द्धके दोनों तरफ हाथीमुख व दर्पणमुख, दक्षिण विजयार्द्धके दोनों ओर गौमुख व मेंढ़ामुख, एक जांघवाले मिट्टी खाते हैं, गुफामें रहते हैं। बाकी सर्व पुष्प फल खाते हैं, वृक्षोंके नीचे रहते हैं। सब हीकी आयु १ पल्यकी। युगल ही पैदा होते व मरते हैं। ये सब द्वीपजलके तलसे १ योजन ऊँचे होते हैं। कर्मभूमिके जो म्लेछ होते हैं उनको शक, यवन, शबर, पुलिंद आदि कहते हैं (सर्वा० अ० ३ सू० ३६)।

अनार्य व—माया।

अनार्यवेद—जो वेद सर्वज्ञ वीतरागकी वाणीके अनुसार न हो। सर्वज्ञ वीतराग श्री रिषभदेव प्रथम तीर्थंकरने जो दिव्यध्वनि प्रगट की उनहीसे जो द्वादशांग वाणी बनी सो आर्षवेद है। जिन वेदोंको मनुष्योंने अनगर्गल रचा हो वे अनार्षवेद हैं। क्षीरकदंबका पुत्र पर्वत था, वह अपने भाई [illegible] नारदसे वादमें हार गया। उसको एक महाकाल व्यन्तर मिला जो पहले जन्ममें मधुपिंगल था। इसको धोखा देकर राजा सगरने सुलसा कन्याको विवाहा। मधुपिंगल दुःखित हो जैन साधु होगया। पीछे जब सगरका कपट मालूम हुआ तब उसने बड़ा क्रोध किया और मरकर महाकाल व्यन्तर हुआ। पर्वतसे मिलकर इसने वेदोंको हिंसारूप बनाया। यही अनार्ष वेद हैं। महाकालने अपना रूप बदलकर शांडिल्य ब्राह्मण रक्खा और लोगोंको यही वेद पढ़ाकर हिंसामयी यज्ञोंका प्रचार कराया। (हरि० पृ० २६४–२७२ स० २३)

अनालब्ध दोष—विनय कृतिकर्मके ३२दोषोंमें १ दोष (मूला० गा० ६०७)।

अनाहत—ईशान दिशाका अनावृत यक्ष (प्र० सा० पृ० ७७)।

अनावर्त—एक व्यंतरदेव जो जम्बूद्वीपका रक्षक है। इसने रावण और उसके दोनों भाइयोंको विघ्न किया, जब ये भीम वनमें विद्या सिद्ध कर रहे थे। (प्रा० जैन इ० पृ० ६१)।

अनावृष्टि—(अनावृष्टि) श्री कृष्णके पिता वसुदेवजीके एक पुत्रका नाम (हरि० पृ० ३२२) इनकी माता मदनवेगा थी (ह० पृ० ४१७) राजा जरासिंधके युद्धमें यह कुमार महारथी सुभट योद्धा थे (ह० पृ० ४६०) इसने इस युद्धमें हिरण्यनाभिको बड़ी वीरतासे मारा था।

अनाहत ध्यान—अर्हंत भगवानका ध्यान करते हुए आत्माको [illegible] चन्द्र व सूर्यके समान चिन्तवन करे (ज्ञाना० पृ० ३९३)।

अनाहार—चारों प्रकार [illegible], उपवास, [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] जाता है [illegible]

[illegible] है, [illegible]

समाप्ति बंकापुरमें की थी जो कि वनवासदेशकी राजधानी था और जहां अकालवर्षका सामन्त लोकादित्य राज्य करता था । बंकापुर इस समय धारवाड़ प्रान्तमें एक कस्वा है । और पार्श्वाभ्युदय काव्यकी रचना अमोघवर्षकी राजधानी मान्यखेटमें हुई होगी, ऐसा जान पड़ता है । क्योंकि पंडिताचार्य योगिराट्की कथाकी घटनासे अथवा ऐसी ही और किसी घटनाके कारण इस ग्रन्थके बनानेकी प्रवृति महाराज अमोघवर्षकी राजसभामें ही होनेकी अधिक संभावना है ।

मान्यखेट उस समय कर्नाटक और महाराष्ट्र इन दो विस्तृत देशोंकी राजधानी था । इससे पाठक जान सकते हैं कि इस नगरका वैभव कितना बढ़ा चढ़ा होगा । उस समय उक्त देशोंमें और कोई भी शहर मान्यखेट सरीखा धनजनसम्पन्न नहीं था । तत्कालीन कई एक दानपत्रों और शिलालेखोंमें उसे इन्द्रपुरीकी हँसी करनेवाला वतलाया है । परन्तु इस समय उसी मान्यखेटको देखिये, तो इस वातपर विश्वास ही नहीं होता है कि यह कभी एक बड़ा भारी नगर रहा होगा । मान्यखेटको इस समय मलखेड़ कहते हैं । हैद्रावाद रेल्वे लाइनपर चितापुर नामके स्टेशनसे आगे मलखेड़गेट नामका एक छोटासा स्टेशन है । इस स्टेशनसे मलखेड़ ग्राम ४–५ मील है । यह ग्राम निजामसरकारके कृपापात्र एक मुसलमान जागीरदारके अधिकारमें है । इस गांवके पश्चिममें एक किला है । किलेसे सटकर एक रमणीय सरिता बहती है । सुनते हैं कि, पहले इस किलेमें एक विशाल और सुन्दर जैनमन्दिर था,

अनिन्दिता—व्यन्तरदेवोंमें महोरग जातिके देवोंमें अतिकाय इन्द्रकी दो वल्लभिका, देवियोंमें दूसरी (त्रि० गा० २६२)

अनिन्द्रिय—मन, अंतःकरण, ईषत इन्द्रिय, कुछ इन्द्रिय। इन्द्र आत्माको कहते हैं; उसके जाननेका चिन्ह इन्द्रिय है अर्थात इंद्रियोंके द्वारा जो ज्ञान होता है उससे आत्माके अस्तित्वका ज्ञान होता है। इसी तरह मनके कार्यसे भी आत्माका बोध होता है। यह प्रगट नहीं दिखता जबकि इंद्रियें प्रगट दीखती हैं। इसलिये मनको अनिन्द्रिय कहते हैं। जो गुण व दोषोंको विचार करे, तर्क करे, कारण कार्यको समझे, संकेत समझे, शिक्षा ग्रहण करे वह मन है। मन दो तरहका है—भाव मन, द्रव्य मन। मन द्वारा जाननेकी शक्ति व उपयोगको भाव मन कहते हैं। मनोवर्गणा रूप पुद्गल जो हृदयस्थानमें कमलके आकार हो जाते हैं वह द्रव्य मन है। (सर्वा० अ० १ सू० १४ व आ० प० सू० १९)

अनिन्द्रिय विषय—मनके द्वारा जो जाना जाय, संकल्प विकल्प।

अनिन्हव—नहीं छिपाना।

अनिन्हवाचार—जिस गुरु व शास्त्रसे ज्ञान प्राप्त हुआ हो उसको नहीं छिपाना। यह सम्यग्ज्ञानके आठ अँगोंमेंसे ८वां अँग है, आठ अँग ये हैं—(१) शब्दाचार-शुद्ध शब्द पढ़ना (२) अर्थाचार-शब्दका अर्थ ठीक करना (३) उभयाचार-शब्द और अर्थ दोनों शुद्ध पढ़ना (४) कालाचार-योग्यकालमें पढ़ना (५) विनयाचार—विनयसहित पढ़ना (६) उपधानाचार स्मरण सहित पढ़ना (७) बहु मानाचार बहुत मानसे पढ़ना, शिक्षक पुस्तक आदिका आदर करना (८) अनिन्हवाचार। (श्रा० प० सं० पृ० ७२)।

अनिर्दिष्ट संस्थान—जिसका कोई पौद्गलिक आकार न हो व जिसका आकार नियमित न हो।

अनियतकाल सामायिक—सामायिकको नियत कालमें नहीं करना व चाहे जब करना। प्रातःकाल, मध्याह्नकाल व सायंकाल तीन काल, उत्कृष्ट छः घड़ी मध्यम ४ घड़ी, व जघन्य २ घड़ी नियतकाल है, इसीमें करना। कमसेकम छः घड़ीके भीतर कर लेना। ३ घड़ी रात्रिसे लेकर ३ घड़ी दिन चढ़ेतक प्रातःकालकी ६ घड़ी जानना। एक घड़ी २४ मिनटकी होती है। इसी तरह अन्य समझना।

अनियत गुणपर्याय—अपने गुणोंके पर्यायोंमें जो निश्चल न हो।

अनियतवास—कोई नियमित स्थान रहनेका न हो। साधुजनोंका नियतवास नहीं होता है।

अनियत विहार—जहां नियत भ्रमण न हो, चाहे जहां जावें। साधुओंका विहार नियत नहीं होता है।

अनियमित उपवास—जन्मपर्यंत तक आहार त्यागकर उपवास करना। जो कालके नियमसे उपवास किये जावें वह नियमित उपवास है। (चा० पृ० १२८)

अनिरुद्ध—श्रीकृष्णका पोता, प्रद्युम्नका पुत्र। यह गिरनार पर्वतसे मोक्ष गए हैं। (ह० पृ० ४०९) पांचवें अरिष्टा नरकके तमक इन्द्रक संबन्धी चार दिशाके चार बिल हैं। निरुद्ध, विमर्दन, अनिरुद्ध व महाविमर्दनक (त्रि० गा० १६१)।

अनिर्वचनीय—अवक्तव्य, जिसका कथन न हो सके। देखो अवक्तव्य।

अनिल—नक्षत्रोंके स्वामी या अधिदेवता—नं० १३, कुल २८ नक्षत्रोंके २८ अधिदेवता होते हैं देखो शब्द अट्ठाईस नक्षत्राधिप (प्र० जि० पृ० ३६३)

अनिवर्तक—भरतक्षेत्रके २०वें भविष्य तीर्थंकर।

अनिवृत्ति—वह मुनिराज जिनके पास श्रीकृष्ण बलभद्रने मुनि दीक्षा ली थी। वह धातकी खंडद्वीपमें पश्चिम विदेहमें हुए (ह० पृ० ३९७)।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान—नौमा गुणस्थान। जिसमें एक समयवर्ती परिणाम एक सदृश ही समान [illegible] होते हैं। इसमें प्रथम शुक्लध्यान होता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

असम्मत विधवाविवाहकी रीति जारी करनेसे जातियोंमें फूटका वीज वोया गया, भट्टारकोंमें मूर्खता तथा सुखप्रियता आई और जैनधर्मके दुर्दिन लगे, तब धीरे २ यह गद्दी रसातलको पहुंच गई । जहांपर सैकड़ों वर्षतक भगवान् वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, अकलंकभट्ट सरीखे महान् तपस्वी और दिग्गज विद्वान् रह चुके हैं, और महापुराण जैसे अपूर्व ग्रन्थ वनाये गये हैं, वहांपर अब एक साधारण त्यागी व्रह्मचारीको तथा महापुराणके एक श्लोकका भी अर्थ लगानेवालेको न पाकर ऐसा कौन सहृदय होगा जिसका हृदय विदीर्ण न होता हो ? हाय ! आज कोई ऐसा भी पुरुष नहीं है, जो इस प्राचीन नगरमें और कुछ नहीं तो प्राचीन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करके भगवान् जिनसेन और गुणभद्रका एक स्मारक ही बनवा देवे! कालप्रभो ! तुम्हारी लीला वड़ी ही निर्दयतासे भरी हुई है। न जाने तुम्हारे विशाल उदरगर्भमें मान्यखेट सरीखे हमारे कितने गौरवस्थल सदाके लिये समा गये हैं !

मान्यखेटमें बहुत करके वलात्कारगणकी गद्दी है । यह गद्दी कहते हैं कि, इन्द्रप्रस्थकी (देहलीकी) गद्दीके लगभग ५०–६० वर्ष पीछे स्थापित हुई थी। फीरोजशाह वादशाहने वि० संवत् १४०७ से १४४४ तक राज्य किया है। इसके समयमें प्रभाचंद्राचार्यसे भट्टारकोंकी उत्पत्ति हुई है, और पहले पहल इन्द्रप्रस्थमें पट्ट स्थापित हुआ है। इस हिसावसे विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दिके प्रारंभमें अथवा चौदहवीं शताब्दिके उत्तरार्धमें मलखेड़में भट्टारकोंकी गद्दी स्थापित हुई होगी। इसके पहले वस्त्रधारी भट्टारकोंका वहां नाम निशान

अनीक जातिके देवोंके प्रत्येकके ५० देवांगना होती हैं। सबसे निकृष्ट देवके भी ३२ देवीसे कम नहीं होती हैं। (त्रि० गा० २३९)।

अनीकदत्त और अनीकपाल–वसुदेवकी पत्नी देवकीके पुत्र जो युगलिया पैदा हुए थे और कंसके भयके कारण उनको अलका सेठानीके यहां पालनेको पहुंचाया गया (हरि० ए० ३६३ आ० ३९)।

अनीकिनी–श्री रामचन्द्र आदिके प्राचीन समयमें सेनाके नौ भेद होते थे–(१) पत्ति–इसमें १ रथ, १ हाथी, ५ प्यादे, ३ घोड़ होते हैं, (२) सेना–३ रथ, ३ हाथी, १५ प्यादे व नौ घोड़े, (३) सेनामुख–नौ रथ, नौ हाथी, ४५ प्यादे, २७ घोड़े, (४) गुल्म–२७ रथ, २७ हाथी, १३५ प्यादे, ८१ घोड़े, (५) वाहिनी–८१ रथ, ८१ हाथी, ४०५ प्यादे, २४३ घोड़े, (६) प्रतना- २४३ रथ, २४३ हाथी, १२१५ प्यादे, ७२९ घोड़े, (७) चमू–७२९ रथ, ७२९ हाथी, ३६४५ प्यादे, २१८७ घोड़े, (८) अनीकिनी–२१८७ रथ, २१८७ हाथी, १०९३५ प्यादे, ६५६१ घोड़े, (९) अक्षौहिणी १० अनीकिनीकी होती है। अर्थात् २१८७० रथ, २१८७० हाथी, १०९३५० प्यादे व ६५६१० घोड़े। विदित हो कि अनीकिनीतक पहले भेदसे तीन गुणी संख्या है. जब कि अक्षौहिणीमें अनीकिनीसे १० गुणी है (प्रा० जै० इ० द्वि० ए० ११७)।

अनीशार्थ दोष–देखो अनिसृष्टि दोष।

अनु–पीछे, सादृश्य, समान, अनुकूल, सहायक (देखो प्र० जि० १ ए० २७४ नोट २)।

अनुकम्पा–जीवदयाका भाव प्रगट करना, सम्यग्दृष्टीके आठ बाहरी लक्षण होते हैं (१) संवेग–धर्मकार्यमें रुचि (२) निर्वेद–संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य (३) उपशम–शांतभाव (४) निन्दा–अपनी निंदा दूसरेसे करना (५) गर्हा–अपनी निंदा आप करना (६) अनुकम्पा–जीवदया (७) आस्तिक्य–नास्तिकपना न होना, धर्ममें श्रद्धा, (८) वात्सल्य–धर्मात्माओंसे प्रीति (गृ० ए० ८१) प्रशम (शांत भाव), संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य ऐसे भी चार लक्षण सम्यग्दृष्टीके कहे हैं (सागा० ए० ७)।

अनुकृष्टि–जहां अधःकरण लब्धिका वर्णन है वहां नीचेके समय परिणामोंकी सदृशता ऊपरके परिणामोंके साथ मिल जावे। इस अधःप्रवृत्तकरणमें अंतर्मुहूर्तकाल है। परिणाम विशुद्धितासे बढ़ते२ असंख्यात लोक प्रमाण हैं। वृद्धि समान होती है इसका दृष्टांत ३०७२ परिणामोंपर लगाया गया है। यदि १६ समय हों और ४ की वृद्धि हो तो इसतरह बटवारा परिणामोंका होगा–१६२, १६६, १७०, १७४, १७८, १८२, १८६, १९०, १९४, १९८, २०२, २०६, २१०, २१४, २१८, २२२। हरएक समय सम्बन्धी परिणामोंमें चार चार खंड हैं। जिसका नक्शा यह होगा–

एक समयके भाव	खंड १	खंड २	खंड ३	खंड ४
२२२	५४	५५	५६	५७
२१८	५३	५४	५५	५६
२१४	५२	५३	५४	५५
२१०	५१	५२	५३	५४
२०६	५०	५१	५२	५३
२०२	४९	५०	५१	५२
१९८	४८	४९	५०	५१
१९४	४७	४८	४९	५०
१९०	४६	४७	४८	४९
१८६	४५	४६	४७	४८
१८२	४४	४५	४६	४७
१७८	४३	४४	४५	४६
१७४	४२	४३	४४	४५
१७०	४१	४२	४३	४४
१६६	४०	४१	४२	४३
१६२	३९	४०	४१	४२

तद्वत्सन्ति बुधा न सन्ति कवयो वादीश्वराः वाग्मिनो
नानाशास्त्र विचारचातुरधियाः काले कलौ मद्विधाः ।
राजन् सर्वारिदर्पप्रविदलनपटुस्त्वं यथाऽत्र प्रसिद्ध-
स्तद्वत् ख्यातोऽहमस्यां भुवि निखिलमदोत्पाटने पण्डितानाम्।
नोचेदेषोऽहमेत तव सदसि सदा सन्ति सन्तो महन्तो
वक्तुं यस्यास्ति शक्तिः स वदतु विदिताशेषशास्त्रो यदि स्यात्।

इन दोनों श्लोकोंका भावार्थ यह है कि हे साहसतुंग, जिस तरह इस जगतमें सफेद छत्रके धारी अनेक राजा हैं, परन्तु तेरे समान रणविजयी दानशूर राजा वहुत दुर्लभ हैं, उसी तरहसे पंडित वहुत हैं, परन्तु मेरे समान कवि वाग्मि और अनेक शास्त्रोंके विचारमें चतुर विद्वान् इस कलिकालमें और दूसरा नहीं है । और जिस तरहसे तू सारे शत्रुओंका मान मर्दन करनेमें प्रसिद्ध है, उसी प्रकारसे पंडितोंका सारा घमंड चकचूर करनेके लिये पृथ्वीमें मैं प्रसिद्ध हूं । यदि ऐसा नहीं है, तो मैं खड़ा हूं, तेरी सभामें सदा ही वहुत वड़े २ विद्वान् रहते हैं, उनमेंसे किसीकी वोलनेकी शक्ति हो, तो वह वोले !

अकलंकदेवके शिष्य प्रभाचन्द्र और विद्यानन्दि जिनसेनाचार्यके समकालीन थे । आश्चर्य नहीं कि, ये भी मान्यखेटमें ही हुए हों । प्रोफेसर के. वीः पाठकने २९ जून सन् १८९२ ई० को 'रायल एशियाटिक सुसाइटीकी वम्बईकी शाखा'के समक्ष भर्तृहरि और कुमारिलभट्टके विपयमें एक निवन्ध पढ़ा था। उसमें लिखा है कि, अकलंकदेव राष्ट्रकूटवंशके शुभतुंग राजाके समकालीन थे जो कि आठवीं

न बनाए गये हों। मुनि व ऐलक व क्षुल्लक उनके निमित्त बने हुए उद्दिष्ट आहारके त्यागी होते हैं। जो कुटुम्बने अपने लिये बनाया है वही आहार अनुद्दिष्ट है। जो स्थान स्वाभाविक हो व मुनिके लिये निर्मापित न हो वह अनुद्दिष्ट है।

अनुधर–रावणसे युद्ध करते हुए रामचंद्रजीकी सेनामें एक मुख्य योद्धाका नाम (पा० जै० इ० पृ० १२१)।

अनुधारी–

अनुद्धरी–रिषभदेवके पूर्व भवोंमें वज्रजंघकी छोटी बहिन जिसे चक्रवर्ती वज्रदंतके पुत्र अमितेजको विवाहा गया (आदि० पर्व ८–३३)।

अनुन्धरी–रिषभदेवके पूर्वभवमें जब वे राजा वज्रजंघ थे तब उनकी बहिन जो अनुन्धरी थी जिसे वज्रदंत चक्रवर्तीके पुत्र अमिततेजको विवाहा गया था।

अनुपक्रम काल–वह काल जितनी देरतक कोई न। उपजे व्यंतरोंमें जो संख्यात वर्षकी आयुवाले हैं उनमें दो भेद हैं। १–सोपक्रम काल, २–अनुपक्रमकाल–जहां बराबर अंतर पैदा न करें सोपक्रमकाल आवलीका असंख्यातवां भाग मात्र है तबतक लगातार पैदा हों फिर अंतर पड़ जावे। अनुपक्रमकाल बारह मुहूर्त अर्थात् १२×३ घंटा=९ घण्टा है अर्थात ९ घंटेतक कोई न उपजे फिर मनुष्य पैदा हो। (गो० जी० गा० २६६)।

अनुपक्रमायुष्क–जिनकी भोगनेवाली आयु अकालमें विषादिके निमित्तसे खण्डन होजाय और वे मर जावें वे जीव सोपक्रमायुष्क हैं। परन्तु जो पूरी आयु करके मरते हैं वे अनुपक्रमायुष्क हैं। देव नारकी भोगभूमिके जीव व [illegible] जीव हैं। जो कर्मभूमिके पशु व मानव सोपक्रमायुष्क हैं वे परभवकी आयु [illegible] आयुमें हरएकको [illegible] ८ [illegible] हैं, यदि न [illegible]

हैं। जैसे किसीकी आयु ६५६१ वर्षकी है तो उसके ८ दफेका क्रमक्रमसे (१) २१८७ वर्ष (२) ७२९ (३) २४३ (४) ८१ (५) २७ (६) ९ (७) ३ (८) १ वर्ष बाकी रहनेपर आयु बन्ध सक्ती है। हरएकको अपकर्षकाल कहते हैं इसका लगातार काल अंतर्मुहूर्त है। देव व नारकी आयुके ६ मास शेष रहनेपर व भोगभूमिके जीव ९ मास शेष रहनेपर उसी तरह ८ त्रिभागसे परभवकी आयु बांधते हैं (गो० जी० गा० ५१८)।

अनुपगूहन–सम्यग्दर्शनके ८ अंगोंमें उपगूहन अंग है उसका न होना अनुपगूहन दोष है। किसी धर्मात्मा पुरुषकी असावधानतासे कोई दोष होजाय उसे ईर्षाभावसे लोगोंमें प्रगट करना। (प० सं० पृ० ७४–४९)

अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय–जिसमें केवल उपचार न हो तथापि ठीक न हो। जैसे कहना कि परमाणु बहु प्रदेशी होता है। क्योंकि परमाणुमें बहु प्रदेशीपनेकी शक्ति होती है। इससे उपचार नहीं है, परन्तु वर्तमानमें एक प्रदेशीको बहुप्रदेशी कहना असद्भूत है। यह स्वजाति असद्भूत है। विजाति असद्भूतनय वह है जो कारणवश अन्य द्रव्यको अन्य द्रव्यमें कहे, जैसे मतिज्ञान मूर्तीक है क्योंकि मूर्तीक द्रव्यके आश्रय हुआ है। अर्थात् इंद्रिय व मनसे हुआ है। स्वजाति विजाति असद्भूत व्यवहारनय। जैसे ज्ञान जीव अजीव सर्व ज्ञेयोंमें व्यापक है (आ० प० पृ० १६०)।

अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय–बिना किसी उपचार या उपाधिके गुण और गुणीका भेद करना जिस नयसे हो। यह भेद ठीक है इससे इसे सद्भूत कहते हैं। जैसे जीवका गुण ज्ञान [illegible] [illegible] १६०

वर्द्धमानपुराणोद्यदादित्योक्तिगभस्तयः ।
प्रस्फुरन्ति गिरीशान्तःस्फुटस्फटिकभित्तिषु ॥ ४१ ॥

अर्थात्—जिन्होंने परलोकको जीत लिया है और जो कवियोंके चक्रवर्ती हैं, उन वीरसेनगुरुकी कलंकरहित कीर्ति प्रकाशित हो रही है। जिनसेनस्वामीने पार्श्वनाथ भगवानके गुणोंकी जो अपार स्तुति बनाई है, वह उनकी कीर्तिका भली भांति संकीर्तन कर रही है तथा उनके अभ्युदयका कारण हुई है। और उनके रचे हुए वर्द्धमानपुराणरूपी ऊगते हुए सूर्यकी उक्तिरूपी किरणें विद्वान् पुरुषोंकी अन्तःकरणरूपी स्फटिक भूमिमें स्फुरायमान हो रही हैं।

इन श्लोकोंसे यह मालूम होता है कि हरिवंशपुराणकी रचना होनेके समय आदिपुराणके कर्त्ता जिनसेनका अस्तित्व था और उस समय वे पार्श्वजिनेन्द्रस्तुति तथा वर्द्धमानपुराण नामके दो ऐसे ग्रन्थ बना चुके थे, जिन्होंने विद्वानोंके हृदयमें स्थान पा लिया था। इसके सिवाय उनके नामके साथ जो 'स्वामी' पद दिया है, उससे जान पड़ता है कि, वे उस समय एक आदरणीय मुनि समझे जाते थे। इन तीन बातोंसे पाठक सोच सकते हैं कि, हरिवंशपुराणकी रचनाके समय उनकी अवस्था बहुत ही कम होगी, तो २५ वर्षकी होगी। विना इतनी अवस्थाके इतना पांडित्य, गौरव तथा स्वामी पदका पाना संभव नहीं हो सकता है। और हरिवंशकी

---

१. **तत्वार्थसूत्रव्याख्याता स्वामीति परिपठ्यते।** (नीतिसार) अर्थात् तत्वार्थसूत्रपर व्याख्यान (टीका) बनानेवाला अथवा उसका व्याख्यान करनेवाला '**स्वामी**' कहलाता है।

हैं व अन्य धर्ममें दोष लगाते हैं। उसको आचार्य चार प्रकारके मुनिसंघको एकत्र कर यह घोषणा करते हैं कि यह महा पापी है, यह वंदनायोग्य नहीं। ऐसा कहकर अनुपस्थापन प्रायश्चित्त देकर उस देशसे निकाल देते हैं (चारि० पृ० १३९)

अनुपात्त—जो इंद्रियां पदार्थको दूरसे जाने, भिड़ कर न जाने जैसे नेत्र और मन, इनको अप्राप्यकारी भी कहते हैं। शेष चार इंद्रियाँ भिड़कर जानती हैं उनको उपात्त या प्राप्यकारी कहते हैं (भग० पृ० २१७) (सर्वा० अ० १ सू० १९)

अनुपात्त परांगना—अविवाहित परस्त्री (चा० पृ० ११)

अनुपालना शुद्ध—प्रत्याख्यानके चार भेदोंमें तीसरा भेद। चार भेद हैं (१) विनय शुद्ध—दर्शन ज्ञान चारित्र तप व उपचार विनय सहित प्रत्याख्यान (२) अनुभाषणा शुद्ध—प्रत्याख्यान पाठके अक्षरादि शुद्ध पढ़ना, (३) अनुपालना शुद्ध—रोग, उपसर्ग व भिक्षाके अभावमें व श्रममें व वनमें जो पालन किया जाय, भग्न न हो, (४) भाव विशुद्ध—रागादिसे प्रत्याख्यान दूषित न हो—(मू० गा० ६४०–६४३)

अनुप्रेक्षा—विषयभोगोंकी बारबार चिंता करना। यह भोगोपभोगपरिमाण शिक्षाव्रतका प्रथम अतीचार है। (रत्न०श्लोक९०) आत्मामें वैराग्यके लिये जिनको बारबार चिंतवन किया जावे वे १२ भावनाएं हैं—१ अनित्य, २ अशरण, ३ संसार, ४ एकत्व, ५ अन्यत्व, ६ अशुचि, ७ आस्रव, ८ संवर, ९ निर्जरा, १० लोक, ११ बोधिदुर्लभ, १२ धर्म (सर्वा० अ० ९ सू० ७)।

अनुव्रत—देखो शब्द अणुव्रत (प्र० जि० पृ० १७४) हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रह, इन पांच पापोंका एक देश त्याग, श्रावकके पालने योग्य।

अनुभय गत स्थान—देश संयमके स्थान तीन प्रकार हैं। १. प्रतिपात गत—देश संयमसे गिरते हुए अंतमें संयमके स्थान, २. प्रतिपद्यमानगत—देश संयमको प्राप्त होते प्रथम समयके स्थान, ३ अनुभयगत—इनके बिना अन्य समयोंमें सम्भवते स्थान।

अनुभय भाषा—जिस भाषाको सत्य भी नहीं कह सके व असत्य भी नहीं कह सके। जैसे—द्वेन्द्रियसे लेकर असैनी पंचेन्द्रिय तककी अनक्षर रूप भाषा तथा सैनी पंचेन्द्रियोंकी अक्षर रूप भाषा आमंत्रणी आदि। इस सैनी पंचेन्द्रियोंकी अनुभय भाषाके ८ भेद हैं–(१) आमन्त्रणी–जैसे हे देवदत्त! इधर आ (२) आज्ञापनी–तू इस कामको कर (३) याचनी–यह वस्तु दो (४) आपृच्छनी–यह क्या है? (५) प्रज्ञापनी–मैं क्या करूं। (६) प्रत्याख्यानी–मैंने यह त्यागा (७) संशयवचनी–यह चांदी है सीप है (८) इच्छानुलोम्नी–ऐसा ही मैं चाहता हूं। द्वेन्द्रियाकी अनक्षर भाषाको लेकर ९ भेद होते हैं (गो०जी०गा०२२४–२२९) केवलीकी दिव्यध्वनिको भी अनुभय भाषा कहते हैं।

अनुभय मनोयोग—मनके द्वारा आत्माके प्रदेशोंका सकम्प, जो मन सत्य व असत्य निर्णयसे रहित पदार्थके ज्ञान सहित हो (गो.जी.गा.२१९)।

अनुभय वचन—देखो अनुभय भाषा।

अनुभय वचनयोग—अनुभय वचनके द्वारा आत्मप्रदेशोंका सकंप होना।

अनुभयात्मक भाषा—अनुभयरूप भाषा—देखो शब्द अनुभय भाषा।

अनुभव—तजुर्बा, स्वाद लेना, तन्मय होकर भोगना, आत्माका स्वाद लेना। 'वस्तु विचारत ध्यावतैं, मन पावै विश्राम। रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभौ याकौ नाम ॥१७॥ अनुभव चिंतामनि रतन, अनुभव है रस कूप। अनुभव मारग मोखकौ, अनुभव मोख सरूप ॥१८॥ (बनारसी नाटक समयसार)

अनुभव प्रकाश—पं० दीपचंदजी कासलीवाल कृत स्वात्मानुभवका कहनेवाला एक हिंदीका ग्रंथ, बहुत उपयोगी है, मुद्रित है। (दि० जैन ग्रं० (२)

जिनसेनके पहले जो **वीरसेनगुरुकी** प्रशंसा की गई है, उससे स्पष्ट हो रहा है कि, **वीरसेनके** पश्चात् जो जिनसेनका उल्लेख है, वह **वीरसेनके** शिष्य **जिनसेनका** ही है। इसके सिवाय **वीरसेनको** जो **कवीनां चक्रवर्तिनः** विशेषण दिया गया है, उससे यह भी विदित होता है कि ये **वीरसेन** भी आदिपुराणकर्त्ताके गुरुसे कोई भिन्न नहीं हैं। क्योंकि आदिपुराणके प्रारंभमें जो उनकी स्तुति की गई है, उसमें भी **कविवृन्दारको मुनिः** (देखो पृष्ठ १२ पंक्ति २) आदि विशेषण दिये गये हैं, जिनसे उनका श्रेष्ठ कवि होना सिद्ध होता है। और आदिपुराणके कर्त्ताके समान हरिवंशके कर्त्ताने उन्हें सिद्धान्त-शास्त्रोंकी टीका रचनेवाला नहीं कहा है। क्योंकि हरिवंशकी रचनाके समय उन्होंने टीकाएं नहीं बनाई थीं, कवित्वमें ही उनकी श्रेष्ठता थी। इससे सिद्ध है कि, हरिवंशमें जिन जिनसेनकी स्तुति की गई है, वे हमारे चरित्रनायक ही हैं।

भगवज्जिनसेनका जन्म कब हुआ होगा, इसका विचार किया जा चुका। अब यह देखना है कि, उनका स्वर्गवास कब हुआ होगा। यद्यपि इसके लिये कहीं किसी निश्चित तिथिका उल्लेख नहीं मिलता है परन्तु अनुमानसे जान पड़ता है कि लगभग शाकसंवत् ७७० (वि० सं० ९०५) तक वे इस संसारमें रहे होंगे। क्योंकि **वीरसेनस्वामीने** जो सिद्धान्तशास्त्रकी वीरसेनीया नामकी टीका बनाई है, उसका शेष भाग जिनसेनस्वामीने शक-संवत् ७५९ में समाप्त किया है, ऐसा जयधवला टीकाकी प्रशस्तिसे मालूम पड़ता है। देखियेः—

अनुमति—अपनी सम्मति, मुनिको तीन प्रकार अनुमतिका त्याग उद्दिष्ट भोजन त्यागमें होता है ।

(१) प्रतिसेवा अनुमति—जो पात्रका नाम ले पात्रके अभिप्रायसे भोजन करावे व पात्र जानकर करले—

(२) प्रतिश्रवण अनुमति—दाता साधुको कहे कि तुम्हारे निमित्त आहार तय्यार कराया है ऐसा सुनकर साधु आहार लेले या आहारके पीछे सुने कि उसीके वास्ते आहार हुआ था फिर भी कुछ दोष न माने ।

(३) संवास अनुमति—जो आहारादिके निमित्त ऐसा ममत्व भाव करे कि गृहस्थ लोग हमारे हैं ।

अनुमति त्याग प्रतिमा—श्रावककी ११ श्रेणियोंमेंसे १० वीं श्रेणी । इस श्रेणीका धारी श्रावक आरम्भ परिग्रहादि बाहरी कामोंमें किसीको अपनी सम्मति नहीं देगा । बहुत ही संतोषी रहेगा । भोजनके समय जो बुलाएगा वहां शुद्ध मिलेगा तब जीम लेगा । आप यह नहीं चाहेगा कि दातार ऐसा भोजन बनावे या बनाता तो ठीक (र० श्रा० श्लोक १४६) ।

अनुमती—किन्नरगीत नगरके राजा रतिमयूखकी रानी (प० पु० पृ० ७१) ।

अनुमान—साधनसे साध्यका ज्ञान प्राप्त करना, जैसे कहींपर धूआं निकल रहा है, इससे ही यह निश्चय करना कि वहां अग्नि होगी (परीक्षा० सू० १४–५९) यह अनुमान दो प्रकारके हैं—(१) स्वार्थ अनुमान—जो दूसरेके उपदेश बिना स्वतः किसी साधनसे साध्यका ज्ञान करले, (२) परार्थ अनुमान—दूसरेके कहनेसे जो साधनके द्वारा साध्यको जाने । जैसे स्वयं धूम देखकर अग्नि मानना पहलेका दृष्टांत है और दूसरेके कहनेसे धूआं देखकर अग्नि मानना दूसरेका दृष्टांत है ।

अनुमान बाधित—जिसके साध्यमें अनुमानसे बाधा आवे । जैसे कोई कहे घास आदि कर्ताकी बनाई हुई है क्योंकि ये कार्य हैं । इसमें बाधा आती है । किसीकी बनाई हुई नहीं क्योंकि इनका बनानेवाला ईश्वर शरीरधारी नहीं है । जो जो वस्तु शरीरधारीकी बनाई नहीं है वह वह कर्ताकी बनाई हुई नहीं है जैसे आकाश । (जै० सि० प्र० नं० ९६) ।

अनुमानाभास—जो अनुमान ठीक न हो । जिसमें साध्य व साधनका अविनाभाव सम्बन्ध न मिले (परी० सू० ११) ।

अनुमानित दोष— } साधु गुरुके पास अपने
अनुमापित दोष— } दोषोंकी आलोचना करे उसमें १० दोष न लगावे । गुरुसे कहे कि मैं निर्बल हूं, मुझे थोड़ा प्रायश्चित्त दिया जायगा तो मैं दोषको कहूंगा । ऐसा कहना अनुमापित या अनुमानित दोष है । वे १० दोष हैं—(१) आकंपित—कुछ भेट देकर दोष कहना कि कम दंड मिले । (२) अनुमापित । (३) दृष्ट—दूसरेको दिखपड़ा हो ऐसा दोष कहना, न दिखनेवाला दोष छिपा लेना । (४) बादर—स्थूल दोषोंको कहना छोटे दोषोंको न गिनना । (५) सूक्ष्म—बड़े२ दोषोंको छिपा कर छोटे२ दोष कहना । (६) प्रच्छन्न—अपना दोष न कहकर गुरुसे गुप्त रीतिसे पूछ लेना कि ऐसे दोषवालेको क्या प्रायश्चित्त लेना चाहिये । (७) शब्दाकुलित—जहां बहुत शब्द होरहा हो, मुनि एक साथ आलोचना कर रहे हों तब गुरुसे अपना दोष कहना । (८) बहुजन—गुरुने प्रायश्चित्त बताया हो उसको दूसरोंसे भी पूछना कि यह ठीक है या नहीं । (९) अव्यक्त—किसी भी मुनिसे दोष कहकर प्रायश्चित्त लेलेना, गुरुसे न कहना । (१०) तत्सेवी—जो प्रायश्चित्त गुरुने किसीको उसके दोषका बताया है उसे ही जानकर आप भी ले लेना, गुरुसे अपना दोष न कहना (भा० आ० पृ० १२८, मू० गा० १०३०)

अनुमोदन— } किसीने शुभ वा अशुभ काम
अनुमोदना— } किया हो उसको अच्छा मानना ।

अनुयोग—[illegible] श्रुतज्ञानके [illegible] १८ भेद हैं—(१) पर्याय, (२) पर्याय समास, (३) पद, (४) पद समास, (५) संघात, (६) संघात समास, (७) प्रतिपत्ति, (८) प्रतिपत्ति समास,

सुदी दशमीके पूर्वाह्नमें जब कि अष्टान्हिकाका महोत्सव था और पूजा हो रही थी, पूर्ण हुई, सो कल्पकालपर्यन्त इसका कभी क्षय नहीं होवे। अनुष्टुप् श्लोकोंकी गिनतीसे इस टीकाके कुल ६० हजार श्लोक हुए हैं। इसमें तीन स्कन्ध हैं, जिनके क्रमसे विभक्ति, संक्रमोदय, और उपयोग ये तीन नाम हैं। शकसंवत् ७५९ में कषायप्राभृतकी यह जयधवला टीका समाप्त हुई। गाथासूत्र, सूत्र, चूर्णिसूत्र, वार्तिक और वीरसेनीया टीका इस प्रकारसे इस पंचांगी टीकाका क्रम है। जिसमें वीरभगवान्‌के कहे हुए अभिप्रायोंका संग्रह किया गया है, दूसरे आगमोंके विषय जिसमें बिलोये गये हैं, श्रेष्ठ जिनसेन मुनीश्वरने जिसमें (अपने गुरुके) उपदेश किये हुए अर्थोंकी रचना की है, श्रीपाल नामके मुनिने जिसे सम्पादन की है, और सूत्रोंके अर्थका जिससे बोध होता है; ऐसी यह अतिशय पवित्र या प्रकाशमान जयधवला टीका जबतक संसारमें सूर्य चंद्र हैं, तब तक स्थिर रहे।

इसमें कहीं वीरसेनीया और कहीं जयधवला टीका लिखी देखकर पाठक चक्करमें न पड़ें। वास्तवमें कषायप्राभृतकी (जिसे प्रायोदोपप्राभृत भी कहते हैं और जो ज्ञानप्रवादनाम पांचवें पूर्वके दशम वस्तुका तीसरा प्राभृत है) जो वीरसेनस्वामी और जिनसेनस्वामीकृत ६० हजार श्लोक प्रमाण टीका है, उसका नाम तो वीरसेनीया है और इस वीरसेनीया टीकासहित जो कषायप्राभृतके मूलसूत्र और चूर्णिसूत्र वार्तिक वगैरह अन्य आचार्योंकी टीकाएं हैं, उन सबके संग्रहको जयधवलाटीका कहते हैं। यह संग्रह श्रीपाल नामके

भोगोपभोग शिक्षा व्रतका दूसरा अतीचार है (रत्न० श्रा० श्लो० ९०)

अनुश्रोत (पदानुसारी बुद्धि ऋद्धि)–बुद्धिऋद्धिके पदानुसारी भेदमें पहला भेद। एक पदको सुनकर ग्रंथके आदि मध्य अंतको स्मरण कर लेना (सर्वा० अ० ६ सू० ३६)

अनुसमयापवर्तन–समय समय अनुभागका घटाना। (क० ए० २९)

अनुस्नान–विशेष पूजादि क्रियामें जो मंत्र स्नानादि किया जाता है। इसके मुख्य दो भेद हैं–१ मंत्रस्नान–झं वं इन दो अक्षरोंको जलमंडलमें लिखकर जलमें उसे रक्खे फिर तर्जनी अंगलीसे जल लेकर अपने ऊपर डाले। २ अमृतस्नान–झं वं ह्वः पोहः इन अमृत अक्षरोंसे अपनेको सींचा हुआ समझकर ध्यान करे (प्रति० ए० ३९)।

अनूपकुमारी–

अनूपचन्द्र–एक श्वे० यतिका नाम। (शिक्षा० ए० ६९६)

अनृत–असत्य, झूठ १० प्रकार सत्यसे विपरीत वचन जो, १० तरहका सत्य है। (१) जनपद या देश–जो भाषा, प्रजा व देशमें प्रचलित हो। जैसे भातको कहीं चोरू, कुल व भक्त कहते हैं। (२) सम्मत–बहुजन–मान्य वचन जैसे राजाकी स्त्रीको देवी। (३) स्थापना–किसीमें किसीको स्थापित करना जैसे पार्श्वनाथकी मूर्तिको पार्श्वनाथ कहना। (४) नाम–गुणकी अपेक्षा न कर नाम रखना, जैसे किसीको कहना इन्द्रचन्द्र। (५) रूप–स्वरूपकी वा वर्णकी अधिकता देखकर किसीका रूपरूप कहना जैसे–बगलाओंकी पंक्ति सफेद होती है। (६) प्रतीत्य–एक दूसरेकी अपेक्षासे जो कहा जाय जैसे यह वृक्ष बड़ा है। (७) व्यवहार–जैसे कहना भात पकाया जाता है। (८) संभावना–किसीकी शक्तिको कहना जैसे इंद्र जम्बूद्वीपको उलट सक्ता है। (९) भाव–जो हिंसादि दोष रहित व शास्त्रकी मर्यादारूप हो जैसे प्रासुयला द्रव्य डालनेसे पानी शुद्ध प्राशुक होजाता है। (१०) उपमा–जो भाव उपमारूप हों–जैसे पल्योपम सागरोपम आदि।

अनृद्धि प्राप्तार्य–जिन्हें ऋद्धियें न सिद्ध हों ऐसे आर्य मानव जो ५ प्रकारके होते हैं। (१) क्षेत्रार्य–आर्यखंडमें उत्पन्न हुए। (२) जात्यार्य–इक्ष्वाकु आदि वंशोंमें उत्पन्न हुए। (३) कर्मार्य–इनके तीन भेद हैं (१) सावद्य कर्मार्य जो असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प, वाणिज्यसे आजीविका करें। (२) अल्पसावद्यकर्मार्य–अल्प हिंसाके काम करनेवाले श्रावक, (३) असावद्य कर्मार्य–मुनि। (४) चारित्रार्य–जो स्वयं उपदेश विना चारित्रमें उन्नति करके क्षीणमोह तक पहुंचे वे अभिगत चारित्रार्य हैं। जो बाहरी उपदेशसे चारित्रमें उन्नति करें वे अनभिगत चारित्रार्य हैं। (५) दर्शनार्य–जो सम्यग्दृष्टी मानव हैं–इनके आज्ञादि १० भेद हैं (तत्वार्थ० अ० ३ सू० ३६)

अनेका–सर्व जगतके पदार्थोंकी एक सदृशताको महा सत्ता या एका कहते हैं। प्रत्येक वस्तुकी भिन्न २ सत्ताको अवान्तर सत्ता या अनेका कहते हैं (सि० द० ए० १९)

अनेकांत–अनेक अंत या धर्म या स्वभाव जिसमें पाए जावें ऐसे पदार्थ। अनेक धर्मवाले पदार्थोंको कहनेवाली व भिन्न२ अपेक्षासे बतानेवाली स्याद्वादरूप जिनवाणी। हरएक पदार्थ अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा अस्ति या भावरूप है, वही समय पर पदार्थके द्रव्यादि चारकी अपेक्षा नास्ति या अभावरूप है। हरएक वस्तु द्रव्य व गुणोंके सदा ही बने रहनेसे नित्य है, वही समय पर्यायोंके पलटनेकी अपेक्षासे अनित्य है। हरएक वस्तु अपने एक द्रव्यकी अपेक्षा एक है, वही अनेक गुण व पर्यायोंकी अपेक्षा अनेक है। [illegible] स्वरूप है। [illegible] अनेकांत कहते हैं, यही [illegible] है [illegible]

तच्छेषं चत्वारिंशतासहस्रैः समापितवान् ।
जयधवलैवं षष्ठिसहस्रग्रन्थोऽभवट्टीका ॥ १८३ ॥

भावार्थ—गुरु महाराजकी आज्ञासे वीरसेनस्वामी चित्रकूट छोड़कर माटग्राम में आये। वहां आनतेन्द्रके वनवाये हुए जिनमन्दिरमें वैठकर उन्होंने व्याख्याप्रज्ञप्ति (वप्पदेवगुरुकृत) को प्राप्तकरके उसके जो पहले (कर्मप्राभृतके) छह खंड हैं, उनमेंसे छठे खंडको संक्षेप किया और सवकी वन्धनादि अठारह अधिकारोंमें (अध्यायोंमें) प्राकृतसंस्कृतभाषामिश्र धवलानामकी टीका ७२ हजार श्लोकोंमें रची। और फिर दूसरे कषायप्राभृतके पहले स्कन्धकी चारों विभक्तियोंपर जयधवला नामकी २० हजार श्लोक प्रमाण टीका लिख करके स्वर्गलोकको सिधारे। पीछे उनके शिष्य श्रीजयसेनगुरुने ४० हजार श्लोक और वनाकर जयधवलाटीकाको पूर्ण की। जयधवला सव मिलाकर ६० हजार श्लोकोंमें पूर्ण हुई।

यहां जो शिष्यका नाम जयसेनगुरु लिखा है वह जैसा कि पहले कहा जा चुका है, छपानेवालोंके अथवा लेखक महाशयोंके दृष्टिदोषसे लिखा गया है। इसके लिये एक प्रमाण तो यह है कि, वीरसेनस्वामीके जयसेन नामके कोई शिष्य नहीं थे—जिनसेन ही थे और दूसरे विवुध श्रीधरकृत गद्यश्रुतावतारमें जयसेनके स्थानमें जिनसेन ही लिखा है। यथाः—

अत्रान्तरे एलाचार्यभट्टारकपार्श्वे सिद्धान्तद्वयं वीरसेननामा मुनिः पठित्वाऽपराण्यपि अष्टादशाधिकाराणि प्राप्य पञ्चखण्डे पट्खण्डं संकल्प्य संस्कृतप्राकृतभाषया सत्कर्मनामटीकां द्वास-

अन्तद्विक—अंतके दो गुणस्थान सयोग और अयोग केवली।

अन्तप—विंध्याचलके पृष्ठभागके एक देशका प्राचीन नाम (हरि० पृ० १९७)।

अन्तकरण—कर्मोंमें ऊपर व नीचेके निषेकोंको छोड़ बीचके निषेकोंका अभाव करना (ल०पृ० २९)

अन्तरद—८८ ग्रहोंमेंसे ९वां ग्रह (त्रि० ३६३)

अन्तरदेव—विजयार्द्ध पर्वतका स्वामी देव जिसने भरत चक्रीकी आधीनता स्वीकार की (इ० वृत्ति नं० १ पृ० ९८)।

अंतरद्वीप—ऐसे द्वीप जिनमें कुभोगभूमि वाले मनुष्य वास करते हैं। देखो शब्द "अनार्य मनुष्य"। ढाई द्वीपमें ९६ द्वीप हैं, इसके सिवाय लवणोदधिमें ९६ व कालोदधिमें कुछ अधिक ९०० अंतद्वीप हैं (हरि० पृ० ७७–८२)

ढाई द्वीपमें १६० विदेह देश हैं, हरएक विदेह देशमें उपसमुद्र हैं, उसके भीतर जो द्वीप हैं वे भी अंतरद्वीप हैं, यह उपसमुद्र मुख्य नगरी और महा नदीके बीच आर्यखंडमें है। इस उपसमुद्रमें टापू हैं। उनमें ५६ तो अंतरद्वीप हैं व २६००० रत्नाकर हैं जहां रत्न पैदा होते हैं। व ७०० कुक्षिवास हैं जहां रत्न पैदा होते हैं (त्रि० गा० १७७), लवण समुद्रके अंतरंतटसे परे व वाहरी तटसे उरे ४२००० योजन जाकर ४२००० योजन पास वाले विदिशा अर अंतरदिशामें द्वीप हैं। उनमेंसे चारों विदिशामें दोनों तरफ आठ सूर्य नामके द्वीप हैं। और दिशा विदिशाके बीच आठ अंतरदिशामें दोनों तरफ सोलह चंद्र नामके द्वीप हैं। ये सब गोल हैं। तथा लवण समुद्रके अभ्यंतर तटसे परे १२००० योजन जाने पर १२००० योजन व्यासका धारक गोल आकारका वायु विदिशामें गौतम द्वीप है। ये द्वीप नागकुमार देवोंके निवास हैं। ये कुभोगभूमिवालोंसे भिन्न हैं। (त्रि० गा० ९०९–९१०)

अंतरद्वीपग—अंतरद्वीपोंमें रहनेवाले मानव (देखो ऊपर) (श्र० भा० पृ० ३२)।

अंतरद्वीपिका—अंतरद्वीपोंमें रहनेवाली स्त्रियां (श्र० भा० पृ० ३२)।

अंतरद्वीपज म्लेच्छ—देखो शब्द "अनार्य मनुष्य" (त्रि० गा० ९१३)।

अंतरद्वीपज कुमानुष—अंतरद्वीपज म्लेच्छ।

अंतरनिवासी व्यंतर—देखो शब्द अनुत्पन्न व्यंतर। मध्यलोकमें रहनेवाले व्यंतर जो पृथ्वीसे २०००१ हाथ ऊपर रहते हैं। इनकी आयु २० हजार वर्षकी होती है (त्रि० गा०२९१–२९२), वे नागकुमार देव जो ८ सूर्य व १६ चन्द्र अंतरद्वीपोंमें व गौतमद्वीपमें हैं। देखो शब्द "अंतरद्वीप"। भरतक्षेत्रके दक्षिण समुद्र तटसे परे संख्यात योजन जानेपर मगध, वरतनु व प्रभास तीन द्वीप हैं। इनमें इनही नामके धारक देव रहते हैं। इनको चक्रवर्ती साधते हैं। ऐसे ही तीन द्वीप ऐरावतके उत्तरमें हैं। (त्रि० गा० ९१२)।

अन्तर भूमिधर—एक जातिके विद्याधर। विद्याधरोंकी जातियां हैं–(१) गौरिक, (२) गांधार, (३) मानव, (४) मनु, (५) मूलवीर्य, (६) अंतर्भूमिधर, (७) शंकुक, (८) कौशिक। ये आठ आर्य जातिके विद्याधर कहलाते हैं तथा (१)मातंग, (२) स्मशान, (३) पांडुक, (४) कालश्वपाकी, (५) श्वपाक, (६) पार्वतेय, (७) वैशालय, (८) वार्क्षमूलक, ये आठ मातंग जातिके विद्याधर हैं। (हरि० पृ० २८४)

अन्तरमार्ग—न्यास और उपन्यास विधि–गांधारोदीच्य–वारागमें जिसमें षड्ग मध्यम और सप्तम अंश होते हैं। गानेका एक भेद (हरि० पृ० २२१)

अन्तरमार्गणा—जिन अवस्थाओंमें कोई जीव जितने काल न पाया जावे; इनको सांतर मार्गणा भी कहते हैं। ऐसी आठ सांतरमार्गणायें हैं। (१) उपशम सम्यक्त–में ७ दिनका उत्कृष्ट अंतर है अर्थात् उत्कृष्ट रूपसे ७ दिन तक कभी कोई जीव संसारमें उपशम सम्यक्तको न प्राप्त करे।

अब प्रस्तुत विषयपर आइये । इससे शकसंवत् ७५९ तक जिनसेनस्वामी स्वामी थे, इस विषयमें कोई सन्देह नहीं रहा । अब यह देखना है कि, आगे वे और कबतक इस धराधामको पवित्र करते रहे हैं ।

हमारी समझमें आदिपुराणकी रचना जयधवला टीकाके पूर्ण हो चुकनेके पश्चात् हुई है । क्योंकि आदिपुराणकी प्रस्तावना जिस समय लिखी गई है, उस समय वीरसेनस्वामी सिद्धान्तशास्त्रोंकी दोनों टीकाओंके कर्त्ता कहलाते थे और स्वर्गवास कर चुके थे, ऐसा निम्नलिखित श्लोकसे अनुमान होता है:—

> सिद्धान्तोपनिबन्धानां विधातुर्मद्गुरोश्चिरम् ।
> मन्मनःसरसि स्थेयान्मृदुपादकुशेशयम् ॥ ५७ ॥

इस श्लोकका अर्थ पहले लिखा जा चुका है । इसमें जो 'सिद्धान्तोंकी टीकाएं बनानेवाले' विशेण दिया है, वह यदि आदिपुराण जयधवला टीकासे पहले बना होता, तो नहीं दिया जाता । वीरसेनस्वामी 'टीकाएं' बना चुके थे, इसीलिये दिया गया है और, 'उनके कोमल चरण कमल मेरे हृदयसरोंवरमें ठहरें' ऐसी जो आकांक्षा की गई है, उससे ध्वनित होता है कि, वीरसेनस्वामीका स्वर्गवास हो चुका था, क्योंकि परलोकगत अवस्थामें ही गुरुके चरण स्मरण किये जाते हैं । इसके सिवाय जब महापुराण अधूरा छोड़के ही जिनसेनस्वामी स्वर्गवास कर गये हैं, तब स्वयं ही सिद्ध है कि, महापुराण उनकी सबसे पिछली रचना है । जयधवला टीका उससे बहुत पहले बन चुकी होगी ।

(१) अपायविचय–मेरे पापोंका नाश कैसे हो यह विचारना।

(२) उपायविचय–मेरे सदा मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति रहे ऐसा विचारना।

(३) जीवविचय–आत्माका स्वरूप निश्चय व व्यवहार नयोंसे विचारना।

(४) अजीवविचय–पुद्गलादि पांच प्रकार अजीवोंका स्वरूप विचारना।

(५) विपाकविचय–कर्मोंके शुभ अशुभ फलोंका विचारना।

(६) विराग विचय–संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य चिन्तवन करना।

(७) भवविचय–संसार भ्रमणके दोषोंका चिंतवन करना।

(८) संस्थानविचय–संसारमें जो पदार्थ जिस अवस्थामें है उसका उसी प्रकार चिंतवन करना।

(९) आज्ञाविचय–आज्ञानुसार तत्वका विचार।

(१०) हेतु विचय–मोक्षके व बंधके कारणोंका विचार। (चा० १६४)

अंतरंग तप–सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई रत्नत्रय धर्मकी वृद्धिके लिये इच्छाका निरोध करना सो तप है। जिसमें अंतरंग मनमें ही वृत्ति करनी पड़े वह अंतरंग तप अथवा जिसमें मनके निग्रहका विशेष प्रयोजन हो सो अंतरंग तप है। बाह्य तपमें बाहरी द्रव्यकी अपेक्षा होती है व दूसरेको भी प्रगट होता है। यह अंतरंग तप छः प्रकारका है। (१) प्रायश्चित्त–प्रमादसे लगे हुए दोषोंको दंड लेकर शुद्ध करना। (२) विनय–रत्नत्रय व पूज्योंमें आदर करना। (३) वैय्यावृत्यम्–अन्योंकी काय आदिसे सेवा करनी। (४) स्वाध्याय–आलस्य त्यागकर ज्ञानकी भावना करनी। (५) व्युत्सर्ग–पर पदार्थोंमें अपनेपनेका संकल्प त्यागना। (६) ध्यान–चित्तको एकाग्र करके धर्म व शुक्लध्यान करना। (सर्वा० अ० ९ सू० २०)

अंतरंग तप उपधि व्युत्सर्ग–क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, हास्य, रति, अरति, शोक और भय आदि दोषोंको दूर करना इसे अभ्यंतरोपधि व्युत्सर्ग भी कहते हैं। (चा० पृ० १४७)

अंतरात्मा–जो आत्माके सच्चे स्वरूपको पहचाने, सम्यग्दृष्टी जीव। जो शरीरादिमें आत्मबुद्धि करता है वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टी है। चौथे अविरत सम्यग्दर्शन गुणस्थानसे लेकर बारहवें क्षीण मोह गुणस्थान तक अंतरात्मा हैं। फिर तेरहवें व १४ वें गुणस्थान वाले व सिद्ध परमात्मा हैं। जघन्य अंतरात्मा अविरत सम्यग्दृष्टी हैं, मध्यम अंतरात्मा देशविरति श्रावक व प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि हैं; उत्कृष्ट अंतरात्मा शुद्धोपयोगी मुनि ७ वेंसे १२ वें गुणस्थानवाले तक। (समाधिशतक श्लोक ४–५ या देखो योगेन्द्रदेव कृत परमात्मप्रकाश और योगसार)।

दोहा–मिच्छा दंसण मोहियउ परु अप्पाण मुणेइ।
सोवहिरप्पा जिण भणिउ पुण संसारु भमेइ ॥७॥
जो परियाणइ अप्पपरु जो परभाव चएइ।
सो पंडिउ अप्पा मुणहि सो संसार मुएइ ॥८॥
णिम्मलणिकलु सुद्धजिण कि हुवुधु सिवसंतु।
सो परमप्पा जिण भणिउ एहउ जाणि णिभंतु ॥९॥

(योगसार)

भावार्थ–जो मिथ्या श्रद्धानसे मोही होकर आत्माको नहीं पहचानता है वह बहिरात्मा संसारमें घूमता है। जो आत्माको व परको भिन्न जानकर परभावको त्यागता है और अपने आत्माका अनुभव करता है वह पंडित है, अन्तरात्मा है, वह संसारसे छूटता है। जो मल रहित, शरीर रहित, शुद्ध, कर्मोंका जीतनेवाला, वीतराग, आनन्दरूप है, ज्ञानस्वरूप बुद्ध है, व ज्ञान करके सर्व व्यापी विष्णु है वही परमात्मा है।

अन्तराय–विघ्न, श्रावक व मुनिके आहार करने सम्बंधी जो दोष बताए जावें। व्रती श्रावकोंके लिये नीचे लिखे अन्तराय जरूरी हैं। यदि इनमेंसे कोई दोष होजावे तो आहारको उस समय त्याग करे।

देखने और छूने दोनोंके अन्तराय–(१) गीला

पहले लिख चुके हैं कि, जिनसेनस्वामीके पीछे संघके स्वामी विनय-सेन हुए थे और फिर उनके पीछे गुणभद्र हुए थे। इससे अनुमान होता है कि, शायद गुणभद्रस्वामीने संघका आधिपत्य अर्थात् आचार्यपद पाचुकनेपर महापुराणका लिखना शुरू किया होगा और क्या आश्चर्य है, जो महापुराण बीचमें इसलिये पड़ा रहा हो कि, ऐसा महान् आर्षग्रन्थ एक संघाधिपति अनुभवी ऋषिके द्वारा ही पूर्ण होना चाहिये, सामान्य मुनिके द्वारा नहीं।

उधर जयधवला टीकाके पूर्ण होते ही यदि महापुराणकी रचना शुरू हो गई हो, और वह इस ख्यालसे कि उस समय जिनसेन-स्वामीकी अवस्था ८० वर्षसे उपर हा चुकी थी, बहुत थोड़ी थोड़ी होती रही हो; तो उसके दशहजार श्लोक पूर्ण होनेमें लगभग १० वर्ष लग गये होंगे। महापुराणका जितना भाग जिनसेनस्वामीकृत है उसकी श्लोकसंख्या दश हजार है। इस हिसावसे शकसंवत् ७७० तक अथवा बहुत जल्दी हुआ हो, तो निदान ७६५ तक तो भगवान् जिनसेनका अस्तित्व माननेमें कोई आपत्ति नहीं दीखती है।

इस तरह भगवान् जिनसेन अपने अस्खलित ब्रह्मचर्य, संयम और पवित्र विचारोंके कारण लगभग ९०–९५ वर्षकी अवस्थाको प्राप्त करके और संसारका अनन्त उपकार करके स्वर्गवासी हुए।

---

१. जिनसेनस्वामीके गुरु वीरसेनस्वामीकी अवस्था भी ८० वर्षसे कम न हुई होगी, ऐसा जान पड़ता है। क्योंकि वे जयधवलाटीका पूर्ण होनेके दश वर्ष पहले लगभग शकसवत् ७५० में स्वर्गवासी हुए होंगे और जन्म उनका अधिक नहीं तो जिनसेनस्वामीके १० वर्ष पहले लगभग ६६५ शकमें हुआ होगा। इस हिसावसे ८५ वर्षकी अवस्था हो जाती है।

स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन, छिन्न (गो० जी० गा० ३६६)।

अन्तरीक्ष—आकाश ।

अन्तरीक्ष निमित्त ज्ञान—देखो शब्द 'अंतरिक्ष'।

अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ—बरार प्रांतके जिला अकोलामें बासिमसे उत्तर पश्चिम १९ मील सिरपुर ग्राममें जैनियोंका माननीय अतिशयक्षेत्र । यहां पुराने मंदिरके भौंरेमें एक बहुत प्राचीन संवत रहित श्री पार्श्वनाथकी मूर्ति है। इसको अन्तरीक्ष इसलिये कहते हैं कि महीन कपड़ा प्रतिमाके बहुभागसे बाहर निकल जाता है । इम्पीरियल गजटियर बरार सन् १९०९ में है—"यहां श्री अन्तरीक्ष पार्श्वनाथका मंदिर है जो दिगम्बर जैन जातिका है (belongs to Digamber Jain Community) इसमें एक लेख सन् १४०६ का है । इसमें अन्तरीक्ष पार्श्वनाथ नाम लिखा है । यह मंदिर इस लेखसे १०० वर्ष पहलेका बना है । यह कहावत है कि एलिचपुरके यल्लेक राजाने नदी तटपर इस मूर्तिको प्राप्त किया था । वह अपने नगरको लेजारहा था, परन्तु उसे पीछे फिरकर नहीं देखना चाहिये था । सिरपुरके स्थानपर उसने पीछे फिरकर देख लिया तब मूर्ति आगे नहीं बढ़ सकी । अकोला गजटियर सन् १९११ में विशेष यह है कि जैन मंदिरके द्वारके मार्गके दोनों तरफ नग्न जैन मूर्तियां हैं । एल राजा जैनी थे । इसको कोढ़का रोग होगया, वह एक सरोवरमें नहानेसे अच्छा होगया। राजाको स्वप्न आया कि प्रतिमा है। वह प्रतिमा लेकर चला । जब प्रतिमा सिरपुरके यहांपर न चल सकी तब राजाने यहीं हेमदपंथी मंदिर बनवाया । यह मूर्ति यहां विक्रम संवत् ५५५ को स्थापित हुई थी । यह मूर्ति पुरुषाकार बड़ी ही मनोज्ञ पद्मासन पाषाणकी है । दर्शनसे बड़ा वीतराग भाव चढ़ता है । दूर दूरसे जैन लोग यात्रार्थ आते हैं ।

अंतर्द्धान—विक्रिया ऋद्धिका एक भेद जिससे अदृश्य होनेका सामर्थ्य हो जाता है (भ० पृ० ५२२)। इस ऋद्धिके कुछ भेद हैं–१ अणिमा–जिससे शरीर सूक्ष्म कर लिया जावे, २ महिमा–जिससे बड़ा शरीर किया जासके, ३ लघिमा–जिससे हलका शरीर किया जावे, ४ गरिमा–जिससे भारी शरीर किया जावे, ५ प्राप्ति–भूमिसे अँगुली द्वारा मेरुके शिखरको चंद्र व सूर्य विमानको स्पर्शनेकी शक्ति, ६ प्राकाम्य–जलमें भूमिकी तरह व भूमिपर जलकी तरह चलनेकी शक्ति, ७ ईशित्व–तीन लोकको प्रभुपना प्रगट करनेकी सामर्थ्य, ८ वशित्व–सर्वको वश करनेकी शक्ति, ९ प्रतिघात–पर्वतके मध्यमेंसे जाने आनेकी ताकत १० अंतर्धान–अदृश्य होनेकी शक्ति ।

अंतर्मुहूर्त- देखो शब्द "अंतरमुहूर्त" ।

अंतसल्लेखना—मरणके अंतमें समाधिमरण करना। जब श्रावक (गृहस्थी)को ऐसा अवसर दीख पड़े कि दुर्भिक्ष है, उपसर्ग है, असाध्य रोग है, जरा है व अब प्राण नहीं बचेंगे तब शांतभावसे प्राण त्यागनेके लिये सबसे क्षमा कराकर व क्षमा करके मरणपर्यंतके लिये महाव्रत धारण करले अर्थात् हिंसादि पंचपापोंको पूर्ण त्याग करके मुनिके समान नग्नमहाव्रती हो जावे, एक तृणके संथारे पर ध्यान करता हुआ प्राण त्यागे । यदि वस्त्रादिका त्याग न बन सके तो अल्प वस्त्र रखले व भोजन धीरे २ त्यागे । दूध पीवे, फिर उसे छोड़कर छाछ रक्खे, फिर मात्र गरम पानी पीवे, फिर पानी भी छोड़कर उपवास करे, निरंतर आत्मध्यान व समताभावमें लीन रहे । ऐसे समाधिमरण करनेवालेके पास कुछ धर्मात्माओंको रहना चाहिये जो धर्मभावमें स्थिर करें। गृह कुटुम्बी मात्र शांतिसे देख जावें, पासमें वार्तालाप न करें, रोवें नहीं; क्योंकि संयमकी रक्षाके लिये व शांतभावके लिये समाधिमरण किया जाता है। इसलिये इसे अपघात नहीं कह सक्ते। समाधिमरण करनेवालेको पांच दोष बचाने चाहिये । जीवितशंसा—अधिक जीनेकी इच्छा, २ मरणाशंसा—मरनेकी चाह करनी, ३ भय—मरनसे भय करना, ४ मित्रस्मृति—मित्रोंको

वर्तमानमें जो शकसंवत् चलता है, वह शकविक्रमके जन्मसे चलता है और यहां जो ७५३ शक बतलाया है, वह मरणका है। अतएव शकविक्रमकी (शालिवाहनकी) अवस्थाके ८९ वर्ष इसमें जोड़ देना चाहिये। इस तरह ७५३+८९=८४२ शकसंवत् काष्ठासंघकी उत्पत्तिका होता है। इससे सिद्ध होता है कि, शक ८४२ से पहले और ८२० के पीछे किसी समय गुणभद्रस्वामीकी मृत्यु हो चुकी होगी। शक ८२० के पीछे कहनेका कारण यह है कि, महापुराणकी समाप्ति उन्होंने शक ८२० में की है, ऐसा पहले कहा जा चुका है। आत्मानुशासन, जिनदत्तचरित्र आदि कई ग्रन्थ गुणभद्रस्वामीके और भी हैं, परन्तु उनकी प्रशास्तियोंके अभावसे यह नहीं कहा जा सकता है कि, वे महापुराणसे पहले बन चुके थे, या पीछेके हैं। यदि पछिके हों, तो शक ८२० के और भी कई वर्ष पीछे तक गुणभद्रस्वामीकी अवस्थाकी निश्चित अवधि बढ़ाई जा सकती है। प्रारंभमें कहा जा चुका है कि, मंडलपुरुषकृत चूड़ामणि निघंटुमें गुणभद्रस्वामीके ग्रामका नाम लिखा है। क्या आश्चर्य है, जो उक्त ग्रन्थसे उनके जन्म तथा दीक्षादिके समयका भी निश्चित ज्ञान हो जाय।

ग्रन्थरचना।

जिनसेनस्वामीके बनाये हुए आदिपुराण और पार्श्वाभ्युदयकाव्य ये दो ग्रन्थ तो प्रसिद्ध तथा प्राप्त हैं, जयधवला टीका (शेषभाग) सर्वत्र प्राप्त नहीं है, परन्तु उसका अस्तित्व है। मूडबिद्रीके सुप्रसिद्ध

---

१. इसीलिये त्रिलोकसारमें लिखा है कि, वीर निर्वाणके ६०५ वर्ष और ५ महिनेके बाद शकराजा हुआ। वर्तमान शकसंवत् १८३४ में ६०५ जोड़नेसे २४३९ वीरनिर्वाण संवत् हो जाता है।

अशनिवेग विद्याधरने युद्धमें मारा (इ० ति० २ भा० पृ० ९७), अंध्रदेश, जगन्नाथपुरीके नीचे (आ०पा० पृ० ३७), पांचवे नरकके अंतिम पटलसे दूसरे पटलका इन्द्रकविला, (गो०जी०गा० ९२९)।

अन्धेन्द्रा–देखो शब्द अन्ध्र पांचवे नर्कके अंतिम पटलसे दूसरे पटल अर्थात् चौथे इन्द्रकविला (त्रि० गा० १९८)।

अन्नगदेव–चालुक्य नरेश आहवमल्लका जैन सेनापति नागदेव व उसकी दानचिन्तामणि पत्नी अत्तिमव्वेका पुत्र। इस अत्तिमव्वेका पिता रत्नकवि बड़ा प्रसिद्ध कर्नाटक जैन कवि सं० ई० ९४९ में जन्मा था (क० जै० क० नं० १६)।

अन्नपाननिरोध–अहिंसा अणुव्रतका पांचवा अतीचार, पशु व मानव जो अपने आधीन हों उनका खानपान रोक देना (सर्वा० अ० ७ सू० २९)।

अन्नप्राशन क्रिया, मंत्र, संस्कार–गर्भान्विय ५३ क्रियाओंमें दसवां संस्कार। जब बालक जन्मसे ७–८ या ९ मासका होजावे तब उसको अन्नके आहारका प्रारम्भ कराया जावे। इस दिन पूजा व होम पीठिकाके मंत्रोंके साथ करके नीचे लिखे मंत्रोंसे बालकपर अक्षत डाल उसके योग्य वस्त्र पहराकर अन्न शुरू करावे। "दिव्यामृत भागी भव, विजयामृत भागी भव, अक्षीरामृत भागी भव। घरमें मंगल गीत हों, (गृ० पृ० ३१ अ० ४)।

अन्यत्व भावना या अनुप्रेक्षा–शरीरादिको, कर्मबंधको व रागद्वेषादिको आत्माके यथार्थ स्वभावसे भिन्न चिन्तवन करना। बारह भावनाओंमें ५वीं भावना (सर्वा० अ० ९ सू० ७)।

अन्यदृष्टि प्रशंसा–सम्यग्दर्शनका चौथा अतीचार, मिथ्यादृष्टि या मिथ्या मतधारीकी मिथ्या श्रद्धा व उसके मिथ्याज्ञान व चारित्रकी मनसे सराहना करनी (सर्वा० अ० ७ सू० २३)।

अन्यदृष्टि संस्तव–मिथ्यादृष्टिके मिथ्या श्रद्धान ज्ञान चारित्रकी वचनोंसे स्तुति करनी (सर्वा० अ० ७ सू० २३)।

अन्यमत सार संग्रह–मुद्रित पुस्तक।

अन्यानुपरोधिता–दूसरेको वास करते हुए न रोकना, इसका दूसरा नाम परोपरोधाकरण है, अचौर्य व्रतकी चौथी भावना है (हरि०पु० ५२६)

अन्योन्याभाव–एक द्रव्यकी दो भिन्न२ वर्तमान पर्यायोंका एक दूसरेमें न होना। जैसे पुद्गल द्रव्यकी घट व पट दो पर्याय हों उनमेंसे घटका पटमें व पटका घटमें अभाव है (जै० सि० प्र० नं० १८४)।

अन्योन्याभ्यस्तराशि–देखो शब्द "अंतिम गुणहानि"।

अन्वयदत्ति (सकलदत्ति)–जब गृहस्थ श्रावक नौमी परिग्रहविरति प्रतिमाको धारण करता है तब अपनी सर्व परिग्रहको अपने पुत्रको या अन्योंको दे डालता है (सा० अ० ७ श्लो० २४)

अन्वय दृष्टांत–जहां साधनकी मौजूदगीमें साध्यकी मौजूदगी दिखाई जाय। जैसे रसोईघरमें धूम होनेपर अग्निका होना दिखाना (जै०सि०प्र० नं० ६९)।

अन्वय दृष्टान्ताभास–जो अन्वय दृष्टांत ठीक न हो। उसके तीन भेद हैं (१) साध्य विकल, (२) साधन विकल, (३) उभय विकल। जिस दृष्टांतमें साध्य ठीक न हो जैसे कहना शब्द अपौरुषेय है जैसे इंद्रियसुख–यह इंद्रियसुखका दृष्टांत साध्य है व गलत है क्योंकि वह पुरुषकृत होता है। इसलिये अपौरुषेयकी सिद्धि करनेके लिये ठीक नहीं है। अन्यथा कहना शब्द अपौरुषेय है जैसे परमाणु। इसमें परमाणु मूर्तीक है तथा शब्दको अमूर्तीक मानते हैं जो उसे अपौरुषेय कहते हैं। यहां साधनका दृष्टांत गलत है क्योंकि अमूर्तीकके लिये मूर्तीक साधनका दृष्टांत ठीक नहीं है। अन्यथा कहना शब्द अपौरुषेय है जैसे घट यहां साधन व साध्य दोनों नहीं मिलते क्योंकि घट, मूर्तीक है व पुरुषकृत है। अन्वय दृष्टान्ताभासका ऐसा भी उदाहरण हो सक्ता है कि जो अपौरुषेय होता है।

केवल अपना पुन्नाटगण बतलाते हैं और दोनोंकी गुरुपरम्परा भी एक दूसरेसे बिलकुल नहीं मिलती है। देखिये, हरिवंशपुराणकी प्रशस्तिमें जिनसेनसूरि वर्द्धमानस्वामीसे लेकर जयसेनगुरु तककी गुरुपरम्परा लिखकर आगे कहते हैं:—

तदीय शिष्योऽमितसेनसद्गुरुः पवित्रपुन्नाटगणाग्रणी गणी।
जिनेन्द्रसच्छासनवत्सलात्मना तपोभृता वर्षशताधिजीविना ३१
सुशास्त्रदानेन वदान्यतामुना वदान्यमुख्येन भुवि प्रकाशिता।
तदग्रजो धर्मसहोदरः शमी समग्रधीर्द्धर्म इवात्तविग्रहः ॥ ३२ ॥
तपोमयीं कीर्तिमशेषदिक्षु यः क्षिपन्बभौ कीर्तितकीर्तिषेणः।
तदग्रशिष्येण शिवाग्रसौख्यभागरिष्टनेमीश्वरभक्तिभाविना।३३।
स्वशक्तिभाजा जिनसेनसूरिणा धियाल्पयोक्ता हरिवंशपद्धतिः।
यदत्र किञ्चिद्रचितं प्रमादतः परस्परव्याहतिदोषदूषितम् ॥ ३४ ॥
तदप्रमदास्तु पुराणकोविदाः सृजन्तु जन्तुस्थितिशक्तिवेदिनः।
प्रशस्तवंशो हरिवंशपर्वतः क्व मे मतिः क्वाल्पतराल्पशक्तिका।।३५।।

इन श्लोकोंका अभिप्राय यह है कि, उन जयसेन गुरुके[1] शिष्य अमितसेन गुरु हुए, जो पवित्र पुन्नाटगणके मुख्य आचार्य थे, जिनकी सौ वर्षसे अधिक अवस्था हुई थी, और जिन्होंने असीम शास्त्रदान करके (विद्यापढ़ाकर) संसारमें बड़ी भारी दानशूरता प्रगट की थी। उनके बड़े भाई और

---

१. इस लेखके प्रारंभमें (पृष्ठ ९में) नयंधरसे लेकर हरिवंशपुराणके कर्ता जिनसेन तककी गुरुपरम्परा लिखी जा चुकी है, वहां जयसेनस्वामीतककी गुरुनामावली देख लेना चाहिये। ये जयसेनस्वामी षट्खंडसूत्रोंके एक टीकाकार और सुप्रसिद्ध वैयाकरण थे। आदिपुराणकर्त्ताके दीक्षागुरु जयसेन इनसे भिन्न होंगे।

सकनेके कारणसे विष आदिसे अपनेको मारडालना, आत्मवध । (पुरु० श्लो० १७८)

अपनोद-
अपनुक्त- } अवाय, निश्चय होना ।

अपदर्शन-नील पर्वतके नौमें कूटस्थानका नाम, वे नौ हैं-सिद्ध, नील, पूर्वविदेह, सीता, कीर्त्ति, नरकांता, अपरविदेह, रम्यक, अपदर्शन, (त्रि० गा० ७२६) ।

अपध्यान-खोटा ध्यान, दूसरेकी हारजीत, दूसरेका वध, बन्ध, अंगछेद, धनहरण आदि बुरा चिन्तवन । यह अनर्थदण्डमें पहला भेद है । अपध्यान करना वृथा पापबंध करना है । तीसरे गुण व्रतमें (सर्वा० अ० ७ सू० २१) ।

अपमृत्यु-समाधिमरण रहित मरण, आर्त व रौद्रध्यानसे मरण, आहार व मैथुन व परिग्रहकी ममतासे व कायरतासे या भयसे मरण, बालमरण, मिथ्यादृष्टिका मरण, दुर्गतिमरण (मू० गा० ६०) ।

अपर विदेह-पश्चिम विदेह, जंबूद्वीपमें पूर्व व पश्चिम ऐसे दो विदेह सुमेरु पर्वतके दोनों तरफ पूर्व व पश्चिमको होते हैं । हरएकमें १६ देश होते हैं । धातुकी खंडमें २ पूर्व, २ पश्चिम व पुष्करार्द्धमें भी २ पूर्व, २ पश्चिम विदेह होते हैं । १० पूर्व पश्चिम विदेहोंमें १६० देश होते हैं; निषिद्ध पर्वतका नौमा व नील पर्वतका सातवां कूट (त्रि० गा० ७२५-७२६) ।

अपराजित-(१) पांच अनुत्तर विमान जो ऊर्द्धलोकमें १६ स्वर्ग, ९ ग्रैवेयिक व ९ अनुदिशके ऊपर हैं उनका चौथा विमान (सर्वा० अ० ४ सू० १९); (२) पंच णमोकार मंत्र-अर्थात् णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं । (सं० नित्य नियम पूजा । (३) ऋषभदेव तीर्थंकरके पूर्वभवमें जब वे वज्रजंघ राजा थे तब उनका सेनापति अकंपन था, उसके पिताका नाम अपराजित था (आदि० पर्व ८ श्लो० २१६) । (४) विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें २६वां अपराजित नगर (आदि० पर्व १९ श्लोक ४८) । (५) एक पक्षका नाम अपराजित । चार दिशाके चार पक्ष होते हैं । विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित (प्रति० पृ० ७७) । (६) रुचक महाद्वीपमें रुचक पर्वतपर आठ उत्तर दिशाके कूटोंमें चौथा कूट (त्रि० गा० ९५३) । (७) जंबूद्वीप और लवण समुद्रके मध्यमें जो प्राकार (कोट) है उसके उत्तर दिशाके द्वारका नाम अपराजित है (त्रि० गा० ८९२) । (८) भगवान अरहनाथको मुनिपदमें प्रथम आहार करानेवाले चक्रपुरके राजा अपराजित (इति० द्वि०पृ० २१) । (९) श्री नेमिनाथ भगवानका जीव अपने भवसे चौथे भव पहले अपराजित राजा था । यह जंबूद्वीपके पश्चिम विदेहमें सुगंधिला देशका राजा था । समाधिमरणकर १६ वें स्वर्गका इन्द्र हुआ (उत्तर पु० पृ० ४४८) । (१०) अपराजित नामका हलायुध जो श्री रामचन्द्र बलभद्रके पास था (उत्तर पु० पृ० ४३० । (११) भगवानके समवसरणकी रचनामें जो उत्तर दिशाका द्वार होता है उसे अपराजित कहते हैं (धर्म० पृ० ४५ श्लो० १८५) । (१२) ऋषभदेवके पुत्र जयसेनका पहला तीसरा भव अपराजित (आदि० पृ० १७६१) । (१३) पोदनापुरके राजा अपराजित जिनको वसुदेवजीके पुत्र गजकुमारने जीता (आ० पृ० १८१) । (१४) ऋषभदेवजीके ८४ गणधरोंमेंसे ३४ वां गणधर (हरि० पृ० १६६) । (१५) जरासंधका भाई अपराजित जिनसे ३४६ दफे यादवोंसे युद्ध करके विजय लाभ न कर सका, अंतमें श्रीकृष्णके बाणोंसे मरा (हरि० पृ० ३७९) । (१६) छट्ठे तीर्थंकर श्री पद्मप्रभके पूर्व दूसरे भवके राजाका नाम अपराजित (हरि० पृ० ५६५) । (१७) १७ वें तीर्थंकर अरहनाथको प्रथम आहारदान देने वाले (हरि० पृ० ५६९) ।

अपराजिता-समवसरणमें जो दिव्य नगर बनता है उसका नाम (हरि० पृ० ५१२) । (२) १३ वें रुचकवर महाद्वीपमें रुचिकवर पर्वत ऊपर पूर्व दिशाके

और जिसमें विजयकीर्तिके शिष्य अर्ककीर्ति मुनिको शिलाग्रामके जिनेन्द्रमन्दिरको शकसंवत् ७३५ में पांच ग्राम देनेका जिकर है, उसमें—
'**श्रीयापनीयनन्दिसंघपुंनागवृक्षमूलगणे श्रीकीर्त्याचार्यान्वये**'
ऐसा पद दिया हुआ है। इससे ऐसा भी जान पड़ता है कि, पुन्नाट वा पुंनागगण उस यापनीय संघका एक गण है, जिसकी गणना जैनाभासोंमें की जाती है। जो हो इस विषयमें हम फिर कभी विचार करेंगे, यहां केवल इतना ही सिद्ध करना है कि, हरिवंशपुराणके कर्त्ता पुन्नागगणके थे और इसलिये वे सेनसंघी जिनसेनसे पृथक् थे।

३ हरिवंशपुराणके प्रारंभमें ग्रन्थकर्त्ताने जिनसेन और उनके गुरु विनयसेनकी प्रशंसा की है। इससे अच्छी तरह स्पष्ट हो रहा है कि, प्रशंसा करनेवाले ग्रन्थकर्त्तासे, प्रशंसित जिनसेन दूसरे हैं।

४ हरिवंशपुराणमें नेमिनाथ भगवानका जन्म सौरीपुरमें लिखा है और उत्तरपुराणमें द्वारिकामें लिखा है। इसके सिवाय हरिवंश और उत्तरपुराणके कथाभागमें और भी कई एक भेद हैं। इससे भी जान पड़ता है कि, आदिपुराणके कर्त्तासे हरिवंशके कर्त्ता पृथक् हैं। क्योंकि उत्तरपुराण आदिपुराणके कर्त्ता जिनसेनके शिष्य गुणभद्रका बनाया हुआ है। यदि हरिवंशपुराणको गुणभद्रके गुरु जिनसेनने ही बनाया होता, तो गुणभद्रस्वामी अपने गुरुके लिखे हुए कथाभागसे विरुद्ध कुछ भी नहीं लिखते, यह निश्चय है। हरिवंशके कर्त्ता दूसरे संघके थे और उत्तरपुराणके कर्त्ता दूसरे संघके थे, इसीलिये कथाभागमें दोनोंका मतभेद दिखलाई देता है।

५ हरिवंशपुराण और आदिपुराणका बहुत विचारपूर्वक स्वाध्याय करनेसे भी अच्छी तरहसे समझमें आता है कि, इनके रचयिता

पांच व सैनी पंचेन्द्रियके छः होती हैं। इन सबकी शक्तिकी पूर्णताका हाल मिलकरके भी अलग २ भी अंतर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है। जो पर्याप्ति पूर्ण करेगा परन्तु जबतक वह शरीर पर्याप्तिको पूर्ण न करले तबतक वह निर्वृत्ति अपर्याप्त या निर्वृत्यपर्याप्त जीव कहलाते हैं (गो०जी०गा० ११९–१२१)।

अपवर्त्त–उलटना।

अपवर्तन–घटना।

अपवर्तन घात–कदलीघात, अकालमरण–भोगी जानेवाली आयुका घट जाना (गो०क०गा०६४३)

अपवर्तनोद्वर्तनकरण–संज्वलन चार कषायके अनुभागमेंसे जब प्रथम अनुभाग कांडकका घात हो जावे, तब फिर अपगत वेदी अनिवृत्तिकरणवाला जीव इनने ४ कषायोंके अनुभागको कम करे तब क्रोधसे लगाकर लोभ पर्यंत अनन्तगुण घटता या लोभसे लगाकर क्रोध तक अनन्तगुण वधता जो अनुभाग सो (लब्धि० गा० ४६२)।

अपवर्त्यायु–कदलीघात मरण, भुज्यमान आयुका घट जाना। कर्मभूमिके मनुष्य व तिर्यंचके ऐसा अकाल मरण विष शस्त्रादिसे सम्भव है। देखो शब्द 'अनपवर्त्यायु' व 'अनुपक्रमायुष्क' (त्रि० ६९६)।

अपवाद त्याग–अपवाद निवृत्ति–अपूर्ण त्याग, जहां मन, वचन, काय व कृतकारित अनुमोदनासे नौ कोटिरूप त्याग हो सो औत्सर्गिक या उत्सर्ग त्याग है जिनमें इनसे कम थोड़ा या बहुत त्याग हो वह अपवाद त्याग है (पुरु० श्लो० ७६)।

अपवाद मार्ग–शुद्धोपयोग रूप मुनि धर्मका साधक मार्ग, वह सराग संयम जहां शुद्धोपयोगके साधक आहारविहार कमण्डल पीछी, शिष्यादिका ग्रहण त्यागयुक्त शुभोपयोग हो (श्रा० पृ० २६०)

अपवाद लिंग–उत्कृष्ट श्रावक या क्षुल्लक ऐलकका भेष जो मुनिरूप उत्सर्ग लिंगसे छोटा हो–वानप्रस्थ (धर्म० पृ० २६९)।

अपवाद लिंगी–अपवाद लिंगको धारणेवाला क्षुल्लक व ऐलक।

अपवाय–
अपविद्धि–
अपव्याध– } अवाय, निश्चय होना।

अपशब्द–कुशब्द,गालीगलौज, धर्मविरुद्ध शब्द।

अपशब्द खंडन–शुभचंद्र भ० (सं० १६८०) कृत एक सं० ग्रंथ। (दि० जैन नं० ३३४)

अपहरण–दूर करदेना।

अपहरण संयम व अपहृत संयम–उपकरणोंमेंसे द्वेंद्रियादि जीवोंको दूर करदेना। संयमके १७ भेद हैं जो वीर्याचारकी रक्षार्थ किये जाते हैं। पांच प्रकार स्थावर व द्वेंद्रिय, तेन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय व इस तरह ९ प्रकारके जीवोंकी रक्षा ९ भेद हैं। सूके तृण आदिका छेदन न करना वह अजीव रक्षाका १ भेद ऐसे १० भेद ये हुए–७ भेद हैं–१ अप्रतिलेख–पीछीसे द्रव्यका शोधन। २ दुष्प्रतिलेख–यत्न पूर्वक प्रमाद रहित शोधन। ३ उपेक्षा–उपकरणादिको प्रतिदिन देख लेना। ४ अपहरण–९ मन–संयम, ६ वचन संयम, ७ काय संयम। (मू० गाथा ४१६–४१७)

अपात्र–जो दान देने योग्य न हों। जिनके न तो सम्यग्दर्शन हो न बाहरी चारित्र ही यथार्थ हो। (धर्म० पृ० १८२)

अपान–दूषित वायुका बाहर निकलना।

अपात्र दान–सम्यग्दर्शन व चारित्र रहितको दान देना।

अपायविचय–धर्मध्यानका दूसरा भेद। अपने व अन्य जीवोंके कर्मोंका नाश कैसे हो सो विचारना। इन जीवोंका मिथ्यादर्शन ज्ञानचारित्र कैसे दूर हो ऐसा विचारना (सर्वा० अ० ९ सू० ३६)।

अपाय–नाश।

अपायोपाय विदर्शी–आचार्यका एक गुण जिससे वे गुरु शिष्योंको रत्नत्रयके नाशके कारणोंको व उसकी रक्षाके उपायोंको बताते हैं (भ.पृ. १७३)

अपारमार्थिक प्रत्यक्ष–सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष

मिलता है, केवल इसी एक कारणसे ये काष्ठासंघी नहीं हो सकते हैं।

हरिवंशपुराणके सिवाय अलंकारचिन्तामणि नामका एक अलंकार विषयक ग्रन्थ भी भगवज्जिनसेनके नामसे प्रसिद्ध हो गया है। परंतु सिवाय इसके कि उसके छपानेवालोंने उसके टाइटिलपेजपर ' भगवज्जिनसेनाचार्यकृत ' लिख दिया है, और कोई प्रमाण उसके जिनसेनाचार्यकृत होनेमें नहीं है। लगभग २० वर्ष पहले इस ग्रन्थका काव्याम्बुधि नामक संस्कृत मासिकपत्रमें प्रकाशित होना शुरू हुआ था, जो कि सुप्रसिद्ध जैनविद्वान् पद्मराजपण्डितके द्वारा बेंगलोरसे निकलता था। उसमें उन्होंने इसे अजितसेनाचार्यकृत लिखा था। इससे निश्चय होता है कि वह उक्त आचार्यकृत ही होगा। और यदि अजितसेनाचार्यकृत नहीं है, तो भी इसमें तो किसी प्रकारका सन्देह नहीं है कि, वह भगवज्जिनसेनकृत नहीं है। क्योंकि उसमें:—

संस्कृतं प्राकृतं तस्यापभ्रंशो भूतभाषितम्।
इति भाषा चतस्रोपि यान्ति काव्यस्य कायताम्॥ (पृष्ठ २८)

आदि तीन श्लोक उद्धृत किये हैं, जो कि वाग्भटालंकारके हैं और वाग्भटालंकारके कर्त्ता वि० सं० ११७९ में: अणहिल्लपुरपाटणमें जिनसेनस्वामीसे तीन सौ वर्ष पीछे हुए हैं। इसके सिवाय

श्रीमत्समन्तभद्राचार्यजिनसेनादिभाषितम्।
लक्ष्यमात्रं लिखामि स्वनामसूचितलक्षणम्॥ (पृष्ठ ३०)

इस श्लोकमें स्वयं कवि ही कह रहा है कि, जिनसेनाचार्य मुझसे भिन्न हैं। आवश्यकता होनेपर इस विषयमें और भी अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं।

मात्र वकवाद करना। (५) रत्युत्पादक वचन-राग बढ़ानेवाले वचन। (६) अरत्युत्पादक वचन-द्वेषकारी वचन। (७) वंचनासूचक वचन-कुमार्ग प्रेरक वचन। (८) निकृति वचन-कपटमय वचन। (९) अप्रणति वचन। (१०) मोषवचन-जिससे लोग चोरी करने लग जावें। (११) सम्यग्दर्शन वचन-श्रद्धान निर्मल करने वाले वचन। (१२) मिथ्यादर्शन वचन-श्रद्धान बिगाड़नेवाले वचन। (हरि० पृ० १४८)

अप्रतिघात या अप्रतीघात-जिनकी किसी मूर्तीक पदार्थसे रुकावट न हो। ऐसे कार्मण शरीर व तैजस शरीर हैं। (सर्वा० अ० २ सू० ४०)

अप्रतिघात विक्रिया ऋद्धि-पर्वतके बीचमेंसे आकाशकी तरह जाने आनेकी शक्ति जिससे पर्वत रुकावट न कर सके। (भग० पृ० ५२२)

अप्रतिपाति-नहीं छूटनेवाला-विपुलमति मनःपर्ययज्ञान केवलज्ञान होने तक नहीं छूटता है, इसी तरह परमावधि व सर्वावधि ज्ञान भी नहीं छूटते हैं। (गो० जी० गा० ३७५)

अप्रतिलेख-संयम-पीछीसे द्रव्योंका शोधन (मू० गा० ४१६-४१७)।

अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति-वह प्रत्येक वनस्पति जिसके आश्रय साधारण शरीरधारी निगोद न रहें। देखो शब्द "अनन्तकाय"।

अप्रतिष्ठित वनस्पति-देखो ऊपरका शब्द।

अतिष्ठित शरीर-जिन शरीरोंके आश्रय साधारण वनस्पतिकाय या निगोद शरीर न रहे वे आठ हैं-१ पृथ्वीकायिक, २ जलकायिक, ३ अग्निकायिक, ४ वायुकायिक, ५ केवली अरहंतका शरीर, आहारक शरीर मुनिका, ७ देवोंका शरीर, ८ नारकियोंका शरीर। अन्य सर्व जीवोंके शरीरोंमें निगोद होते हैं। अर्थात् सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति द्वेंद्रिय, तेंद्रिय, चौंद्रिय, पंचेंद्रिय, तिर्यंच व आहारक केवली विना मनुष्य इनके शरीरोंके आश्रय साधारण वनस्पति होती है। (गो०जी०गा० २००)।

अप्रतिष्ठित स्थान-सातवें नर्ककी पृथ्वीका इन्द्रक बिल (त्रि० गा० १५९) इसको अप्रतिष्ठान भी कहते हैं (हरि० पृ० ३४)।

अप्रतिहत चक्रेश्वरीदेवी-श्री रिषभदेवकी भक्त शासनदेवी (प्रति० पृ० ७१)।

अप्रतिहत दर्शन-अखण्ड दर्शन, अनंतदर्शन।

अप्रत्यक्ष-जो आत्मा द्वारा सीधा न जाना जावे, परोक्ष, जो इन्द्रिय व मनकी सहायतासे जाना जावे, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, आगम उसके भेद हैं (परी० अ० ३ सू० १-८)।

अप्रत्यक्ष उपचार विनय-परोक्ष उपचार विनय-श्री तीर्थंकर, मंदिर, प्रतिमा, आचार्य, गुरु, साधु आदिके सामने न होते हुए भाव सहित उनको मन, वचन कायसे नमस्कार करना, उनकी स्तुति करना, उनकी आज्ञा पालना। (चा० पृ० १४२)

अप्रत्यवेक्षित-विना देखे हुए।

अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण-विना देखे हुए किसी पदार्थको रख देना, यह अजीवाधिकरणका एक भेद है। (सर्वा० अ० ६ सू० ९)

अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित आदान या अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जिता दान-विना देखे हुए व विना झाड़े हुए पूजाके उपकरण शास्त्र व वस्त्रादिका उठाना, यह प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतका दूसरा अतीचार है। (सर्वा० अ० ७ सू० ३४)

अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित उपसर्ग या अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग-विना देखे हुए व विना झाड़े हुए भूमिपर मूत्र मल आदिका क्षेपण करना। यह प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतका पहला अतिचार है। (सर्वा० अ० ७ सू० ३४)

अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण-विना देखे व विना झाड़े चटाई आदिका बिछाना। यह प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतका तीसरा अतीचार है। (सर्वा० अ० ७ सू० ३४)

अप्रत्याख्यान-कुछ त्याग, एक देश त्याग, अपूर्ण त्याग, थोड़ा चारित्र। (र० श्लो० १२५)

द्रोपदीप्रबंध आदि दो चार ग्रन्थ और भी जिनसेनाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। परन्तु जब तक स्वतः अच्छी तरहसे न देख लिये जावें तब तक यह कहना कठिन है कि, वे वास्तवमें किसके बनाये हुए हैं। क्योंकि जिनसेन नामके और भी अनेक विद्वान् आचार्य हो गये हैं।

उपर्युक्त पांच ग्रन्थोंमेंसे इस समय पार्श्वाभ्युदय और आदिपुराण ये दो ही ग्रन्थ प्रसिद्ध और प्राप्य हैं, इसलिये हम अपने पाठकोंको यहांपर उन्हींका थोड़ासा परिचय करा देना चाहते हैं।

पार्श्वाभ्युदय—यह ३६४ मन्दाक्रान्ता वृत्तोंका एक खंडकाव्य है। संस्कृत साहित्यमें अपने ढंगका यह एक ही काव्य है। इसमें महाकवि कालिदासका सुप्रसिद्ध काव्य मेघदूत सबका सब वेष्टित है। मेघदूत काव्यमें जितने श्लोक हैं, और उन श्लोकोंके जितने चरण हैं, वे सब एक २ वा दो २ करके इसके प्रत्येक श्लोकमें प्रविष्ट कर लिये गये हैं, अर्थात् मेघदूतके प्रत्येक चरणकी समस्यापूर्ति करके यह कौतुकावह ग्रन्थ रचा गया है। संस्कृतमें मेघदूतके श्लोकोंका अन्तिम चरण ले लेकर तो अनेक ग्रन्थ रचे गये हैं—जैसे नेमिदूत[1], शीलदूत[2], हंसपादाङ्कदूत आदि। परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थको वेष्टित करनेवाला यह एक ही काव्य है। जिस कथाको लेकर इस अपूर्व ग्रन्थकी रचना हुई है, उसका सार भाग इस प्रकार है:—

---

१. यह दि० जैनकवि विक्रमका बनाया हुआ है। इसमें राजीमती और नेमिनाथका चरित्र वर्णित है। छप चुका है। २. यह श्वेताम्बर जैन कवि चारित्रसुन्दर गणिका बनाया हुआ है। इसमें स्थूलभद्राचार्यका चरित्र है। छप चुका है।

एक प्रकृति, जिसके उदयसे आकाशमें गमन असुहावना हो (सर्वा० अ० ८ सू० ११) ।

अप्रसिद्ध–देखो "असिद्ध" ।

अप्रसेनिका–कुशील–ऐसे भ्रष्ट मुनि जो विद्या मंत्र औषधि और लोगोंको रागी करनेवाले प्रयोगोंसे लोगोंको प्रसन्न करे (भ० पृ० ६६९) ।

अप्राप्यकारी इंद्रियां–जो इंद्रियां पदार्थोंको विना स्पर्श किये दूरसे जाने ऐसी चक्षु इंद्रिय है तथा मन नो इंद्रिय है । स्पर्शन, रसना, घ्राण और कर्ण ये चार इंद्रियां प्राप्तकारी हैं, पदार्थको स्पर्श करके जानती हैं । सर्वा० अ० १ सू० १९)

अप्राशुक–सचित्त, जो एकेन्द्रिय जीव सहित हो, जो एकेन्द्रियकायिक वनस्पति आदि सूख गया हो, अग्निकरि पचा हो व घरडी कोल्हू आदि यंत्र करि छिन्न किया हो या भस्मीभूत किया हो व कषायला द्रव्य लवण आदिसे मिला हो सो द्रव्य प्राशुक है, अचित है, जैसे गर्म जल, लवंग आदिसे रंग बदला हुआ जल, सुखी मेवा, रंधा हुआ साग आदि उसको प्राशुक कहते हैं । उससे विरुद्ध अप्राशुक है । (गृ० पृ० १८९ अ० ११ वां)

अप्रिय वचन–अरति करानेवाला, भय देनेवाला, खेद करानेवाला, वैर व शोक व कलह करानेवाला व मनको संतापित करनेवाला वचन । असत्यके चार भेद हैं–१ जो वस्तु हो उसको नहीं है ऐसा कहना । २ जो वस्तु नहीं है उसको है ऐसा कहना । ३ जिस स्वरूप वस्तु हो उससे विरुद्ध कहना । ४ गर्हित, पाप सहित व अप्रिय वचन कहना । (पुरु० श्लोक ९१–९८)

अप्सरा–देवी–देवांगना, नृत्यकारिणी देवी । (स० भा० पृ० ९०)

अब्ज–कमल ।

अबद्धायु (अबद्धायुष्क)–जिन जीवोंके आगामी आयुका बंध न हुआ हो (गो० क० गा० ३६९) जिनके बन्ध होगया हो उनको बद्धायु कहते हैं ।

अबध्यत्वाधिकार–दूसरेके द्वारा बन्धन करने योग्य होनेका अधिकार, व्रती द्विजोंके १० अधिकारोंमेंसे सातवां (आदि०प० ४० श्लोक १७९....)

अबला–स्त्री, अनाथ स्त्री, विद्युतप्रभ गजदंत पर्वतके स्वस्तिककूटमें रहनेवाली व्यंतरदेवी (त्रि० गा० ७४२) ।

अबाधित–जो दूसरे प्रमाणसे बाधित न हो । जैसे अग्निका ठंडापन प्रत्यक्ष प्रमाणसे बाधित है । परन्तु उसमें उष्णपना अबाधित है (जै० सि० प्र० न० ३९) ।

अम्बर तिलक–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें २९ वां नगर (त्रि० गा० ७०९) ।

अम्बा–व्यंतर जातिके इन्द्रोंमें १९ वें इन्द्रकी एक महत्तरी गणिकादेवी (त्रि० गा० २७८) ।

अम्बावरीष असुर–असुर जातिके देव जो संक्लेश व अशुभ परिणामके धारी होते हैं । और तीसरे नर्क तक जाकर नारकियोंको परस्पर लड़ाकर कष्ट देते हैं (सर्वा० अ० ३ सू० ९) ।

अबुद्धिपूर्वक निर्जरा–जो कर्मोंका झड़ना अपने आप फल देकर निरंतर स्वयं होता रहता है इसको अकुशलमूला भी कहते हैं । इससे कुछ कल्याण नहीं होता फिर नवीन कर्मका बन्ध होजाता है । (सर्वा० जयचंद पृ० ६७७) ।

अब्बहुल भाग–पहले नर्ककी भूमि–रत्नप्रभा पृथ्वीके तीन भाग हैं । पहला खर भाग १६००० योजन मोटा है, दूसरा पंक भाग ८४००० योजन मोटा है, तीसरा अब्बहुल भाग ८०००० योजन मोटा है (त्रि० गा० १४६) ।

अम्बुवात–भाफ मिश्रित वायु ।

अब्रह्म–ब्रह्मचर्यका न होना, मैथुन भाव, स्त्री सेवन भाव, कामविकार । अब्रह्मके १० भेद हैं–१. स्त्री विषयाभिलाप–स्त्रीकी चाहका होना, २ वस्तिविमोक्ष–कामसे वीर्यका छूटना, ३ वृष्याहार सेवन व प्रणीतरस सेवन–कामोद्दीपक रस व आहार खाना, ४ संसक्त द्रव्यसेवन–स्त्री व कामी पुरुषके संसर्गके शय्या आसन आदिका सेवन,

ज्यों ही इसने मस्तक नवाया, त्यों ही दुष्ट कमठने अपने सिरपर (तपस्याके लिये) रक्खी हुई शिलाको पटककर मरुभूतिका प्राण ले लिया । कुछ समय पीछे कमठकी आयु भी पूरी हुई । तदनन्तर इन दोनोंने नाना योनियोंमें नाना जन्म धारण किये और मरुभूतिके जीवने प्रत्येक जन्ममें कमठके द्वारा प्राण खोकर अन्तमें वाराणसीके महाराज **विश्वसेनकी ब्राह्मी** (वामा) महादेवीके उदरसे **पार्श्वनाथ** तीर्थंकरका जन्म धारण किया । तथा कमठने **शम्बर** नामके ज्योतिषीदेवकी पर्याय पाई । जिस समय **पार्श्वनाथ** भगवान् निष्क्रमण कल्याणके पश्चात् प्रतिमायोग धारण किये हुए विराजमान् थे, उस समय शम्बर आकाशमार्गसे भ्रमण करता हुआ वहांसे निकला और अपने पूर्व वैरको स्मरण करके उनको कष्ट देने लगा । " बस इसी कथानकको लेकर पार्श्वाभ्युदय रचा गया है । इसमें **शम्बर** देवको **यक्ष**, ज्योतिर्भवनको **अलकापुरी**, और यक्षकी वर्षशापको शम्बरकी वर्षशाप मान ली है । इसके सिवाय पूर्व और वर्तमान भवोंकी वर्तमानरूपमें ही कल्पना की है।

जब मेघदूतके कथानकमें और पार्श्वचारित्रके कथानकमें जमीन आसमानका अन्तर है, तब मेघदूतके चरणोंको लेकर पार्श्वचरित्रका

---

१ इससे जान पड़ता है कि प्रथमानुयोगकी कथाओंमें कवि अपनी रचनाको चमत्कृतिपूर्ण और हृदयग्राहिणी बनानेके लिये कुछ न्यूनाधिक्य भी कर सकता है । कथाकी मूलभित्ति मात्रका आश्रय रखके वह उसमें मनमाने प्रसंगोंकी कल्पना कर सकता है । महाकवि कालिदास, भवभूति आदिकी रचनाओंमें भी यह बात देखी जाती है । जिन महाभारतादि ग्रन्थोंकी मूल कथाएं लेकर उन्होंने अपने ग्रन्थ बनाये हैं, उनसे उनके आख्यानोंका पूरा २ सादृश्य नहीं है ।

अभयकीर्ति–सं० १६६४ के जैनाचार्य जाति पोड़वाल (दि० ग्रं० नं० १२)।

अभयकुमार–राजा श्रेणिकके पुत्र मोक्षगामी नंदिश्री ब्राह्मणीसे जन्मे थे (अ० मा० पृ० ३४९)

अभयघोष–आचार्य जिनके पास मघवा तीसरे चक्रवर्तीने दीक्षा ली (इ० द्वि० पृ० १२)। (२) काकन्दीके राजा, जिसने एक कछुवेके चारों पांव काट डाले थे वह मरके इसहीके चंडवेग पुत्र हुआ। जब अभयघोष मुनि होकर एक दफे विहार करते हुए काकन्दीके वनमें आकर तप कर रहे थे तब पूर्व वैरसे इसके पुत्र चंडवेगने मुनिको घोर उपसर्ग किया, वह केवलज्ञानी होकर मोक्ष गए। (आरा० कथा नं० ६७)। (३) श्री ऋषभदेवके पूर्व भवमें जब वे सुविधिराजकुमार थे तब अभयघोष चक्रवर्तीने अपने मामाकी कन्या मनोरमाको विवाहा था। यह अभयघोष फिर साधु होगए। (आदि० पृ० ३४९ पर्व १०)।

अभयङ्कर–प्राणियोंकी रक्षा करने व करानेवाला (अ० मा० पृ० ३४९)।

अभयंकरा–वह पालकी जिसपर १७वें तीर्थंकर कुंथुनाथ दीक्षा समय बैठे थे (अ०मा०पृ०३४९)

अभयचन्द्र–(१) स० ९७९ अयोध्यापुरीके एक प्रसिद्ध श्रावक (दि० जै० नं० १०), (२) गोमटसारकी मंदप्रबोधिनी नामकी टीकाके कर्ता (गो० कर्मकांड छोटा भूमिका)।

अभयदत्ति (दान)–दुखी प्राणियोंकी दयापूर्वक मन वचन कायकी शुद्धिसे रक्षा करना (चा० पृ० ४४)।-धर्मके पात्रोंको आश्रय देना।

अभयनंदि–गोमटसार कर्मकांडके कर्ता (सं० ७७९) नेमिचन्द्रके श्रुतगुरु (गो०क०गा०४०८), बृहत् जैनेन्द्र व्याकरणके कर्ता (दि०ग्रं० नं०१३)।

अभयभद्र–श्री महावीरस्वामीके मोक्ष जानेके बाद ५६५ वर्ष पीछे ११८ वर्षके भीतर आचारांगके पाठी ४ आचार्य हुए–सुभद्र, अभयभद्र, जयबाहु, लोहाचार्य (श्रुतावतार पृ० १४)।

अभयसेन–षट्खंड सिद्धांतके ज्ञाता आचार्य (हरि० पृ० ६२९)।

अभयसूरि–कर्णाटक जैनाचार्य वल्लालनरेश व चारुकीर्ति पंडितके समकालीन (सं० १११७) (कर्णा० नं० ३९)।

अभव्य–(१) स्वभाव–तीन कालमें भी किसी द्रव्यके स्वभावका अन्य द्रव्यके स्वभावमें न पलटनेका स्वभाव (स्या० प० पृ० १६१) यह एक साधारण स्वभाव है। द्रव्योंके साधारण स्वभाव ११ हैं–(१) अस्तिस्वभाव, (२) नास्तिस्वभाव, (३) नित्य स्वभाव, (४) अनित्य स्वभाव, (५) एक स्वभाव, (६) अनेक स्वभाव, (७) भेद स्वभाव, (८) अभेद स्वभाव, (९) भव्य स्वभाव, (१०) अभव्य स्वभाव, (११) परम स्वभाव।

(२) जीव–जो संसारसे निकलकर कभी मोक्ष न जासकेंगे। (गो० जी० गा० ५५७) (३) राशि–जघन्य युक्तानन्तकी गणना प्रमाण अभव्य जीव राशि है (गो० जी० गा० ५६०)।

अभव्यत्व भाव–(पारणामिक भाव) सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्गकी प्राप्ति न होने योग्य भाव (सर्वा० अ० २ सू० ७)।

अभव्य राशि–देखो शब्द "अभव्य"।

अभव्य सिद्ध–जो कभी सिद्ध न होंगे। देखो "अभव्य"।

अभव्यसेन-एक द्रव्यलिंगी मुनि रेवती रानी मथुराके समयमें जिन मुनिकी परीक्षा क्षुल्लक चन्द्रप्रभ विद्याधरने की थी (कथाकोष रेवती नं० ९)।

अभाव–एक पदार्थकी दूसरे पदार्थमें गैर मौजूदगी या न होना। इसके चार भेद हैं–(१) प्रागभाव–वर्तमान पर्यायका पूर्व पर्यायमें अभाव, जैसे मिट्टीके पिंडमें घटका अभाव. (२) प्रध्वंसाभाव–आगामी पर्यायमें वर्तमान पर्यायका अभाव, जैसे कपालमें घटका न होना, (३) अन्योन्याभाव–पुद्गल द्रव्यकी एक वर्तमान पर्यायमें दूसरे पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्यायका न होना, जैसे घटमें

प्रो० के० बी० पाठक ऐसे ही निष्पक्ष विद्वानोंमेंसे एक हैं। उन्होंने रायल एशियाटिक सुसायटीमें कुमारिलभट्ट और भर्तृहरिके विषयमें जो निबंध पढ़ा था, उसमें जिनसेनस्वामीके विषयमें देखिये क्या राय दी थी;--

जिनसेन lived on into the reign of Amoghawarsha, as he tells us himself in the पार्श्वाभ्युदय. This poem is one of the curiosities of Sanskrit literature. It is atonce the product and the mirror of the literary taste of the age. The first place among Indian poets is alloted to कालिदास by consent of all. जिनसेन, however, claims to be considered a higher genius than the author of Cloud Messenger (मेघदूत).

इसका अभिप्राय यह है कि, "जिनसेन अमोघवर्ष (प्रथम) के राज्य कालमें हुए हैं जैसा कि उन्होंने पार्श्वाभ्युदयमें कहा है। पार्श्वाभ्युदय संस्कृत साहित्यमें एक कौतुकजनक उत्कृष्ट रचना है। यह उस समयके साहित्य स्वादका उत्पादक और दर्पणरूप अनुपम काव्य है। यद्यपि सर्वसाधारणकी सम्मतिसे भारतीय कवियोंमें कालिदासको पहिला स्थान दिया गया है, तथापि जिनसेन मेघदूतके कर्त्ताकी अपेक्षा अधिकतर योग्य समझे जानेके अधिकारी हैं।"

पार्श्वाभ्युदयकी कविताका इस लेखके पाठक भी थोड़ा बहुत रसास्वादन कर सकें, इसलिये हम यहांपर थोड़ेसे पद्य भावार्थसहित उद्धृत किये देते हैं:—

कल्लोलान्तर्वलिनशिशिरः शीकरासारवाही
धूतोद्यानो मदमधुलिहां व्यञ्जयत्सिञ्जितानि ।

दूसरा नाम नागचन्द्र था। यह कर्णाटकी प्रसिद्ध कवि होगए हैं। इनके सम्पादित रामायण, मल्लिनाथ-पुराण, प्रसिद्ध हैं। इनको भारतीकर्णपुर, कविता मनोहर, साहित्यविद्याधर, साहित्य सर्वज्ञ, सूक्ति-मुक्तावतंस उपाधियां थीं (क० नं २६) यह बड़े धनवान थे। बीजापुरमें मल्लिनाथका विशाल मंदिर बनवाया था। (४) श्रुतमुनि-(सन् १३६९) कर्णाटक जैन कवि मल्लिसेन सूरिकृत सज्जनचित्त-वल्लभके कनड़ी टीकाकार (क० नं० ७०), (५) शर्ववर्म-कर्णाटक जैन कवि नागवर्म, यह चालुक्य वंशी राजा जगदेकमल्ल (११३९-११४९)के समयमें हुआ है। यह राजाका सेनापति था। इसने काव्या-वलोकन, कर्णाटकभाषाभूषण तथा वस्तुकोष लिखे हैं-कर्णाटक भाषाभूषण श्रेष्ठ व्याकरण माना जाता है। (क० नं० १९), (६) वादि-विद्यानंदि १६ वीं शताब्दीके कर्णाटकी कवि, (७) विद्यानंदि-कर्णाटक कवि काव्यसारके कर्ता, (८) वाग्देवी-कंति कर्णाटकी स्त्री कवि। इसने द्वारसमुद्रके वल्लालराजा विष्णुवर्द्धनकी सभामें अभिनवपंपसे विवाद किया था, यह राजमंत्रीकी पोती थी।

अभिनिवोध-मतिज्ञानका एक नाम, अनुमान ज्ञान। चिह्नको देखकर चिह्नवालेका ज्ञान कर लेना जैसे धूएँको देखकर अग्निका ज्ञान (सर्वा० अ० १ सू० १३), इन्द्रिय व मनके द्वारा सन्मुख हो नियम रूप पदार्थका जानना, जैसे स्पर्शनसे स्पर्श हीका रसनासे रस हीका ज्ञान (गो०जी०गा० ३०६)।

अभिन्न दशपूर्व-सूत्रोंके ४ भेद-(१) गणधर कथित, (२) प्रत्येकबुद्ध कथित, (३) श्रुतकेवली कथित, (४) अभिन्न दशपूर्व कथित (मू.गा. २७७)।

अभिन्न दशपूर्वी-विद्यानुवाद नाम दशम पूर्व पढ़के जो सराग न हो ऐसे निर्ग्रंथ साधु (च०श० नं० ११९)।

अभिन्न संधि-८८ ग्रहोंमें ३०वें ग्रहका नाम (त्रि० गा० ३६६)।

अभिमन्यु-(कुमार) राष्ट्रकूट वंशके गुजरातमें राज्य करनेवाले चार प्रसिद्ध राजाओंमें नं० ४ के राजा सन् ईस्वी ४५० (बंबई स्मा० पृ० १९६)।

अभिमान-घमण्ड, हरिवंशमें श्री मुनिसुव्रत-नाथके पीछे राजा वसुके पीछेके एक राजा (हरि० पृ० २०४)।

अभिमानिनी भाषा-अपने गुण प्रगट करना, दूसरेके दोष कहना व कुल जातिरूप बलादिका अभिमान लिये वचन कहना (भग० पृ० ३९५)।

अभिमान मेरु-अपभ्रंश भाषाके महाकवि, महा-पुराण आदिके कर्ता पुष्पदंतका एक नाम (दि० जैन खास अंक पृ० ७१ वर्ष १८)।

अभिप्रेत-वादीन प्रतिवादी जिसे सिद्ध करना चाहे, इष्ट।

अभियोग-दास कर्म, वाहनादि बन जाना। (त्रि० गा० ५३१) साधु यदि रसादिकमें आसक्त होके तंत्र मंत्र भूत कर्म करे व हास्यसे आश्चर्य उपजावे सो क्रिया (मू० गा० ६५)।

अभियोग देवदुर्गति-जो साधु अभियोग कर्मसे देवगतिमें जाकर अभियोग काम करनेवाले देव होते हैं उनकी गति।

अभिराम-रमणीक, सुन्दर। देवराय-सन् ई० ९०२ में कर्णाटक कवि आदिपंपके पिताका नाम।

अभिलाप्य-प्रज्ञापनीय-कथन करनेयोग्य पदार्थ। केवलज्ञान गोचर जीवादिक पदार्थोंका अनंतवां भाग। मात्र पदार्थ प्रज्ञापनीय होता है। अर्थात् दिव्यध्व-निसे कहने योग्य है। तथा उसका अनंतवां भाग मात्र द्वादशांग श्रुतमें व्याख्यान करने योग्य है। (गो० जी० गा० ३३४)।

अभिलाषा-कांक्षा, इच्छा-यह तीन तरहकी होती है-(१) इस लोकमें सम्पदा मिलनेकी, (२) परलोकमें सम्पदा मिलनेकी, (३) कुधर्मकी। निःकां-क्षित अंगवालेके यह अभिलाषा नहीं होती है। (मू० गा० २४९)।

अभिवन्दन-विनय, नमस्कार। मुनिको नमोस्तु

हे नाथ, कामवती स्त्रियोंके मनको हरण करनेवाली, नानारस-मयी और जीमें समाई हुई आपकी मूर्तिको ज्यों ही मैं कामकी पीड़ाको कम करनेके लिये चित्रपटपर लिखती हूं, और प्रीतिपूर्वक देखना चाहती हूं, त्यों ही वार २ वढ़नेवाले गरम गरम आसू मेरी दृष्टिको रोक देते हैं—आपकी मूर्तिके दर्शन नहीं करने देते हैं।

तीव्रावस्थे तपति मदने पुष्पवाणैर्मदङ्गं
तल्पेऽनल्पं दहति च मुहुः पुष्पभेदैः प्रक्लृप्ते ।
तीव्रापाया त्वदुपगमनं स्वप्नमात्रेपि नाप्तं
"क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः॥ ३५ सर्ग४॥

हे नाथ, अतिशय तीव्र मदन अपने पुष्पवाणोंसे मेरे अंगोंको संतापित करता है और फूलोंसे रची हुई सेजपर भी मुझे वारंवार जलाता है। इससे अतिशय दुखी होकर मैं आपका समागम चाहती हूं। परन्तु स्वप्नमें भी आपका संगम नहीं होता है—निद्रा ही नहीं आती है। हाय! यह निर्दय दैव प्रत्यक्षकी तो कौन कहै, स्वप्नमें भी हमारे संयोगको सहन नहीं करता है।

वित्तानिघ्नः स्मरपरवशां वल्लभां कांचिदेकां
ध्यानव्याजात्स्मरति रमणीं कामुको नूनमेषः ।
अज्ञातं वा स्मरति सुदती या मया दूषिताऽसी—
"त्वां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नीम्॥" ३३

शम्बर देव पार्श्वनाथस्वामीको ध्यानस्थ देखकर कहता है—यां तो यह निर्धन कामी ध्यानके वहानेसे अपनी किसी प्यारी सुन्दरी और कामके वशमें पड़ी हुई स्त्रीका स्मरण करता है अथवा

रखनेकी अधिक मुख्यता हो। इसके ६ भेद हैं-१ प्रायश्चित्त, २ विनय, ३ वैयावृत्य, ४ स्वाध्याय, ५ व्युत्सर्ग, ६ ध्यान (सर्वा० अ० ९ सू० २०)।

अभ्यन्तर निर्वृत्ति इन्द्रिय-द्रव्य इंद्रियकी खास रचनाको निवृत्ति कहते हैं। उसके दो भेद हैं-अभ्यंतर निवृत्ति अर्थात् अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण आत्माके प्रदेशोंका चक्षु आदि इंद्रियोंके आकाररूप होजाना, २ बाह्य निवृत्ति। अर्थात् नाम-कर्मके उदयसे पुद्गलोंका इंद्रियके आकार होजाना। श्रोत्र इन्द्रियका आकार जौकी नाळीके समान, चक्षुका मसूरकी दाळके समान, घ्राणका कदंबके फूलके समान, जिह्वाका खुरपाके आकारके समान व स्पर्श इंद्रियका अनेक प्रकार शरीरके आकार समान आकार होता है। (गो० जीव० गाथा० १७१)

अभ्यंतर परिग्रह-भीतरी मूर्छाभाव-यह १४ प्रकार हैं। देखो शब्द "अभ्यंतर उपधित्याग"।

अभ्यंतर पारिषद देव-इन्द्रकी तीन सभाएँ होती हैं-अभ्यंतर परिषद उसके सभासद आठसै (८००) पारिषद देव होते हैं। मध्य सभाके एक हजार व बाहरी सभाके बारहसै पारिषद देव होते हैं (त्रि० गा० २७९)।

अभ्यंतर व्युत्सर्ग
अभ्यंतरोपधि व्युत्सर्ग } "देखो अभ्यंतरउपधि त्याग"

अभ्यवहरण-एषणा समिति-साधु दोष टालके गृहस्थका दिया हुआ वह भोजन ले जो उसने अपने ही कुटुम्बके लिये बनाया हो (चा० पृ० ७२)।

अभ्याख्यान वचन-१२ प्रकारके असत्य वचनोंमेंसे पहला असत्य वचन, हिंसा आदिके करनेवाले वचन कहना व हिंसादि न करनेवालेको हिंसादि करनेका उपदेश देना (हरि० पृ० १४८)।

अभ्यागत-मुनिको अतिथि कहते हैं जिनने किसी खास पर्व वा तिथिका आग्रह उपवासादिमें त्याग दिया है उनके सिवाय अन्य सर्व पात्रोंको अभ्यागत कहते हैं (सागार० अ० ५ श्लो० ४२), पाहुना, मिहमान।

अभ्यासी श्रावक-पाक्षिक श्रावक, व्रतका अभ्यास करनेवाला श्रावक।

अभ्युदयावह-तीर्थंकरके समवसरणकी रचनामें जो दिव्यपुर बनता है उसका नाम (हरि०पृ० ५११)

अभ्र-सौधर्म ईशान स्वर्गोंमें ३१ पटलोंके ३१ इन्द्रक हैं उनमेंसे २१वें इन्द्रकका नाम (त्रि०गा० ४६५), आकाश।

अभ्रदेव-एक गृहस्थ थे जिन्होंने व्रतोद्योतन श्रावकाचार रचा है (दि० ग्रं० नं० १५)।

अभ्रावकाश-बाहरी आवरण व छाया रहित प्रवेश, उसमें योग या ध्यान धरना सो अभ्रावकाश योग है। उसमें शयन करना सो अभ्रावकाश शयन है (मू० गा० ९२४ भगवान पृ० ९१)।

अमनस्क-असैनी, मन रहित जीव, एकेंद्रियसे चार इंद्रिय तक सब मन रहित होते हैं। कुछ पंचेन्द्रिय तिर्यंच भी असैनी होते हैं। जो जीव हितकर शिक्षा न ग्रहण कर सकें, उपदेश न समझ सकें, संकेत या इशारा न समझ सकें, कार्य अकार्यको व उसके हानि व लाभकी तर्कणा सहित विचार न कर सकें। व नामसे बुलानेपर न आसकें वे असंज्ञी मन रहित जीव होते हैं (गो०जी० गाथा ६६१-६६२)।

अमम-देखो शब्द "अंक विद्या" (प्र० जि० पृ० १०४) ८४ लाख अममांगोंका एक अमम (ह० पृ० १००) ममता रहित।

अममांग-८४ लाख अटटोंका एक अममांग (ह० पृ० १००) देखो शब्द "अंक विद्या" (प्र० जि० पृ० १०४)।

अमर-देवता, सुर, मोक्ष अवस्था २-हरिवंशके राजाओंमें सूर्यका पुत्र (ह० पृ० १९४), अमर-कङ्कापुरी-अंगदेशकी एक नगरी धातकी खण्डद्वी-पके पूर्व भरतमें (हरि० पृ० ४८३) जहां नारदजी द्रोपदीको उठा लेगए थे और राजा पद्मनाभने उसके शीलका खण्डन करना चाहा। परन्तु द्रोपदी शीलमें दृढ़ रही। कृष्णजी उसे लेआए।

अमरकीर्ति-भट्टारक-स्वयंभू द ... नाम-

इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्य मेघं
बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यम् ।
मलिनितपरकाव्यं तिष्ठतादाशशाङ्कं
भुवनमवतु देवः सर्वदामोघवर्षः ॥

और एक प्रकारसे यह निश्चय है कि, जयधवलटीकासे जो कि शक ७५९ में पूर्ण हुई है और लगभग ७५० के बनना शुरू हुई होगी पार्श्वाभ्युदय पहिले बना है । तब शक संवत् ७३६ से (जो कि अमोघवर्षके राज्यरोहणका निश्चित समय है) शक ७५० तकके किसी मध्यकालमें पार्श्वाभ्युदय निर्म्माण हुआ होगा ।

पार्श्वाभ्युदयकी रचनाके सम्बन्धमें **योगिराट् पंडिताचार्यने** जो कि उक्त काव्यके टीकाकार हैं, एक कौतुकजनक कथाका उल्लेख किया है । उसका सारांश यह हैं, किः—

“कोई **कालिदास** नामके कवि अपने **मेघदूत** नामके काव्यको अनेक राजाओंको सुनाते हुए **वंकापुरनरेश अमोघवर्षकी** सभामें आये और उन्होंने वहां घमंडके साथ दूसरे विद्वानोंकी अवहेलना करते हुए अपना काव्य पढ़कर सुनाया । कालिदासकी यह उद्धतता **विनयसेन** नामके मुनिको सहन नहीं हुई । इसलिये उन्होंने उसका अहंकार नष्ट करनेके लिये तथा सन्मार्गकी प्रभावना करनेके लिये **जिनसेन** मुनिसे आग्रह किया । महाकवि जिनसेन ‘एकसंधि’ थे अर्थात् उन्हें कोई भी श्लोक वा ग्रंथ एक वार सुननेसे कण्ठस्थ हो जाता था । इसलिये उन्होंने मेघदूतके १२० श्लोक तत्काल ही हृदयस्थ कर लिये और फिर हंसकर कहाः—

४९७)। (३) आचार्य (वि० सं० १०५०) इन्होंने सुभाषित रत्नसंदोह, धर्मपरीक्षा, श्रावकाचार, पंच-संग्रह, सामायिक पाठ लघु, सामायिक पाठ बृहत्, योगसार, सार्द्धद्वय द्वीप प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, चंद्र प्रज्ञप्ति, व्याख्या प्रज्ञप्ति, आदि ग्रन्थ रचे हैं पिछले चार मुद्रित नहीं हुए हैं। (दि० ग्रं० नं० १७)। (४) चारुदत्त चरित्रमें एक विद्याधर चारण मुनि (ह० पृ० २४८)। (५) श्रीकृष्णके पिता वसुदेवजीके पुत्र, गंधर्वसेना रानीसे (ह० ४५७)।

अमितिगति श्रावकाचार–अमितिगति आचार्यकृत श्रावकाचार। देखो ऊपरका शब्द–मुद्रित है।

अमितिगतिसूरि–देखो "अमितिगति आचार्य"

अमितिगतीन्द्र–दिक्कुमार भवनवासी देवोंके इन्द्र। (त्रि० गा० २११)

अमिततेज–श्री ऋषभदेवके पूर्वभव वज्रजंघके भवमें वज्रजंघकी छोटी बहन अनुंधरी वज्रदंत चक्रवर्तीके पुत्र अमिततेजको विवाही गई थी (आदि० पृ० २६२७ पर्व ८)। भरतके गत चौथे कालमें २४ कामदेव हुए उनमेंसे दूसरे कामदेव (जैन बालगुटका पृ० ९)

अमितप्रभ–श्री कृष्णके पिता वसुदेवजीके पुत्र, बालचंदा रानीसे (हरि० पृ० ४५७)

अमितमती–एक आर्यिकाका नाम जिसके पास सेठ कुबेरमित्रकी भानजी। गुणवती और यशस्वतीने दीक्षा ली, जयकुमार सुलोचनाका पूर्वभव। (आदि० पर्व ४६ पृ० १६६७)

अमितवाहन–भवनवासीकी दिक्कुमार जातिके दूसरे इन्द्र (त्रि० गा० २११)

अमितवाहनेन्द्र–दिक्कुमार भवनवासी देवोंके इन्द्र (त्रि० गा० २११)।

आमित विजय–

आमितवेग–(१) हनूमानजीका दूसरा नाम, अंजनाका पुत्र, (२) विजयार्द्धकी अचेलक नगरीका स्वामी रावणके समय (इति० २ पृ० १६३) (इति० २ पृ० १५८)।

अमितसेन–हरिवंश पुराणके कर्ता जिनसेनके गुरु भाई बड़े तपस्वी १०० वर्षकी आयु (ह० पृ० ६२५)।

अमीझरा पार्श्वनाथ–अतिशय क्षेत्र। बम्बई प्रांतकी महीकांठा एजन्सीमें ईडरसे १० मील। यहां चतुर्थकालकी श्री पार्श्वनाथकी मूर्ति है। इसे वड़ाली पार्श्वनाथ भी कहते हैं (बं० स्मा० पृ० ३९)।

अमुक्तक–१२३४ उपवास चारित्र शुद्धिके होते हैं, उनमें अचौर्य व्रतके ७२ होते हैं। मन, वचन, काय व कृतकारित अनुमोदना इसतरह नौ रूपसे आठ प्रकार चोरीका त्याग। १ ग्राम, २ अरण्य, ३ खल, ४ एकांत, ५ अन्यत्र, ६ उपधि, ७ अमुक्तक, ८ पृष्ठ ग्रहण। (हरि० पृ० ३५६)

अमूढ़दृष्टि–सम्यक्तका चौथा अंग। मूढ़ताईसे किसी कुशास्त्र, कुधर्म व कुदेवमें रुचि न लाना। (पु० श्लो० २६)।

अमूर्तत्व–अमूर्तिकपना, वर्णादिरहितपना।

अमूर्तिक–जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण न हो, अरूपी, (सर्वा० अ० सू० ४)

अमृत–भरतचक्रीके पीनेकी वस्तु (इ० १ पृ० ७०)

अमृतचन्द्र आचार्य–(वि० सं० ९६२) श्री कुन्दकुन्दाचार्यके समयसार, प्रवचनसार व पंचास्तिकायके संस्कृत टीकाकार। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, तत्वार्थसारके कर्ता–ये सब ग्रन्थ मुद्रित हैं। (दि० ग्रं० नं० १९)

अमृतधानी–तीर्थंकरके समवसरणके दिव्यपुरका एक नाम (ह० पृ० ५११)

अमृतपुर–विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीकी एक राजधानी (इ० २ पृ० १२६)

अमृतपंडित–व्रतकथाकोषके कर्ता (दि० ग्रं० नं० १८)

अमृतप्रभ–श्री नेमिनाथ तीर्थंकरके पिता समुद्रविजय आदि १० भाई थे उनमेंसे नौमे भाई अभिचन्द्रके एक पुत्र (हरि० पृ० ४५७)

यह मत अब प्रायः सर्वमान्य हो गया है कि, शाकुन्तल, कुमारसंभव, मेघदूत, रघुवंश आदि सुप्रसिद्ध और मनोहर काव्योंका रचयिता कालिदास विक्रमादित्यके समयमें हो गया है, और विक्रमादित्य जिनसेनस्वामीसे लगभग ९०० वर्ष पहिले हो गये हैं। एक कालिदासकी संभावना धाराधीश महाराज भोजके समयमें भी की जाती है, परन्तु भोजका समय भी जिनसेनस्वामीसे नहीं मिलता है, वह लगभग दो सौ[1] वर्ष पीछे चला जाता है। इसलिये इस दूसरे कालिदासका भी जिनसेनस्वामीसे साक्षात् होना संभव नहीं हो सकता है।

महाकवि कालिदास जिनसेनस्वामीसे वहुत पहिले हो गये हैं, इसके लिये एक वहुत अच्छा प्रमाण वीजापुर जिलेके आयहोली ग्रामके मेगूती नामक जैनमंदिरका शिलालेख है, जो रविकीर्ति नामके जैनविद्वानका लिखा हुआ है। इस लेखमें पहिले महापराक्रमी राजा हर्षको परास्त करनेवाले चौलुक्यवंशीय महाराज सत्याश्रय पुलकेशीकी वहुतसी प्रशंसा करके अन्तमें लिखा है कि,—

यस्याम्बुधित्रयनिवारितशासनस्य
सत्याश्रयस्य परमाप्तवता प्रसादम्।
शैलं जिनेन्द्रभवनं भवनं महिम्नाम्
निर्म्मापितं मतिमता रविकीर्त्तिनेदम्॥

---

१. परमारराजाओंके लेखोंसे सिद्ध हुआ है कि, राजाभोजकी मृत्यु वि. सं. १११२ के लगभग हुई थी, और १११५ में उदयादित्य नामक राजा धाराके सिंहासनपर वैठा था।

हुआ । (ब० स्मा० पृ० २, ११७, ११८, १२६, १६१, १७६, १९८, २००, २१४) (विद्वद्रत्नमाला पृ० ७९–८१) श्री जिनसेनाचार्यके शिष्य गुणभद्राचार्यने राजा अमोघवर्षकी प्रशंसामें लिखा है–

"यस्य प्रांशुनखांशुजालविसरद्धारान्तराविर्भव-
त्पादाम्भोजरजः पिशंगमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः ॥
संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलं ।
स श्रीमान् जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मंगलम् ॥"
(उ० पु० पर्व ७७ श्लो० ९)

भावार्थ–महाराजा अमोघवर्ष श्री जिनसेन स्वामीके चरणकमलोंमें मस्तकको रखकर आपको पवित्र मानते थे और उनका सदा स्मरण किया करते थे। प्रश्नोत्तर रत्नमालाके नीचेके श्लोकसे प्रगट है कि यह अमोघवर्ष मुनि होगये थे ।

" विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका ।
रचितामोघवर्षेण सुधियां सदलंकृतिः ॥

अर्थात्–जिसने राज्य छोड़के मुनिपद धारा उस राजा अमोघवर्षने रत्नमाला रची है ।

अमोघ विजया–जब रावणने कैलास उठाया था और पीछे जिनेन्द्रकी भक्ति की थी उससे प्रसन्न हो धरणेन्द्रने जो शक्ति रावणको दी थी उसका नाम (इ० २ पृ० ६९) ।

अमोघवृत्ति न्यास–प्रभाचंद्रकृत (सं० १२१६) (दि० जैन नं० १८८) ।

अम्ब–आम्रफल, खट्टी छाछ, डालकर बनाया हुआ पदार्थ (अ० मा० ३९ पृ० ४०) ।

अम्बद्र–एक ब्राह्मण तापसी, जम्बूद्वीपके भरतमें भावी तीर्थंकर २२वेंके पूर्वभवका नाम (अ० मा० पृ० ४०) ।

अम्बदेव–चंदेरीके राठोर राजा खरहत्थसिंह (वि० सं० ११७०) का पुत्र–इसीकी सन्तान चोरड़िया गोत्रवाले कहलाए (शिक्षा० पृ० ६२७) ।

अम्बर्णा–भरत चक्रीकी दिग्विजयमें मार्गमें पड़नेवाली एक नदी (इ० १ पृ० ८९) ।

अम्बरतिलक–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीकी उनतीसवीं नगरी (त्रि० गा० ७०९) ।

अम्बरीष–(अम्बर्षि)–भट्टी । नारकियों द्वारा भट्टीमें पकानेकी क्रिया (अ० भा० पृ० ४१) ।

अम्बा–माता, श्री नेमिनाथ तीर्थंकरकी भक्त शासनदेवी (अ० भा० पृ० ४१) ।

अम्बाबाई–कोल्हापुरमें अम्बाबाईका मंदिर, यह मूलमें जैन लोगोंका था। भीतर गुम्बजोंपर पद्मासन नग्न जैन मूर्तियां हैं (ब० स्मा० पृ० १९९) ।

अम्बालिका–हरिवंशमें राजा धृतराजकी रानी (ह० पृ० ४३०) ।

अम्बिका–हरिवंशमें राजा धृतराजकी रानी (ह० पृ० ४३०) ।

अम्बिका कल्प–शुभचंद्रकृत (सं० १६८०में)

अम्बिकादेवी–पांचवें नारायण पुरुषसिंहकी माता (ब० इ० २ पृ० ११) ।

अम्बुदावर्त–पर्वतका नाम, जहां श्रीकृष्णकी पटरानी सत्यभामाके पूर्वभवके जीव हरिवाहन राजपुत्रने चारण मुनि श्री धर्म और अनन्तवीर्यके पास दिगम्बरी दीक्षा धारण की व संक्लेश परिणामोंसे मरकर सत्यभामा हुआ (हरि० पृ० ५५६) ।

अम्भोधि–श्री नेमिनाथके पिता समुद्रविजयके एक भाई अक्षोभ्यका एक पुत्र (ह०पृ० ४५७) ।

अयन–तीन ऋतुओंका ६ मासका काल (ह० पृ० १००) ।

अवर्णा–भरत चक्रीकी दिग्विजयके मार्गकी नदी (ई० १ पृ० ८९) ।

अयशःकीर्ति (अयशः) नाम कर्म–नाम कर्मकी वह प्रकृति जिसके उदयसे अयश फैले । (सर्वा० अ० ८ सू० ११) ।

अयाचा– } **अयाचना**– } नहीं मांगना, मुनिके सहनेयोग्य बाईसवीं परीषहोंमेंसे चौदहवीं परीषह । क्षुधा व तृषासे अति पीड़ित होनेपर भी आहारादिका मुखसे व संकेतसे नहीं मांगना । भिक्षा कालमें भी बिजली चमत्कारवत् जाना । मन दरिद्र न रखना (सर्वा० अ० ९ सू० ९) ।

इसके सिवाय यह भी तो सोचना चाहिये कि, योगिराट् पंडिताचार्य जिनसेनके समयकालीन तो थे ही नहीं, उनसे लगभग आठ सौ वर्ष पीछे हुए हैं और दूसरे किसी ग्रन्थकारने इस कथाका उल्लेख किया नहीं है, तब यह कैसे कहा जा सकता है कि यह कथा सर्वथा विश्वसनीय है? जनश्रुतियोंके आधारसे लिखी हुई कथाओंमें ऐसी भूलें वहुधा हुआ करती हैं। जो हो, पार्श्वाभ्युदयकी रचना चाहे जिस कारणसे हुई हो; कालिदासको लज्जित करनेके लिये हुई हो अथवा अपना पाण्डित्य प्रगट करनेके लिये हुई हो परन्तु इसमें संदेह नहीं है कि, वह संस्कृतसाहित्यका एक कौतुकजनक रत्न है।

आदिपुराण—महापुराणके दो भाग हैं। पहिले भागका नाम आदिपुराण है और दूसरेका उत्तरपुराण। **आदिपुराणमें** मुख्यतः प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्तीका चरित्र है और **उत्तरपुराणमें** शेष २३ तीर्थंकरोंका तथा चक्रवर्ती नारायण आदि शलाका पुरुषोंका चरित्र है। पूरे महापूराणमें चौवीस तीर्थंकर, वारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण, और नौ वलभद्र इन ६३ शलाकापुरुषोंका चरित्र है। दिगम्बर सम्प्रदायमें प्रथमानुयोगका यह सवसे प्रधान ग्रन्थ है। हमारे यहां जितने पुराण, काव्य, नाटक, आदिके ग्रन्थ हैं, उन सवकी कथाएँ प्रायः इसी महापुराणसे ली गई हैं। **महापुराणकी** श्लोकसंख्या २० हजार है, जिसमेंसे १२००० श्लो-

---

१. पार्श्वाभ्युदयकी टीकामें 'रत्नमाला' नामके कोशके जगह २ प्रमाण दिये हैं और रत्नमालाका कर्त्ता 'इरुगदण्डनाथ' नामक जैनविद्वान् विजयनगरनरेश हरिहरराजके समय शंकसंवत् १३२१ में हुआ है और इससे पीछे योगिराट् पंडिताचार्य हुए होंगे।

अरत्युत्पादक वचन—यह वचन जिसके सुननेसे अरति व विषयोंमें अप्रीति भाव उत्पन्न होजावे (ह० पृ० १४८)।

अरत्नी—समवसरणके दिव्यपुरका एक नाम (ह० पृ० ५११)।

अरविन्द—मरुभूत कमठ मंत्रियोंका स्वामी राजा।

अरनाथ—देखो शब्द "अर"।

अरपाक—मदरास प्रांतमें कांजीवरम स्टेशनसे तिरुपारुथी कुनरम् होते हुऐ ९ मीलपर एक गाम जहां २००० वर्षका प्राचीन दि० जैन मंदिर है। प्रतिमा ऋषभदेवकी दर्शनीय है। यह प्राचीन स्थान है। बौद्धोंके भी मंदिर हैं (या० द० पृ० २०७)।

अरस भोजन—स्वाद न लेकर भोजन करना, घी, तेल, दूध, दही, मीठा, निमक इन छः रसोंको त्याग कर भोजन करना (भग० पृ० ८८)।

अरहदास सेठ—अंतिमकेवली श्रीजंबूकुमारके पिता।

अरहन्त—पूजने योग्य, अर्ह धातु पूजामें है—तथा अ से प्रयोजन अरि—शत्रु मोहनी कर्म और अंतराय कर्म, र से मतलब रज अर्थात ज्ञानावरण और दर्शनावरण उसको हन्त—नाश करनेवाले इस तरह अरहन्तसे मतलब हुआ कि चार घातियाकर्मोंको नाश करनेवाले (मू. गा. ५०५)।

अरहंतदेव— / **अरहंतपद**— / **अरहंत परमेष्ठी**— } जो साधु चार घातिया कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र, अनन्तबल, अनन्तवीर्य तथा अनंतसुख प्राप्त करके अरहंतपदमें होजाते हैं वे ही अरहंतदेव या अरहंत परमेष्ठी कहलाते हैं। वे शरीर सहित होते हैं इसलिये आर्यखंडमें विहार करके धर्मोपदेश देते हैं। तीर्थंकर अरहंतके समवसरण होता है, साधारण अरहंतके गंधकुटी होती है। जैन लोग अरहंतपदको आत्मशुद्धिके लिये पूजते हैं।

अरहंत पासाकेवली—पंडित विनोदीलाल कृत सं०में व पं० वृन्दावन (सं० १९०५) अग्रवाल कृत छन्दमें (दि० जै० १२५–१३१)।

अरहन्त प्रतिमा—अरहंत परमेष्ठीकी ध्यानमय प्रतिमा या मूर्ति धातु या पाषाणकी—इस प्रतिमामें छत्र, चमर, सिंहासन, भामण्डलादि प्रातिहार्य भी साथ बने होते हैं। जिनमें यह प्रातिहार्य न हों वह सिद्धकी प्रतिमा है (जयसेन प्रतिष्ठापाठ श्लोक १८०–१८१)।

अरहन्त भक्ति—अरहंत परमेष्ठीकी भक्ति, भाव विशुद्ध करके करना। पूजा व स्तवन करना। यह १६ कारण भावनामें १० वीं भावना है (सर्वा० अ० ६ सू० २४)।

अरहंत मूर्ति—देखो "अरहंत प्रतिमा।"

अरहन्त सिद्ध—छः अक्षरी मंत्र, इसका जप किया जाता है।

अरि—शत्रु, रामलक्ष्मणादि बाणविद्याके गुरु (इ० २ पृ० ८७)।

अरिंजय—विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीकी १२ वीं नगरी (त्रि० गा० ६९७)।

(२) अरहनाथ भगवानके तीर्थकालमें परशुरामके पिता जमदग्निकी स्त्री रेणुपतीके बड़े भाई मुनि (इ० २ पृ० २९)।

(३) श्री शांतिनाथ तीर्थंकरका जीव पूर्वभवमें राजा श्रीषेण था। इसने अरिंजय मुनिको आहार दान दिया था (सा० अ० २ श्लोक ७०)।

(४) नेमनाथस्वामीके पूर्वभवमें एक राजा (ह० अ० ३४ श्लोक १८)।

(५) भरतचक्रीके सेनापति जयकुमारके रथका नाम (आ० पर्व ४४ श्लोक ३२०)। (६) भरतचक्रीका पुत्र जिन्होंने जयकुमारके साथ दीक्षा की। (आ० प० ४७ श्लो० २८१)।

अरिन्दम—भरतचक्रीका पुत्र जिसने जयकुमारके साथ दीक्षा ली (आ० प० ४७ पृ० २८१) (२) मुनि जिनके पास राजा अर्चिमालीने दीक्षा ली। वसुदेवके समयमें (हरि० पृ० २२२) (३) श्री ऋषभदेवके समयमें विजयार्द्धका स्वामी विद्याधर विनमिके एक पुत्रका नाम (ह० पृ० २५०) (४)

'पहला' नहीं, किन्तु 'मुख्य' करना चाहिए। श्रीयुक्त कुप्पूस्वामीने इसका अर्थ 'पहला' करके **जीवंधरचरित्र**की भूमिकामें लिख दिया है कि, "**जिनसेनाचार्यः पुराणकृतामादिमो जैनेषु।**" अर्थात् जैनपुराण बनानेवालेंमें जिनसेन सबके पहिले हैं। परंतु यह एक भ्रम है। जिनसेनस्वामीके पहिले जैनियोंमें कई पुराणकर्त्ता हो गये हैं। हां! यह बात दूसरी है कि, आदिपुराण उन सम्पूर्ण पुराणोंमें अपने ढंगका सबसे प्रधान ग्रन्थ बना और यही अभिप्राय हस्तिमल्लके दिये हुए 'प्रथमं' पदसे सूचित होता है। जिनसेनस्वामीके शिष्य **गुणभद्राचार्य** उत्तरपुराणकी प्रशस्तिमें स्वयं इस बातको स्वीकार करते हैं कि, आदिपुराणको जिनसेनस्वामीने **कविपरमेश्वर** नामके कविकी बनाई हुई गद्यकथाके आधारसे बनाया है। देखिये, प्रशास्तिका १६ वाँ श्लोकः—

कविपरमेश्वरनिगदितगद्यकथामातृकं पुरोश्चरितम्।
सकलछन्दोलङ्कृतिलक्ष्यं सूक्ष्मार्थगूढपदरचनम्॥

कविपरमेश्वर जिनका दूसरा नाम **कविपरमेष्ठी** भी है, कर्नाटक प्रान्तमें एक बड़े नामी कवि हो गये हैं। **कर्नाटककविचरित्र** नामक ग्रन्थके कर्त्ता कहते हैं कि, कनड़ीके सुप्रसिद्ध कवि **आदिपंपने** उनकी बड़ी प्रशंसा की है। और **पंपकवि** ही क्यों, आदिपुराणमें स्वयं जिनसेनस्वामीने उनको पूज्य मानकर स्मरण किया है—

स पूज्यः कविभिर्लोके कवीनां परमेश्वरः।
वागर्थसंग्रहं कृत्स्नं पुराणं यः समग्रहीत्॥ ६०॥

अर्कप्रभ-विद्याधर राजा रश्मिवेग मुनि होकर कापिष्ठ स्वर्गमें अर्कप्रभ नामका देव हुआ। (इ० २ पृ० २९९)

अर्करक्ष-भानुरक्ष-राक्षस वंशका एक राजा। (इ० २ पृ० ९३)।

अर्कराज-श्री धर्मनाथ तीर्थंकरके पिता।

अर्कवंश-सूर्यवंश, जिसमें ऋषभदेव आदि हुए।

अर्घ-आठ द्रव्य-जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल इनको मिलाकर चढ़ाना।

अर्चन-(अर्चा) पूजा करना, श्रीजिनेन्द्रकी पूजा जल चंदनादि आठ द्रव्यसे की जाती है। पूजाके छः भेद हैं-(१) नामपूजा-जिनेन्द्र भगवानका नाम लेकर पूजना। (२) स्थापना पूजा-मूर्तिमें जिनेन्द्रकी स्थापना करके मूर्तिद्वारा पूजना (३) द्रव्यपूजा-श्री अरहंत भगवानके शरीरकी व शरीर सहित आत्माकी पूजा करना। (४) क्षेत्रपूजा-जहां जहां गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान व निर्वाणकल्याणक हों वहां जाकर उन पवित्र क्षेत्रोंकी पूजा करना। (५) कालपूजा-जिन तिथियोंमें व समयोंमें तीर्थंकरोंके कल्याणक हुए हों व अन्य नंदीश्वर दशलाक्षणी आदि पर्वके दिनोंमें पूजन करना सो कालपूजा है। (६) भावपूजा-गुणोंका स्मरण करना। (धर्म स० श्रा० पृ० २२७-२३१)।

अर्चि-प्रथम अनुदिश प्रमाण; किरण, अग्निका फुलगारा (अ० भा० पृ० ८६)।

अर्चिमालिनी-नौ अनुदिश विमानोंमें दूसरा विमान। वे ९ हैं। १-अर्च, २-अर्चिमालिनी, ३-वैर, ४-वैरोचन, ये चार दिशाके हैं-सोम, सोमरूप, अंक, स्फाटिक ये चार विदिशाके हैं। आदित्य-यह इंद्रक विमान है (त्रि० गा० ४५६)।

अर्चिमाली-(१) वसुदेव कुमारको कुंजरावर्त नामके विजयार्द्धके नगरमें ले जानेवाला विद्याधर (ह० पृ० २२१), (२) किलरोद्गीत नगरका स्वामी राजा अर्चिमाली विद्याधर, वसुदेवको विवाहनेवाले श्यामाके पिता अशनिवेगके पिता (हरि० पृ० २२९)।

अर्चिष्मान-अरहंतका एक पुत्र (इ.पृ.४७६)

अर्जिका-आर्या श्राविका, ११ प्रतिमाधारी जो एक पीछी व कमंडलव एक सारी सफेद रखती है। भिक्षासे हाथमें बैठकर भोजन करती है, केशलोंच करती है (श्रा० पृ० २९१)।

अर्जुन-(१) बहु बीजक वृक्षविशेष, इसकी छाल सफेद होती है उनमेंसे दूध निकलता है, पत्ते अनीदार, लम्बे और गोल होते हैं। (२) एक जातिका घास, (३) सफेद रंग, (४) सफेद सोना, (५) राजा पांडुका तीसरा पुत्र, (६) (अ० भा० पृ० ११४)।

अर्जुनदेव-मालवाकी धारा नगरीमें पं० आशाधरके समकालीन (वि० सं० १२४९) पण्डित (विद्व० पृ० ९४), (२) अनहिलवाड़ा पाटन गुजरातका वाघेलवंशी राजा नं० ५ (१२६२-१२७४) (व० स्मा० पृ० २१२)।

अर्जुनप्रभ-श्रीरामके भाई लक्ष्मण नारायणका एक पुत्र (इ० २ पृ० १३७)।

अर्जुनवर्मा-राजा भोज मालवाकी परम्परामें ८ वां राजा (वि० सं० १२६७) (विद्व० पृ० ९५)।

अर्जुनी-विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीकी प्रथम नगरी (त्रि० गा० ७०१)।

अर्णराज-अनहिलवाड़ा पाटन गुजरातका वाघेलवंशी दूसरा राजा (सन् ११७०-१२००) (व० स्मा० पृ० २११)।

अर्थ-प्रयोजन, धन, [illegible], यथार्थ, निवृत्ति पदार्थ जो निश्चय किया जाय। अग्रायणी पूर्वका आठवां वस्तु अधिकार (इ० पृ० १८७)।

अर्थ अवग्रह-व्यक्त पदार्थका ग्रहण। मतिज्ञान दर्शन पूर्वक होता है। इन्द्रिय व पदार्थका सम्बंध सो दर्शन है। उसके पीछे जो ऐसा सामान्य ग्रहण हो कि जिससे हम पदार्थका निश्चय कर सकें वह अर्थ अवग्रह है। जहां ऐसा स्पष्ट ग्रहण हो कि यह क्या पदार्थ है ऐसा न [illegible] अव-

नामक कविकी प्रशंसा की है, जिसने किसी कथाग्रन्थकी रचना की है।

आदिपुराण जैनसाहित्यका एक परमोत्तम ग्रन्थ है। यह केवल पुराण ही नहीं है। इसमें कविने अपने रचनाकौशलसे जैनियोंके कथा, चरित्र, भूगोल और द्रव्य इन चारों ही अनुयोंगोके विषयोंको संग्रह कर दिये हैं। जैनधर्मके जितने मान्य तत्त्व हैं, प्रायः वे सब ही इसमें कहीं न कहीं कथाका सम्बन्ध मिलाकर किसी न किसी रूपमें कह दिये गये हैं। इसकी प्रमाणता भी बहुत है। पीछेके ग्रन्थकारोंने इस ग्रन्थके प्रमाण 'आर्ष' कहकर बड़े आदरके साथ उद्धृत किये हैं। पौराणिकोंके सिवाय कवियोंमें भी इसका बड़ा आदर है। वे इसे एक अद्वितीय महाकाव्य समझते आ रहे हैं। और है भी यह ऐसा ही। महाकाव्यके सारे लक्षण इसमें मिलते हैं। यह शृंगारादि नवों रसोंसे ओतप्रोत भरा हुआ है। इसकी कविता बहुत ऊंचे दर्जेकी है। पदलालित्य, अर्थसौष्टव, सरलता, गंभीरता, कोमलता आदि कविताके समस्त गुणोंसे वह परिपूर्ण है। प्राकृतिक दृश्योंके तथा मानसिक विचारोंके भी इसमें अच्छे चित्र खींचे हैं। वह न केवल पाठकोंके मनोरंजनकी ही शक्ति रखती है, किन्तु मनोरंजनपूर्वक सुखका मार्ग दिखाती है और संसारके कष्टोंसे छूटनेके लिये उत्साहित करती है। यदि वर्तमान रुचिके पाठकोंको प्रसन्न न कर सकनेका इस ग्रन्थमें कुछ दोष है, तो वह यही कि, इसकी कविता शृंगारादि रसोंमें तन्मय करके भी उसमें स्थिर नहीं रहने देती है—कुछ ही समय पीछे उन रसोंमें विरसताका भान करा देती है। पर

पर्याय सहित व्यंजन पर्यायका संकल्प करे। जैसे कहना कि धर्मात्मामें सुख जीवीपना है। यहां सुख तो अर्थ पर्याय है जीवित रहना व्यंजन पर्याय है, पहला विशेषण है दूसरा विशेष्य है (सर्वा० जग० वारि० पृ० ४९८)।

अर्थ शब्दाचार–उभयाचार, शब्द और अर्थ दोनोंकी शुद्धता करनी। सम्यग्ज्ञानके ८ अंगोंमें तीसरा अंक (श्रा० पृ० ७२)।

अर्थशास्त्र–वह शास्त्र जिसमें धनकी प्राप्तिके उपायोंका वर्णन हो।

अर्थशुद्धि–शब्दोंका अर्थ शुद्ध करना–सम्यग्ज्ञानका दूसरा अंग (ह० पृ० ६१२)।

अर्थ समग्रह–देखो " अर्थ शुद्धि "

अर्थ सम्यक्त–देखो " अर्थ दर्शन "

अर्थ संक्रान्ति–एक पदार्थसे दूसरे पदार्थपर बदल जाना। शुक्लध्यानमें अबुद्धि पूर्वक उपयोग एक पदार्थसे दूसरे पदार्थपर जाता है। जैसे आत्मा छोड़के उसके भिन्न२ गुणोंकी तरफ पलट जाना। जैसे सुख, ज्ञान, चारित्र आदिपर व उसकी भिन्न२ पर्यायोंपर चल जाना (सर्वा० अ० ९ सू० ४४)।

अर्थसंदृष्टि–अनेक प्रकार संकेत जिनसे किसी पदार्थका स्वरूप प्रगट किया जाय। अंकसंदृष्टिमें १–२–३ आदि अंकोंके संकेतसे बताया जाता है। जहां वास्तविक दाष्टांतरूप भाव प्रगट किया जाय वह वर्णन अर्थसंदृष्टि है या अंकके सिवाय अन्य प्रकारका समझाना अर्थसंदृष्टि है। देखो शब्द "अंकसंदृष्टि" (प्र० जि० पृ० ११३) (गो० क० गाथा गा० २२९)।

अर्थसिद्धा–वर्तमान चौथे तीर्थंकर अभिनन्दनकी पालकीका नाम, जिसपर चढ़कर योग धारनेको वनमें गए (ह० पृ० ५६८)।

अर्थाक्षर श्रुतज्ञान–देखो "अक्षरज्ञान" (प्र० जि० पृ० ४०)–वह श्रुतज्ञान जो संपूर्ण श्रुतज्ञानका संख्यातवां भाग मात्र है। अर्थात् भाव श्रुतज्ञान रूप एक अक्षरसे होनेवाला ज्ञान (गो० जी० गा० ३३३), (२) द्रव्य श्रुतज्ञानके १८ भेद हैं उनमें पहला भेद। अक्ष-कर्ण इंद्रियको कहते हैं उसको जो ज्ञान द्वारकरि अपना स्वरूप दे सो अक्षर है। " अक्षाय दाति ददाति स्वम् अर्पयति इति अक्षरं " ऐसे कुल द्रव्य श्रुतज्ञानके अपुनरुक्त अक्षर एक कम एक दृष्टि प्रमाण है (गो० जी० गा० ३४९)।

अर्थाचार–शब्दके यथार्थ अर्थको समझना। यह सम्यग्ज्ञानका दूसरा अंग है (श्रा० ७२)।

अर्थानुशासन–देव संघके विनयकुमारस्वामी कृत (दि० जैन नं० ३०६)।

अर्थापत्ति–मान लेना कि ऐसा ही होगा। मीमांसक पृथक् प्रमाण मानते हैं।

अर्थावग्रह–देखो शब्द "अर्थ अवग्रह" (गो० जी० गा० ३०७)।

अर्थोद्भव सम्यग्दर्शन–देखो "अर्थदर्शन"।

अर्थोपसम्पत्–सूत्रोंके अर्थके लिये यत्न करना (मू० गा० १४४)।

अर्द्ध कथानक–पंडित बनारसीदास (सम्वत् १६९३) कृत।

अर्द्ध कल्की (उपकल्की)–श्री महावीरस्वामीके पीछे पंचमकालमें एक २ हजार वर्ष पीछे एक एक कल्की राजा होता है। उसके मध्यमें ५०० वर्ष पीछे एक एक उपकल्की या अर्द्धकल्की होता है। ये राजा जैनधर्मके नाशक वं विरोधक होते हैं (त्रि० गा० ८५७)।

अर्द्ध चक्री (चक्रवर्ती)–नारायण यह एक पद है जो भरतक्षेत्रके ६ खण्डोंमेंसे दक्षिण तरफके ३ खण्डोंके स्वामी होते हैं। इस अवसर्पिणी कालके चौथे दुखमा सुखमा कालमें ९ नारायण होगए हैं। १ त्रिपृष्ट, २ द्विपृष्ट, ३ स्वयंभू, ४ पुरुषोत्तम, ५ पुरुषसिंह, ६ पुरुष पुण्डरीक, ७ पुरुषदत्त, ८ लक्ष्मण, ९ कृष्ण–ये सब मोक्षगामी होने हैं। किसी अन्य भवसे आगामी मोक्ष जानेवाले होते हैं। जैसे त्रिपृष्ट नारायणका जीव श्री महावीरस्वामी होकर

जो लोग इस पूज्य धर्मात्माके इस उद्देश्यको समझ लेंगे और उसपर दृष्टि रखके फिर आदिपुराणका अध्ययन करेंगे, हमको विश्वास है कि, वे इसको एक अतिशय पूज्य और पवित्र काव्य स्वीकार करनेमें कभी संकुचीत नहीं होंगे। उन्हें इस काव्यके सम्मुख दूसरे वासनाविलसित काव्य फीके मालूम होने लगेंगे। क्योंकि—

त एव कवयो लोके त एव च विचक्षणाः।
येषां धर्मकथाङ्गत्वं भारती प्रतिपद्यते॥ ६२॥

(प्रथमपर्व)

अर्थात्—पृथ्वीमें वे ही कवि हैं और वे ही पंडित हैं, जिनकी वाणी धर्मकथाका प्रतिपादन करती है।

आदिपुराणकी कविताके विषयमें गुणभद्रस्वामीने कहा है:—

कविपरमेश्वरनिगदितगद्यकथामातृकं पुरोश्चरितम्।
सकलच्छन्दोलङ्कृतिलक्ष्यं सूक्ष्मार्थगूढपदरचनम्।
व्यावर्णनोरुसारं साक्षात्कृतसर्वशास्त्रसद्भावम्।
अपहस्तितान्यकाव्यं श्रव्यं व्युत्पन्नमतिभिरादेयम्॥
जिनसेनभगवतोक्तं मिथ्याकविदर्पदलनमतिललितम्।
सिद्धान्तोपनिबन्धनकर्त्रा भर्त्रा चिराद्विनेयानाम्॥
अतिविस्तरभीरुत्वादवशिष्टं संगृहीतममलधिया।
गुणभद्रसूरिणेदं प्रहीणकालानुरोधेन॥ १९॥

अर्थात् यह आदिपुराण कविपरमेश्वरकी कही हुई गद्यकथाके आधारसे बनाया गया है। इसमें सारे छन्द और अलंकारोंके उदाहरण हैं, इसकी रचना सूक्ष्म अर्थ और गूढपदोंवाली है,

पुद्गल ग्रहण किये थे व जितनी उनकी संख्या थी उतनी संख्यावाले व वैसे ही कर्म पुद्गल ग्रहण करे तबतक जो काल बीते सो कर्म द्रव्य परिवर्तन काल है। नोकर्म और कर्म परिवर्तनका जोड़रूप काल एक द्रव्य या पुद्गल परिवर्तनका है। (सर्वा० अ० २ सू० १०) जिस जीवको इस अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन कालसे अधिक काल मोक्ष नहीं होना है उसको सम्यग्दर्शनका लाभ नहीं होता है। सम्यक्ती जीव इतने कालसे अधिक संसार अवस्थामें नहीं रह सक्ता है।

अर्द्ध मंडलीक–दो हजार राजाओंका स्वामी (त्रि० गा० ६८९) देखो शब्द "अधिराज"।

अर्द्ध मागधिभाषा–भगवान तीर्थंकरकी दिव्यध्वनि, देवकृत एक अतिशय देखो "अतिशय"।

अर्द्धमिथ्यात्व–सम्यक् मिथ्यात्व–सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शनका मिला हुआ भाव।

अर्द्धरथी–युद्धकी सेनाके अधिपति। समस्त योद्धाओंमें जो मुख्य होते हैं उनको अतिरथी कहते हैं। उनके नीचे जो मुख्य होते हैं उनको **महारथी**। उनके नीचे जो मुख्य होते हैं उनको **समरथी**। उनके नीचे जो मुख्य होते हैं उनको **अर्द्धरथी**। उनके नीचे जो मुख्य होते हैं उनको **रथी** कहते हैं। जरासंघसे लड़ते हुए श्रीकृष्णकी सेनामें कृष्णजी, बलदेव व रथनेमि अतिरथी थे। राजा समुद्रविजय, वसुदेव, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि महारथी थे। शंबुकुमारादि समरथी थे, विराट्, भानु आदि अर्धरथी थे, इनके अतिरिक्त सब राजा रथी थे (ह० ए० ४६८–४६९)।

अर्द्ध स्थंभ–ऊर्द्ध लोकके आकारको मध्यमें छेद कर बीचका एक राजू उसका आधा आधा राजू दोनों तरफ रखना तथा दोनों तरफके बाकी क्षेत्रको तहां ऊपर व नीचेके क्षेत्रको उलटा सुलटा रखके, चौकोर क्षेत्र होय सो मध्यमें रखिये, वह अर्द्ध स्तम्भ क्षेत्र है। (त्रि० गा० ११८)

अर्द्धेन्द्रा–पांचवें नर्ककी पृथ्वीका चौथा इन्द्रकबिल (त्रि० गो० १९८)

अर्पाकम्–देखो 'अरपाक' अतिशयक्षेत्र मदरास।

अर्पित–मुख्य, प्रधान, एक पदार्थमें कई स्वभाव हों उनमेंसे एकको मुख्य अर्थात अर्पित करते हैं तब दूसरेको अनर्पित अर्थात् गौण करते हैं। जैसे एक मानव पिता व पुत्र दोनों रूप है। जब उसका पितापना वर्णन करेंगे तब पितापना मुख्य होजायगा और पुत्रपना गौण रहेगा। यह सूत्र श्री उमास्वामी महाराजका है–"अर्पितानर्पितसिद्धेः" सू० ३२।अ० ५ इससे प्रगट है कि विक्रम सं० ८१में जब पट्टावलीके अनुसार श्री उमास्वामी हुए हैं तब स्याद्वादका सिद्धांत माना जाता था। इस सूत्रसे ही प्रगट झलक रहा है। जैन सिद्धांत रिषभदेवके समयमें भी प्रतिपादन होता था। तब भी स्याद्वाद होना चाहिये। अन्यथा वस्तुका अनेकांत स्वरूप कथन नहीं किया जासक्ता (देखो सर्वा०)।

अर्यमा–१० वें नक्षत्रका अधिदेवता (त्रि० गा० ४३४)

अर्ह–भगवती आराधना ग्रन्थमें सविचार भक्त प्रत्याख्यानके ४० अधिकार हैं उनमें पहला अधिकार अर्ह है। जिसमें यह बताया है कि भक्तप्रत्याख्यान समाधिमरणके योग्य कौनसा साधु होता योग्य है। जो साधु असाध्य रोगसे पीड़ित हो, जरा गृसित हो, जिससे संयम न पल सके; देव, मनुष्य, पशु व अचेतन कृत उपसर्ग पड़े, दुर्भिक्ष आन पड़े, वनमें मार्ग भूल जाय, नेत्र जिसका दुर्बल हो, ईर्यापथ शुद्धि न कर सके, कर्णोंसे सुन न सके, जंघा बलरहित हो खड़ा आहार न ले सके; इत्यादि कारणोंसे साधु या देशव्रती श्रावक व अविरत सम्यक्ती समाधिमरण करें। इस मरणमें क्रमसे समाधान करके भोजनका क्रमसे त्याग किया जाता है। (भ० ए० २४–२६)

अर्हगुण सम्पत्ति व्रत–जिनगुण सम्पत्ति व्रत (कि० ए० १४३)। इस व्रतकी विधि यह है कि

यद्वा कवीन्द्रजिनसेनमुखारविन्द-
निर्यद्वचांसि न मनांसि हरन्ति केषाम् ॥

अर्थात्—इस महापुराणमें धर्म है, मुक्तिका मार्ग है, कविता है और तीर्थंकरोंका चरित है। इसके सिवाय इसमें (पूर्व भागमें) जो जिनसेन कवीन्द्रके मुखकमलसे निकले हुए वचन हैं, वे किसके मनको हरण नहीं करेंगे ?

आदिपुराणमें सुभाषित कविता जितनी चाहिये उतनी मिल सकती है। इसके लिये कहा है:—

यथा महार्घ्यरत्नानां प्रसूतिर्मकरालयात् ।
तथैव सूक्तरत्नानां प्रभवोऽस्मात्पुराणतः ॥ १६ ॥
सुदुर्लभं यदन्यत्र चिरादपि सुभाषितम् ।
सुलभं स्वैरसंग्राह्यं तदिहास्ति पदे पदे ॥ २२ ॥

अर्थात्—जैसे बड़े २ कीमती रत्न समुद्रसे उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकारसे सूक्त वा सुभाषितरूपी रत्न इस पुराणसे। अन्य ग्रन्थोंमें जो कठिनाईसे भी नहीं मिल सकते हैं, वे सुभाषितपद्य इस ग्रन्थमें स्थान स्थानपर सहज ही जितने चाहो उतने मिल सकते हैं।

आदिपुराण जैसे काव्यकी कविताकी उत्तमता दूसरेके कहने-की अपेक्षा स्वयं अनुभव करनेसे ही भली भांति मालूम हो सकती है। इसलिये हम अपने पाठकोंसे प्रेरणा करते हैं कि वे इस अद्वितीय ग्रन्थको स्वयं विचारपूर्वक स्वाध्याय करके देखें। यह ग्रन्थ यद्यपि अभी तक मूल और हिन्दी टीकायुक्त नहीं छपा है, तो भी मराठी

हुए। ये प्रत्येक ५ वर्षके अन्तमें १०० योजन क्षेत्रमें निवास करनेवाले मुनियोंको एकत्र करके युग प्रतिक्रमण कराते थे। इन्होंने मुनिके संघ भेद स्थापित किये। वे हैं नंदि, वीर, अपराजित, देव, सेन, भद्र, गुणधर, गुप्त, चंद्र आदि। (श्रुता० कथा पृ० १९)।

अर्हद्भक्त–राक्षस वंशका एक प्रसिद्ध राजा (इ० २ पृ० ५४)।

अर्हदासी–श्री शांतिनाथ तीर्थंकरके समवसरणमें मुख्य श्राविका (इ० २ पृ० १७)।

अर्हन्–पूजने योग्य, देखो शब्द "अरहंत"।

अर्हनन्दि–(१) प्राकृत शब्दानुशासनके कर्ता महाकवि त्रिविक्रमके गुरु अर्हनंदि त्रैविद्य मुनि (विद्व० पृ० ४५)।

(२) कुमुदेन्द्र कर्णाटक कवि (ई० सन् १२७५) के पितृव्य (बड़े काका) अर्हनंदिवृति, इस कविने रामायण बनाई है (क० नं० ५७)।

(३) कोल्हापुर राज्यके बमनी ग्राममें शाका १०७३ का लेख शिलाहार राजा विजयादित्यका यह वहांके जैन मंदिरपर है, इसमें माघनंदि सिद्धांतदेवके शिष्य अर्हनंदि सिद्धांतदेवका कथन है (व० स्मा० पृ० १५४)।

अर्हन्त–देखो शब्द "अरहंत"।

अलका–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें २७वां नगर (त्रि० गा० ७०४), (२) सेठ सुदृष्टिकी स्त्री जिसने वसुदेव व देवकीसे उत्पन्न पुत्रोंको पाला (ह० पृ० ३६३)।

अलक्ष्य–जिसका लक्षण किया जाय उसे लक्ष्य कहते हैं। उस लक्ष्यके सिवाय दूसरे पदार्थोंको उस लक्ष्यकी अपेक्षा अलक्ष्य कहते हैं (जै० सि० प्र० नं० ११)।

अलङ्कर्मीण निर्यापक–जो संसारसमुद्रसे तारनेके लिये समर्थ हैं ऐसे सुस्थित आचार्य, निश्चयनयसे शुद्ध स्वात्मानुभूति परिणामके सन्मुख आत्मा (सागा० अ० ८ श्लोक १११)।

अलङ्कार–गहना, मण्डन, आभरण, परिष्कार, शृंगार, उपमा आदि गुण (वि० कोष पृ० ३१७)।

अलङ्कार चिंतामणि–अलङ्कारका ग्रंथ अजितसेनाचार्यकृत पद्मराज पंडित द्वारा बंगलोरसे प्रकाशित (विद्व० पृ० ४४)।

अलंकार शास्त्रकार–शंखवर्म नामके कर्णाटक जैन कविका नाम। रुद्रभट्टने इनकी स्तुति की है। (क० नं० २५)

अलंकारोदय नगरी–श्री अजितनाथ तीर्थंकरके समयमें पूर्णघनके पुत्र मेघवाहनको प्रसन्न होकर राक्षस जातिके देवोंके इन्द्र भीम और सुभीमने लंका और पाताललंकाका राज्य दिया। उस पाताललंकामें एक अलंकारोदय नगर १३१॥ योजन १॥ कला चौड़ा था (इ० २ पृ० ५३)

अलम्बूषा–सौधर्मादि स्वर्गोंमें होनेवाली चौथी गणिका महत्तरीका नाम। हर स्वर्गमें चार होती हैं–कामा, कामिनी, पद्मगन्धा, अलम्बूषा। (त्रि० गा० ५०६)

अलंभूषा–रुचक गिरिपर उत्तर दिशाके पहले कूटपर वसनेवाली देवी (त्रि० गा० ९५४) इसको अलंबुसा भी कहते हैं (ह० पृ० ३८७ व ११८)

अलाभ परीषह–२२ परीषहोंमें १९वीं, जिसको मुनि समभावसे सहते हैं। कहीं भिक्षाको गए और भिक्षाका लाभ न हुआ या अंतराय आगया तो खेद न मानना। (सर्वा० अ० ९ सू० ९)

अलाभविजय–देखो शब्द "अलाभपरीषह"।

अलिंगग्रहण–जो किसी इन्द्रियसे ग्रहणमें न आवे।

अलुब्धत्त्व–लोभ न होना–दातार गृहस्थमें सात गुणोंमेंसे तीसरा गुण–दान देनेवालेमें श्रद्धा, शक्ति, निर्लोभीपना, भक्ति, ज्ञान, दया व क्षमा होने चाहिये (चा० पृ० २६) पुरु० श्लो० १६९ में सात गुण कहे हैं–इस लोकके फलकी इच्छा न होना, क्षमा, कपटरहितपना, ईर्षा न होना, विषाद न होना, प्रसन्न रहना, अहंकार न होना।

और धूसरी दिखलाई देती है, सो जान पड़ता है कि वह अपने प्यारे मेघके विरहसे कृश हो रही है। दूरसे गोलाकार और छोटे दिखने-वाले पर्वत उन्हें ऐसे मालूम होते हैं कि ये सूर्यके तापके डरसे जमीनमें घुसे जा रहे हैं। इसी प्रकारसे विस्तृत बावड़ीका पानी अति-शय गुलाई लिये हुए उन्हें ऐसा ज्ञात होता है कि; पृथ्वीने अपने मस्तकमें यह एक टीका लगा लिया है।

नभः स्थगितमस्माभिः सुरगोपैस्तथा मही।
क्व यातेति न्यषेधन्नु पथिकान्गर्जिता घनाः॥ १५ [पर्व ९]

अर्थात्—वर्षाऋतुमें बटोहियोंसे बादल गर्ज करके कहते हैं कि आकाशको तो हमने सब ओरसे घेर लिया है और पृथ्वीको इन्द्र-बधूटियों (एक प्रकारका लाल कीड़ा) ने ढक लिया है, अब देखें, तुम कहां जाते हो?

वंशैः संदष्टमालोक्य तासां तु दशनच्छदम्।
वीणालाबुभिराश्लेषि घनं तत्स्तनमण्डलम्॥ १०८ [पर्व १२]

अर्थात्—वंशी वा बांसुरीको एक अप्सराके होठोंका चुम्बन करती देखकर वीणाकी अलाबुने (नीचेके तुंबेने) दूसरी देवांगनाके सघन कुचमंडलोंसे अलिंगन कर लिया। यह चुम्बन करती है, तो मैं कुचोंका स्पर्श क्यों न करूं?

कृतावगाहनाः स्नातुं स्तनदघ्नं सरोजलम्।
रूपसौन्दर्यलोभेन तदगारीदिवाङ्गनाः॥ १६० [पर्व ८]

उस सरोवरमें बहुतसी स्त्रियां अपने कुचोंतकके शरीरको डुबाकर

महा गजदन्त हैं । पुष्करादिके कालोद समुद्र तरफ दो गजदन्त अल्प लम्बाई लिये हैं । अर्थात् १६२६११६ योजन हैं । ये अल्प गजदन्त हैं । दो गजदन्त मानुषोत्तरकी तरफ बड़े गजदन्त हैं । इनकी लम्बाई २०८२२१९ योजन है (त्रि० गा० ७९६-७९७) ।

अल्पतर बंध-कर्मोंका बंध तीन प्रकार होता है-(१) भुजाकार बन्ध-थोड़ी कर्म प्रकृतिको बांध करके पीछे अधिक कर्म प्रकृतिको बांधे । जैसे उपशांत मोह ११वें गुणस्थानमें एक वेदनीय कर्मका बन्ध था वहांसे १०वेंमें आया तब छः कर्मका बंध होने लगा, मोह व आयुके सिवाय नौवेंमें लौटा तब ७का बंध होने लगा, आयु सिवाय । ८वेंमें सातका था नीचे उतरके अल्पबंधके समय आठकर्मका बन्ध हुआ । (२) अल्पतरबन्ध-पहले बहुत कर्मप्रकृतिको बांधे फिर कम कमको बांधे । जैसे सातवेंमें ८ कर्मका बंध होता था । यदि ८वें गुणस्थानमें गया तो सातका रह गया । सूक्ष्मसांपरायमें छःका ही बंध रहा, ११वेंमें गया तो एकका ही रहा । (३) अवस्थित-जहां बन्ध समय समय प्रति बराबर कर्मप्रकृतियोंका हो वह अवस्थित है । (गो० क० गाथा ४९३-४६९) ।

अल्प परिग्रह-संतोष पूर्वक व न्यायपूर्वक परिग्रह रखना व ममता अधिक न रखना । इससे मनुष्यायुका बंध होता है (सर्वा० अ० ६ सू० १७) ।

अल्प परिग्रही-थोड़ी ममता रखनेवाला । संतोषपूर्वक थोड़ा परिग्रह रखनेवाला ।

अल्प बहुत्व-एक दूसरेकी अपेक्षा कम व अधिक कहना । जीवादि पदार्थोंके भाषणमें आठ तरहसे विचारना चाहिये । (१) सत्-है या नहीं (२) संख्या-गणना क्या है, (३) क्षेत्र-वर्तमान कालमें निवास, (४) स्पर्श-कहांतक स्पर्शकी शक्ति, (५) काल-मर्यादा, (६) अंतर-एक अवस्थाका होकर फिर उसी अवस्थाको पाना, बीचका काल अंतर है, (७) भाव-पदार्थका स्वरूप या लक्षण (८) अल्प बहुत्व-थोड़े हैं या अधिक हैं (सर्वा० अ० १ सू० ८)

अल्पबहुत्व विधान-सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानमें थोड़ा बहुत विधान यह है कि अन्तर्मुहूर्त जो इसका काल है, उसमें असंख्यातवां भाग कर अधिक इस गुणस्थानके प्रथम समयमें मोहकी गुणश्रेणीका काल है फिर संख्यात गुणा अंतरायाम है फिर उससे संख्यात गुणा मोहका प्रथम स्थितिकांडक आयाम है, उससे संख्यात गुणा इस गुणस्थानके प्रथम समयमें स्थितिसत्व है (ल० गा० ५९२)

अल्प सावद्यकर्मार्य-जिसमें पापबंध हो या आरंभी हिंसा हो ऐसे कर्मोंको सावद्यकर्म कहते हैं वे छः हैं । (१) असि कर्म-शस्त्रादि कर्म । (२) मषि कर्म-आय व्ययादि लिखना । (३) कृषि कर्म-खेतीका विधान । (४) वाणिज्य कर्म-धान्य कपासादिका व्यापार । (५) शिल्प कर्म-लुहार, सुनार, कुम्हारादिके कर्म । (६) विद्या कर्म-चित्राम, गणित, गाना, बजाना आदि । इन छः कर्मोंसे यथायोग्य कम व संतोषपूर्वक वर्तनेवाले देशविरती पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक अल्प सावद्यकर्मार्य हैं । (सर्वा० भा० जयचन्द पृ० ३३१ अ० ३ सू० ३६)

अल्पज्ञ-छद्मस्थ, जो सर्वज्ञ न हो, कमज्ञानी ।

अल्पज्ञान-कम ज्ञान, क्षायोपशमिकज्ञान, अशुद्ध ज्ञान, सर्व ज्ञान न होना ।

अल्पज्ञानी-छद्मस्थ, कम ज्ञानी ।

अल्हण-एक खंडेलवाल मुखिया जिसके पुत्र पापा साधुकी प्रेरणासे पं० आशाधरने वि० सं० १२८५में जिन यज्ञ कल्प ग्रन्थ परमारकुलके मुकुट देवपाल उर्फ साहसमल्ल राजाके राज्यमें नलकच्छपुरमें नेमिनाथ चैत्यालयमें पूर्ण किया । (विद्व० पृ० १०९)

अवक्तव्य-जिसका कथन न होसके । एक पदार्थमें अनेक स्वभाव होते हैं उनका एक साथ कथन नहीं होसक्ता । जैसे वस्तुमें नित्यपना तथा अनित्यपना दोनों हैं, परन्तु शब्दोंमें शक्ति नहीं है कि दोनोंको एक साथ कहा जासके । इसलिये एक अवक्तव्य धर्म भी वस्तुमें है (ज्ञान० श्लो० १६) ।

इस श्रीमतीको बनाकर उसने उसे धो डाला। अभिप्राय यह कि श्रीमती अचल वा गंभीर थी।

> चामीकरमयैर्यन्त्रैर्जलकेलिविधावसौ।
> प्रियामुखाब्जमम्भोभिरसिञ्चत्कोणितेक्षणम् ॥ २३ ॥
> साप्यस्य मुखमासेक्तुं कृतवाञ्छापि नाशकत्।
> स्तनांशुके गलत्याविर्भवद्व्रीडापराङ्मुखी ॥ २४ [पर्व ८]

जलक्रीड़ाके समय वह वज्रजंघकुमार आघातके भयसे नेत्र संकुचित करती हुई प्यारी श्रीमतीके मुखको सोनेकी पिचकारीसे भिगो देता है। इधर श्रीमती भी अपने पतिके मुखपर पिचकारी छोड़ना चाहती है, परंतु नहीं छोड़ सकती है। क्योंकि ज्यों ही वह प्रयत्न करती है, त्यों ही उसके कुचोंपरका वस्त्र नीचे खिसक जाता है और तब लज्जा उसे रोक देती है।

आदिपुराण जिनसेनस्वामीकी सबसे अन्तिम रचना है। यह पार्श्वाभ्युदयसे लगभग ३० वर्ष पीछे और वर्द्धमानपुराणसे लगभग ६० वर्ष पीछे, जब कि कविकी अवस्था९० वर्षसे ऊपर होगी, रचा गया है। इसीसे इसमें जिनसेनस्वामीके सारे जीवनके अध्ययनका और विचारोंका सार संग्रह हो गया है। इसमें कविके कवित्वका परिपाक हुआ दिखलाई देता है। इतनी आयुके रचे हुए ग्रन्थ बहुत कम विद्वानोंके पाये जाते हैं और जो पाये जाते हैं, वे अनुभूत और सिद्ध सिद्धान्तोंके आकर होते हैं। आदिपुराणके स्वाध्यायसे जैनधर्मके गूढ़से गूढ़ रहस्योंका ज्ञान होता है और साथ ही उच्चकोटिके काव्यका सुमधुर सुस्निग्ध आस्वाद मिलता है। मेरे

हुआ-गुरु उसके माता पिता हुए (गृ०ब०अ० ९)

अवतंश-उत्तरकुरुमें एक दिग्गज पर्वतका नाम (त्रि० गा० ६६२)।

अवतंसा-किन्नर जातिके व्यंतर देवोंके इन्द्रकी एक वल्लभिका देवांगनाका नाम (त्रि०गा० २९८)।

अवतंसिका-चक्रवर्तीकी रत्नमालाका नाम (इ० १ पृ० ६०)।

अवधारणा- } अवग्रह धारणा।
अवधारण- } अवग्रह।

अवधि-अवधान, मर्यादा, हद्द, द्रव्य, क्षेत्रकाल, भावकी अपेक्षा किसी मर्यादा तक (सर्वा० अ० १ सू० ९)।

अवधि दर्शन-अवधिज्ञानसे पहले होनेवाला सामान्य अवलोकन (जै०सि०प्र० नं० २१४)।

अवधि दर्शनावरण-वह कर्म प्रकृति जो अवधिदर्शनको न होने दे।

अवधि मरण-मरणका तीसरा भेद-जैसा मरण वर्तमान पर्यायका हो वैसा ही आगामी पर्यायका होना। जो प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश आगामीके लिये वैसा ही बांधे जैसा अब उदय है सो सर्वावधि मरण है व जो एक देश बंध उदय हो वह देशावधि मरण है (भ० पृ० १०)।

अवधि स्थान-अप्रतिष्ठित स्थान, सातवें नरक पृथ्वीका इन्द्रकविल (त्रि० गा० १९९)।

अवधिज्ञान-जो ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा लिये रूपी पदार्थको स्पष्ट व प्रत्यक्ष जाने (जै० सि० प्र० नं० १२)। इस ज्ञानके लिये इंद्रिय तथा मनकी सहायता नहीं लेनी पड़ती है। देव नारकियोंको अवधिज्ञान जन्मसे ही होता है। इसको भव प्रत्यय कहते हैं। यह ज्ञान भरत ऐरावतके तीर्थंकरोंके भी जन्मसे होता है। इसका प्रकाश सर्व आत्म प्रदेशोंमें अवधिज्ञानावरण व वीर्यांतरायके क्षयोपशमसे होता है। यह देशावधि ही है। पर्याप्त मनुष्य व संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्त तिर्यंचोंको सम्यग्दर्शन तथा तपके द्वारा नाभिसे ऊपर किसी अंगमें शंख, चक्र, कमल, वज्र, साथिया, माछला, कलश आदि चिह्नयुक्त आत्म प्रदेशोंमें अवधिज्ञानावरण व वीर्यांतरायके क्षयोपशमसे होता है। वह गुणप्रत्यय या क्षयोपशम निमित्त है। यह देशावधि, परमावधि व सर्वावधि तीनों प्रकारसे होता है। देशावधिका विषय थोड़ा है और यह छूट भी जाता है। परमावधि मध्यम भेदरूप और सर्वावधि एक उत्कृष्ट भेदरूप ही होता है। ये दोनों तद्भव मोक्षगामीके ही होते हैं। देशावधि व परमावधिके कमती बढ़ती द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको जाननेकी अपेक्षा असंख्यात भेद हैं। परन्तु सर्वावधिका एक ही भेद है (श्रा० श्रृ० ६७-६८) यह अवधिज्ञान पुद्गल द्रव्य और उसके द्वारा संसारी आत्माको भी जान सक्ता है। स्वर्गोंके देवोंमें पहले व दूसरे स्वर्गवाले पहले नर्क तक, तीसरे चौथे स्वर्गवाले दूसरे नर्क तक, पांचवेंसे आठवें स्वर्ग तकके देव तीसरे नर्क तक, नौवेंसे १०वें तकके चौथे नर्कतक, १३वेंसे १६वें तकके पांचवें नर्क तक, नौग्रैवेयकवाले छठे नर्क तक, ९ अनुदिश तथा पांच अनुत्तरवाले सातवें नर्क तकका अवधिज्ञान रखते हैं। ऊपरको सब देव अपने विमानोंके ध्वजादण्ड तक जानते हैं। पांच अनुत्तरवाले सर्व त्रसनाड़ीको अवधिसे जानते हैं (त्रि० ५२७)।

अवधिज्ञान ऋद्धि-अवधिज्ञानकी शक्ति।

अवधिज्ञानावरण-वह कार्य जो अवधिज्ञानको रोके।

अवधि ज्ञानी-अवधिज्ञानका स्वामी। चारों गतिवाले होसक्ते हैं।

अवध्यप्रलाप वचन-जिस वचनमें बकवाद ही बकवाद हो, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थका उपदेशक वचन न हो (इ० पृ० १४८)।

अवध्या-विदेह देशमें ३२वीं मुख्य राजधानी (त्रि० गा० ७१२)।

अवनति-भूमिको स्पर्श कर नमस्कार करना। (मू० गा० ६०१)।

आगेके भागमें गन्नेके ऊपरके भाग समान जैसे तैसे रसकी प्राप्ति होगी, ऐसा समझकर मैं उसे प्रारंभ करता हूं। अभिप्राय यह कि वह पूर्वार्धके समान सरस नहीं हो सकेगा। कैसी सुन्दर उपमा है।

अथवाऽग्रं भवेदस्य विरसं नेति निश्चयः।
धर्माग्रं ननु केनापि नादर्शि विरसं क्वचित् ॥ १६ ॥

अथवा ऐसा भी निश्चय होता है कि, इसका अग्रभाग विरस नहीं होगा। क्योंकि धर्मके अन्तको किसीने कभी विरस होते नहीं देखा है—सरस ही होता है और यह धर्मस्वरूप है।

गुरूणामेव माहात्म्यं यदपि स्वादु मद्वचः।
तरूणां हि स्वभावोऽसौ यत्फलं स्वादु जायते ॥ १७ ॥

यदि मेरे वचन सरस वा सुस्वादु हों, तो इसमें मेरे गुरुमहाराजका ही माहात्म्य समझना चाहिये। क्योंकि यह वृक्षोंका ही स्वभाव है—उन्हींकी खूबी है, जो उनके फल मीठे होते हैं।

निर्यान्ति हृदयाद्वाचो हृदि मे गुरवः स्थिताः।
ते तत्र संस्करिष्यन्ते तन्न मेऽत्र परिश्रमः ॥ १८ ॥

हृदयसे वाणीकी उत्पत्ति होती है और हृदयमें मेरे गुरुमहाराज विराजमान हैं, सो वे वहांपर बैठे हुए संस्कार करेंगे ही (रचना करेंगे ही) इसलिये मुझे इस शेष भागके रचनेमें परिश्रम नहीं करना पड़ेगा।

मतिर्मे केवलं सूते कृतिं राज्ञीव तत्सुताम्।
धियस्तां वर्तयिष्यन्ति धात्रीकल्पाः कवीशिनाम् ॥ २२ ॥

पूर्णांक न हो। जैसे २, ३, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १७, १९ इत्यादि।

अवर्ग धारा–देखो शब्द "अकृति धारा" (प्र० जि० पृ० २०)। सर्व अंकोंमें १ से लेकर उत्कृष्ट अनन्तानंत तक वे सर्व अंक जिनका वर्गमूल कोई पूर्ण अंक न हो। जैसे २,३,५,६,७ आदि (त्रि.गा.५९)

अवर्गमातृकाधारा या अवर्गमूलधारा–देखो शब्द "अकृतिमातृकाधारा" (प्र० जि० पृ० २१) १से उत्कृष्ट अनंतानंतकी पूर्ण संख्यामेंसे केवल वे अंक जिनका वर्ग करनेसे केवलज्ञानसे अधिक प्रमाण होजाय। जैसे यदि १६ को केवलज्ञान माना जाय तो इसका वर्गमूल ४ तब ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६ ये सब स्थान अवर्ग मातृकाके हैं। (त्रि० गा० ६३)

अवर्गमूल–यह अंक जिसका वर्ग कोई अंक न हो। अर्थात् केवलज्ञानसे बढ़ जावे।

अवर्णवाद–केवली भगवान, जिनवाणी, जैन संघ, जिन धर्म व चार प्रकार देवोंमें मिथ्या दोष लगाना कि देवता लोग मांस खाते हैं। साधु तो मैले रहते हैं, जिन धर्मसेवी असुर होते हैं इत्यादि। इससे दर्शन मोहनीय कर्मका आस्रव होता है। (सर्वा० अ० ६ सू० १३)

अवर्ता–सुदर्शनके पूर्वविदेह संबंधी पांचवां देश।

अवलम्ब ब्रह्मचारी–जो क्षुल्लक रूप धारण करके आगमका अभ्यास करें। फिर घरमें आकरके रहें। (गृ० अ० १३)

अवसंज्ञादि–(अवसन्नासन्न) अनंतानंत परमाणुओंका समूहरूप स्कन्ध (ह० पृ० १००) देखो शब्द "अंकविद्या" (प्र० जि० पृ० १०४ १०९)

अवसन्न–अपसृत, मार्गसे गिरा हुआ।

अवसन्न मुनि–वह मुनि जो अयोग्य सेवनके कारण मुनिसंघसे बाहर कर दिया जावे। (भग० पृ० ३९६)

अवसन्नासन्न–देखो शब्द "अवसंज्ञादि"।

अवसर्पिणी काल–भरत व ऐरावतका कालका परिवर्तन होता है। जिस १० कोड़ाकोड़ी सागरके कालमें क्रमसे शरीरकी ऊँचाई, आयु, शरीरका बल घटता जावे। इसके छः भेद हैं–(१) सुषमसुषम ४ कोड़ाकोड़ी सागरका। (२) सुषम–३ कोड़ाकोड़ी सागरका। (३) सुषम दुःषम–२ को० को० सागरका। (४) दुःषम सुषम–१ को० को० सागर ४२००० वर्ष कम। (५) दुःषम–२१००० वर्षका। (६) दुःषम दुःषम–२१००० वर्षका। पहले तीन कालोंमें भोगभूमि रहती है। फिर कर्मभूमि रहती है, यह परिवर्तन भरत व ऐरावतके आर्यखण्डमें ही होता है। भरत व ऐरावतमें जो ५ म्लेच्छ खण्ड हैं व मध्यमें विजयार्द्ध है वहां सदा चतुर्थकालके समान कर्मभूमि रहती है। वहां जब आर्यखंडमें पहला आदिकाल चलता है तब वहां चौथे कालकी आदिकी स्थिति रहती है फिर घटती जाती है। जब आर्यखंडमें पांचवां व छठा काल होता है तब वहां चौथे कालकी अंतकी स्थिति होती है। (त्रि० गा० ७७९–८८३–७८०–७८१)।

अवस्था–पर्याय, दशा, हालत।

अवस्थान–ठहरना, धारणा।

अवस्थान इंद्रक–सातवें नर्कका इंद्रक (च० छं० ७१)।

अवस्थित–स्थिर, कायम, जो एकसी दशा चली जावे।

अवस्थित काल–जो काल या जमाना बराबर स्थिर या एकसा वर्ता करे। जम्बूद्वीपके उत्तरकुरु, देवकुरुमें उत्तम भोगभूमि सुषम सुषम कालकी, हरि व रम्यक क्षेत्रोंमें मध्यम भोगभूमि सुषम कालकी, हैमवत और हैरण्यवतमें जघन्य भोगभूमि सुषम दुषम कालकी व विदेहोंमें कर्मभूमि दुषम सुषम कालकी सदा रहती है–दशा अवस्थित है। भरत व ऐरावतके समान परिवर्तनकालकी स्थिति नहीं है। (त्रि० गा० ८८२)

अवस्थित अवधिज्ञान–जो अवधिज्ञान एकसा रहे घटे बढ़े नहीं (गो० गा० ३७२)।

की जा सकती है; तो भी आदिपुराणके शेषभागके समान उसकी कविता भी अच्छी होगी । तंजौरके श्रीयुक्त कुप्पूस्वामी-शास्त्रीने जीवंधरचारित्रको उत्तरपुराणसे जुदा निकालकर छपवाया है, उसे विद्वानोंने वहुत पसन्द किया है, इससे भी उत्तर-पुराणके कवित्वकी उत्तमताका अनुमान होता है। उसमें तेईस तीर्थं-करोंका और उनके तीर्थमें होनेवाले शलाकापुरुषोंका चरित्र है। जितनी संक्षेपतासे यह ग्रन्थ पूर्ण किया गया है, यदि उतनी संक्षे-पतासे नहीं किया जाता, आदिपुराणके समान विस्तारसे रचा जाता तो इससे कई गुना होता । पर जितना है, उतना भी कुछ थोड़ा नहीं है, आठ हजार श्लोकोंमें है।

आत्मानुशासन—यह २७२ पद्योंका छोटासा, परन्तु वहुत ही उत्तम ग्रन्थ है । इसकी रचना कव हुई है? इसके जाननेका कोई साधन नहीं है। क्योंकि इसके अन्तमें सिवा निम्नलिखित श्लोकके जिसमें कि ग्रन्थकर्त्ताका और उसके गुरुका उल्लख है और कुछ भी नहीं लिखा है—

जिनसेनाचार्य्यपादस्मरणाधीनचेतसाम् ।
गुणभद्रभदन्तानां कृतिरात्मानुशासनम् ॥

तो भी ऐसा अनुमान होता है कि, यह महापुराणका शेष भाग पूर्ण करनेके पहिले वनाया गया होगा। क्योंकि इस ग्रन्थकी भाषा-टीकाके प्रारंभमें जो कि स्वर्गीय पं० टोडरमल्लजीकी वनाई हुई है, किसी संस्कृतटीकाके आधारसे लिखा है कि "यह आत्मा-नुशासन गुणभद्रस्वामीने लोकसेन मुनिके सम्वोधनके लिये वनाया

अविद्या-वंशानामा दूसरे नरकका तप्त इन्द्रकका दिशाका एक श्रेणीबद्ध बिल (त्रि० गा० १६०) अज्ञान; मिथ्याज्ञान ।

अविनाभाव सम्बन्ध-जहां २ साधन (हेतु) हो वहां२ साध्यका होना और जहां२ साध्य न हो वहां २ साधनका भी न होना । जैसे जहां २ धूम है वहां २ अग्नि है, जहां अग्नि नहीं है वहां धूम नहीं है (जै० सि० प्र० नं० ३९)।

अविनाशी पद-मोक्ष, निर्वाण ।

अविनीति-पश्चिम गंगवंशका छठा जैन राजा द्वितीय नाम परमेश्वर। यह अपने पहले राजा माधवकी बहनका लड़का, कदम्बवंशीय कृष्णवर्मनका पुत्र था । इसी वंशका बीसवां राजा गंगगांगेय बुटुग हुआ था उसकी स्त्री दिवलम्बाने सन् ९३८ सुंदी ता: रोन जिला धाड़वाड़में एक जैन मंदिर बनवाया था व छः आर्यिकाओंका समाधिमरण कराया था । मंदिरमें शिलालेख सं० में है (ब० स्मा० पृ० १२७-१२८) ।

अविपाकजा-अविपाक निर्जरा-कर्मोंका अपने नियत विपाक समयके पूर्व तप आदि द्वारा व अन्य कारणसे उदयकी आवलीमें लाकर विना फल भोगे या फल भोगकर खिरा देना (सर्वा० अ० ८ सू० २३)।

अविभाग प्रतिच्छेद-शक्तिका अविभागी अंश, गुणका व शक्तिका वह अंश जिसका दूसरा भाग न होसके । (जै० सि० प्र० नं० २८२; कर्मोंकी फलदानशक्ति या अनुभाग होता है उसका अविभागी अंश । असंख्यात लोक प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेदका एक वर्ग होता है । वर्गोंका समूह सो वर्गणा । वर्गणाका समूह सो कर्म स्पर्द्धक (गो० क० का० गा० २२६)।

अविरत-जो अहिंसादि पंच पापका नियमानुसार त्यागी न हो, जो पांच इंद्रिय व मनका वश करनेवाला व त्रस स्थावरकी हिंसाका त्यागी हो ।

अविरत गुणस्थान-
अविरत सम्यक्त-
अविरत सम्यक्त गुणस्थान-
अविरत सम्यग्दृष्टी-
} संसारी जीवोंके १४ गुणस्थान होते हैं उनमेंसे ४ गुणस्थान जिसमें अविरत सम्यक्त होता है । अर्थात् सम्यग्दर्शन तो होता है, परन्तु चारित्र नहीं होता है । जो जीव इंद्रियोंके विषयोंसे विरक्त न हो न त्रस स्थावर हिंसासे विरक्त हो, परन्तु जिनेन्द्रके अनुसार ही तत्त्वोंका श्रद्धान करता है वह चौथा गुणस्थान धारी अविरत सम्यग्दृष्टी है । परन्तु दयाभाव, धर्मप्रेम, संसारसे वैराग्य, आस्तिक्यभाव, शांत परिणाम आदि गुणोंसे युक्त होता है (गो० जी० गा० २९)।

अविरति-हिंसादि पांच पापोंसे न छूटना ।

अविरुद्धानुपलब्धि-देखो शब्द 'अनुपलब्धि'।

अविरुद्धोपलब्धि-जहां साध्यकी विधिमें साधककी प्राप्ति हो । जो विधिकी साधक हो । इसके छः भेद हैं-(१) व्याप्य, (२) कार्य, (३) कारण, (४) पूर्वचर, (५) उत्तरचर, (६) सहचर ।

व्याप्यका उदाहरण-शब्द परिणमनशील है क्योंकि किया हुआ है । यहां किया हुआ पना हेतु व्याप्य है जो परिणामी व्यापकमें मौजूद है । कार्यका उदाहरण-इस प्राणीमें बुद्धि क्योंकि बुद्धिके कार्य वचन आदि पाए जाते हैं यहां बुद्धि साध्य है, वचन कार्य अविरुद्ध उपलब्धि साधन है। कारणका उदाहरण-यहां छाया है क्योंकि छत्र मौजूद है, यहां छायाका साधक छत्र अविरुद्ध कारण प्राप्त है । पूर्वचरका उदाहरण-एक मुहूर्तबाद रोहिणीका उदय होगा क्योंकि कृत्तिकाका उदय हो रहा है । यहां कृत्तिका पूर्वचर हेतु है । उत्तरचरका उदाहरण-एक मुहूर्त पहले ही भरणीका उदय होगया है; क्योंकि कृत्तिकाका उदय होरहा है। यहां कृत्तिका उदय उत्तरचर हेतु है । सहचरका उदाहरण-इस आममें वर्ण है, क्योंकि रस पाया जाता है । यहां वर्णका सहचर हेतु रस है । (परीक्षामुख द्वि० परि० सू० ६९-७०)।

अधिक साफ २ बतला रही है, क्या लाभ है? यदि तू राहुके समान सबका सब काला होता, तो तेरा दोष किसीकी दृष्टिमें तो नहीं आता —तुझे कोई टोकता तो नहीं? ऊंचा पद प्राप्त करके जो नीचताका कार्य करता है, उसको लक्ष्य करके यह अन्योक्ति कही गई है।

लोकाधिपाः क्षितिभुजो भुवि येन जाता—
स्तस्मिन्विधौ सति हि सर्वजनप्रसिद्धे।
शोच्यं तदेव यदमी स्पृहणीयवीर्या—
स्तेषां बुधाश्च बत किंकरतां प्रयान्ति॥ ९५॥

जिस लोकप्रसिद्ध धर्मके सेवनसे राजादि पुरुष लोकके स्वामी होते हैं उसके होते हुए जो बड़े २ पराक्रमी पंडित उन राजाओंके दास बनते हैं, उनकी दशा बड़ी शोचनीय है— उनपर बड़ा तरस आता है। अभिप्राय यह है कि, ये लोग धर्महीका सेवन क्यों नहीं करते हैं? जिसके कि कारण राजादिकोंके सुख प्राप्त होते हैं।

सत्यं वदात्र यदि जन्मनि बन्धुकृत्य—
माप्तं त्वया किमपि बन्धुजनाद्धितार्थम्।
एतावदेव परमस्ति मृतस्य पश्चात्—
संभूय कायमहितं तव भस्मयन्ति॥ ८३॥

हे भाई! यदि तूने अपने बन्धुजनोंसे इस जन्ममें कुछ बन्धुतारूप लाभ उठाया हो तो, सच सच बता दे। हमको तो इनका इतना ही उपकार भासता है कि मरनेके पीछे ये सब इकट्ठे होकर तेरे अपकार करनेवाले शरीरको जला देते हैं।

चिकने हाथ व पात्र तथा कड़छीसे भात आदि दिया जावे। (३) निक्षिप्त–सचित्त पृथ्वी, जल, अग्नि, वनस्पति बीज व त्रस जीवके ऊपर रक्खा हुआ आहार हो, (४) विहित–सचित्त व अप्राशुक वस्तुसे या भारी प्राशुक वस्तुसे ढका हुआ उघाड़ कर दिया जावे, (५) संव्यवहरण–पात्रादिको शीघ्रतासे उठाकर विना देखे भोजन पान दे उसे साधु ले, (६) दायक–दातार योग्य न हो उनसे ले। वे अयोग्य दातार हैं–मद पीनेवाला, रोगी, मुरदा डालकर आया हो, नपुंसक, वस्त्रादि ओढ़े न हो, प्रसूतिका स्त्री, मूत्र आदि करके आया हो, मूर्छित हो, वमन किया हो, लोहू सहित हो, दासी, अर्जिका व रक्त पटिका हो, अंग मर्दन करनेवाली अति भोली, अधिक बुडढी, झूंठे मुह, पांच माससे अधिक गर्भवाली, अंधी, ऊँची जगह बैठकरदे, नीची जगह बैठ करदे, मुँहसे आग जलाती हो, काठको आगमें देती हो, राखसे अग्नि बुझाती हो, गोबरादिसे भीति लीपती हो, स्नान करती हो, दुध पिलाते हुए बालकको छोड़कर आई हो। (७) उन्मिश्र दोष–मट्टी, अप्राशुक जल, पान, फूल, फल आदि हरी, जौ गेहूं द्वीन्द्रियाक त्रस जीव इनसे मिला हुआ आहार, (८) अपरिणत–तिलका, चावलका, चनेका व तुषका व हरड़के चूर्ण आदिका जल व गर्म होके ठंडा जल जिसका स्वाद न बदला हो, (९) लिप्त–अप्राशुक जलसे भीगे हुए हाथ या पात्र या गेरु, हरताल, खड़िया, मैनशिल, चावलका चूर्ण आदिसे व कच्चे शाकसे लिप्त हाथसे भोजन दे, (१०) व्यक्त–बहुत भोजनको थोड़ा करके भोजन करे, छाछ आदिसे झरते हुए हाथसे भोजनको व किसी आहारको छोड़कर दूसरा लेवे (मू० गा० ४६२–४७५)।

अशन शुद्धि–आहार शुद्धि–उद्गम, उत्पादन, अशन, संयोजन, प्रमाण, अंगार, धूम, कारण। इन आठ दोषोंसे रहित भोजन लेना–पिंडशुद्धि भी कहते हैं (मू० गा० ४२१)।

अशनिजव–व्यंतरोंमें महोरग जातिके देव दश प्रकारके होते हैं उनमें सातवां भेद (त्रि.गा.२६१)

अशनिवेग–वानरवंशी राजा किहिकंधके गलेमें जब श्रीमालाने वरमाला डाली तब विजयार्द्ध दक्षिण श्रेणीके रत्नपुरका राजा अशनिवेगका पुत्र विजयसिंह क्रोधित हुआ, श्री मुनिसुव्रतनाथके समयमें (इ० २ पृ० ९७)। (२) विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीका नगर किन्नरोद्गीतपरका राजा अर्चिमाला उसका पुत्र, जिसकी कन्या श्यामा थी जिसको वसुदेवजीने व्याहा था (ह० पृ० २२१)। (३) कृष्णके मित्र विद्याधर राजा जो जरासंघके साथ युद्ध करनेमें कृष्णके मददगार हुए (ह. पृ. ४७१)।

अशय्याराधिनी–एक विद्याका नाम जिसे धरणेन्द्रने श्री रिषभदेवके समयमें नमि विनमि विद्याधरको प्रदान की (ह० पृ० २९६)।

अशरण–जहां कोई रक्षक न हो–शरणविनाका।

अशरण भावना– } बारह भावनाओंमें दूसरी
अशरणानुप्रेक्षा– } भावना। ऐसा बार बार चिंतवन करना कि जन्म, जरा, मरण व तीव्र रोग व कर्मोदयसे कोई बचानेवाला नहीं है। कोई मित्र, स्वामी, पुत्र, सेवक, रक्षक आदि बचा नहीं सके। श्री पंचपरमेष्टीका स्मरण या आत्मध्यान ही एक शरण है (सर्वा० अ० ९ सू० ७)।

अशरीर–शरीर रहित सिद्ध परमात्मा, निकल परमात्मा।

अशीतिक–अंग बाह्य श्रुतका १४ प्रकीर्णक (वृ० द्र० सं० पृ० १६९ गाथा ४२); निषिद्धिका भी कहते हैं।

अशुचि–अपवित्र, (२) व्यंतरोंमें पिशाच जातिके १४ भेद हैं उनमेंसे छठा भेद (त्रि.गा.२७१)

अशुचित्व–अपवित्रता, मलीनता, (२) दो प्रकारकी है–(१) लौकिक अशुचित्व–जिससे लोक व्यवहारमें अशुचिता मानी जावे वह अशुद्धि आठ तरहसे मिटती है; काल, अग्नि, पवन, भस्म, मिट्टी, गोबर, जल, ज्ञान। (२) अलौकिक अशु-

मिलता है। यह सारा काव्य अनुष्टप श्लोकोंमें लिखा गया है। अनुष्टप होकर भी यह गंभीर है। इसकी भाषा पंडित वख्तावरमल रतनलालने वनाई है। यह भाषा मुंशी अमनसिंहजीने छपवाई थी। अनुवादक महाशय संस्कृतके विद्वान नहीं थे, इसलिये अनुवाद जैसा होना चाहिये वैसा नहीं हुआ है और वहुतसी जगह भाव भी लिखनेसे रह गया है।

एक **भावसंग्रह** नामका ग्रन्थ भी गुणभद्राचार्यका वनाया हुआ कहा जाता है, परन्तु अभीतक हमें उसके दर्शन नहीं हुए हैं।

श्रीयुक्त **तात्या नेमिनाथ पांगलने** मराठीके '**विविधज्ञानविस्तार**' नामक मासिकपत्रमें गुणभद्रस्वामीके विषयमें एक दन्तकथाका उल्लेख किया है। यद्यपि ठीक ऐसी ही कथा सुप्रसिद्ध कवि वाणभट्टके विषयमें भी सुनी जाती है और विद्वानोंमें उसका प्रचार भी विशेषतासे है, इससे उसके सत्य होनेमें भी सन्देह है; तो भी हम पाठकोंके जाननेके लिये यहां उसे उद्धृत कर देते हैं:—

"जिस समय जिनसेनस्वामीको ज्ञात हुआ कि, अव मेरा अन्तसमय निकट है और महापुराणको मैं पूरा नहीं कर सकूंगा; तव उन्होंने इस वातकी चिन्ता की कि मेरे शिष्योंमें ऐसा कौन है, जो इस ग्रन्थको योग्यताके साथ पूर्ण कर देगा? और अपने दो

---

१. वाणभट्ट जव अपनी अधूरी कादम्वरीको छोड़कर मृत्युशय्यापर पड़े थे, तव उन्होंने भी अपने दो पुत्रोंसे इसी प्रकार पूछा था और ऐसा ही उत्तर पाया था।

तैजस शरीर सहित आत्मप्रदेशोंका फैलना जो नगरादिको व साधुको भस्म कर देता है।

अशुभ ध्यान–खोटे ध्यान जो संसारके कारण हैं। जिनसे पापकर्म बंधे–आर्तध्यान जिसमें दुःख-रूप परिणाम हों, रौद्रध्यान जिसमें दुष्ट आशय रूप भाव हों अशुभ ध्यान हैं (सर्वा० अ० ९ सू० २८)

अशुभ नामकर्म–नामकर्मकी ९३ प्रकृतियोंमेंसे पापप्रकृतियां देखो "अप्रशस्त अघातिया कर्म"।

अशुभ परिणाम–पाप बंधकारक भाव।

अशुभ पात्र–जिनको धर्मबुद्धिसे दान दिया जाय। वे पात्र हैं जो सम्यग्दर्शन सहित हैं। वे सुपात्र हैं। उनके सिवाय जो सम्यग्दर्शन रहित परन्तु जिनागमके अनुसार गृहस्थ या मुनिका चारित्र पालते हैं व व्यवहार सम्यग्दृष्टी हैं वे कुपात्र हैं। ये अशुभ पात्र हैं तथापि दान देनेयोग्य हैं। जो श्रद्धान व चारित्र दोनोंसे शून्य हैं वे दान देनेयोग्य नहीं। अपात्र हैं ये भी अशुभ पात्र हैं। (श्र० सं० अ० ८ श्लो० १११-११७-११८)।

अशुभ प्रकृति–पाप कर्म या अशुभ कर्म दो २ अशुभ कर्म।

अशुभ भाव–पापकर्मबंधकारक भाव।

अशुभ मनोयोग–मनको परके वधमें, ईर्षामें, द्वेषमें बुराईमें प्रवर्ताना।

अशुभ लेश्या–क्रोध, मान, माया, लोभ कषायोंसे रंगी हुई मन, वचन, काय योगोंकी प्रवृत्ति लेश्या है। उसके छः भेद हैं–कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल। उनमें पहली तीन अशुभ हैं। "लिंपति एतया" इति लेश्या। जिससे जीव पाप तथा पुण्यसे लिंपै वह लेश्या है। इन छः प्रकार लेश्याके भावोंका एक दृष्टान्त है—

एक२ लेश्यावाले छः पथिक फल खानेके इच्छुक वनमें एक फलीभूत वृक्षको देखकर ऐसा चिंतवन करते हैं–कृष्ण लेश्यावाला जड़मूलसे वृक्षको उखाड़ने चाहता है, नील लेश्यावाला जड़को छोड़ पेड़को काटना चाहता है, कापोत लेश्यावाला वृक्षकी बड़ी शाखाओंको छेदना चाहता है, पीत लेश्यावाला फल लगे छोटी शाखाओंको तोड़ना चाहता हैं, पद्मलेश्यावाला मात्र फलोंको तोड़ना चाहता है व शुक्ल लेश्यावाला भूमिपर आपसे गिरे हुए फलोंको खाना चाहता है। कृष्ण लेश्यावाला दया-रहित, मंदवचन बोलनेवाला व वैरको नहीं छोड़नेवाला व सर्वनाश करनेवाला स्वच्छंद, अति विषयलम्पटी, मानी व आलसी होता है। नील-लेश्यावाला अतिनिद्रालु, धनका अतिवांछक व ठगनेवाला होता है। कापोतलेश्यावाला परनिन्दक, शोकी, ईर्षावान, आत्मप्रशंसा वांछक, खुशामद पसंद, कार्य अकार्य विचार रहित होता है। ये तीन अशुभ भाववाले हैं–पीतलेश्यावाला विवेकी दया-दानमें प्रीतिवंत कोमल परिणामी होता है, पद्मलेश्यावाला त्यागी, साधुसेवामें लीन शुभ कार्यमें विशेष विशेष उद्यमी होता है व शुक्ललेश्यावाला वैरागी, समदर्शी, सहनशील व शांत परिणामी होता है (गो० जी० गा० ४८९-४९०, ५०७-५०८ से ५१७ तक)।

अशुभ वचनयोग–, **अशुभ वाग्योग**– } अशुभ कार्योंमें वचनका प्रवर्तना।

अशुभ श्रुत–वह शास्त्र या उपदेश जिसके सुननेसे जीवका अकल्याण हो। राग व द्वेष बढ़े। यह अनर्थदंडका एक भेद है (चा० पृ० ८१७)।

अशुभ श्रोता–

कथा सुननेवाले श्रोता १४ प्रकारके होते हैं—

(१) मिट्टीके समान–सुनते हुए कोमल हों फिर कठोर होजावें। (२) चालनीके समान–जो गुणोंको छोड़कर औगुण लेवें। (३) बकरेके समान–जो काम भावसे चित्त रक्खें। (४) बिल्लीके समान–जो दुष्ट व घातक स्वभाव रक्खें। (५) तोतेके समान–जो स्वयं न समझके जैसा कोई कहे वैसा करें। (६)–बगुलाके समान–जो बाहरसे भद्र परिणामी भीतरमें मलीन। (७) पाषाणके समान–जो कभी नहीं पसीजे। (८)

प्रश्नोत्तररत्नमाला नामकी एक छोटीसी पुस्तक है। उसके अन्तमें जो निम्नलिखित श्लोक है, उससे मालूम होता है कि उन्होंने-विवेकपूर्वक यह समझकर कि संसार सारहीन है, राज्यका त्याग कर दिया था।

विवेकात्त्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका।
रचितामोघवर्षेण सुधियां सदलंङ्कृतिः॥

इस पुस्तकके प्रारंभमें जो निम्न लिखित श्लोक है:—

प्रणिपत्य वर्धमानं प्रश्नोत्तरत्नमालिकां वक्ष्ये।
नागनरामरवन्द्यं देवं देवाधिपं वीरम्॥

इससे यह भी शंका नहीं रहती कि उन्होंने किस धर्मके विवेकसे राज्यका त्याग किया था? इससे स्पष्टतः मालूम होता है कि वे महावीर भगवानके अनुयायी थे और उनके सच्चे उपदेशने उनके चित्तपर इतना प्रभाव डाला था कि वे संसारके झगड़ोंसे मुक्त हो कर धर्मका सेवन करने लगे थे।

प्राचीन लेखों और पुस्तकोंमें अमोघवर्षका उल्लेख तीन नामोंसे मिलता है—अमोघवर्ष, नृपतुंगदेव और शर्वदेव। अपनी उदारता

---

१. प्रश्नोत्तररत्नमालाको अभी तक श्वेताम्बरी भाई विमलदास कविकी बनाई हुई और वैष्णव शंकराचार्यकी बनाई हुई कहते थे, परन्तु ईसाकी ग्यारहवीं सदीमें इसका जो तिब्बती भाषामें अनुवाद हुआ था, उसके प्राप्त होनेसे अब यह बात निश्चित हो गई है कि, यह राष्ट्रकूटवंशी अमोघवर्षकी ही बनाई हुई है। उक्त तिब्बती अनुवादमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि इसे अमोघवर्ष प्रथमने संस्कृतमें बनाई थी।

अश्व–२७वें नक्षत्रका अधिदेवता (त्रि० गा० ४३९)।

अश्वकण्ठ–आगामी कालके भरतके प्रसिद्ध चौथे प्रतिनारायण (त्रि० गा० ८८०)

अश्वकर्ण करण–जैसे घोड़ेका कान मध्यप्रदेशसे आदि पर्यंत क्रमसे घटता होता है उसी तरह जहां चार संज्वलन कषायके अनुभागको घटाते हुए प्रथम अनुभाग कांडकके घातके पीछे क्रोध आदि लोभ पर्यंत कषायका अनुभाग क्रमसे घोड़ेके कानके समान घटता ही चला जाय वह अश्वकर्ण करण है। (क० गा० ४६२)

अश्वक्रांता–कर्मपरमाणुओंकी अनुभाग शक्तिको घटानेकी क्रिया।

अश्वग्रीव–भरतका वर्तमान चौथे कालमें प्रसिद्ध पहिला प्रतिनारायण (त्रि०गा० ८२८); (२) भरतका आगामी ७वां प्रतिनारायण (त्रि०गा० ८८०)

अश्वत्थ–असुरकुमारादि भवनवासियोंके प्रथम चैत्यवृक्षका नाम (त्रि० गा० २१४)।

अश्वत्थामा–द्रोणाचार्यका पुत्र (ह०पृ०४३१)

अश्वधर्मा–राक्षसवंशी विद्याधरोंका एक राजा (इ० २ पृ० ९२)

अश्व ध्वज–राक्षसवंशी विद्याधरोंका एक राजा (इ० २ पृ० ९८)

अश्वपुरी–विदेहक्षेत्रकी एक राजधानी (त्रि० गा० ७१४)।

अश्वराज–(आपकरण) आबूके प्रसिद्ध जैन मंदिर बनवानेवले वस्तुपाल तेजपालके पिता (शिक्षा पृ० ६७१)।

अश्वसेन–(१) श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकरके पिता, बनारसके राजा (२) वसुदेवकी स्त्री अश्वसेनाके पुत्र (ह० पृ० ४५७)।

अश्वसेना–वसुदेवकी स्त्री (ह० पृ० ४५७)।

अश्व स्थान–१२वां ग्रह (त्रि० गा० ३६४)।

अश्वाम–राक्षसवंशी एक विद्याधर राजा (इ० २ पृ० ९२)

अश्विनी–द्रोणाचार्यकी स्त्री (ह०पृ० ४३१)।

अष्ट अगद ऋद्धि–आठ औषधि ऋद्धि–तपके बलसे साधुओंको विशेष शक्ति उत्पन्न होजाती है। आठ भेद हैं (१) आमर्श–असाध्य भी रोग मुनिके पाद आदि स्पर्शसे दूर हो (२) क्ष्वेल–साधुका थूक ही लग जाय तो रोग मिट जाय (३) जल्ल–साधुका पसीना लगनेसे रोग मिटे (४) मल–नाक कान नेत्र दांतके मलसे ही रोग दूर हो, (५) विट्–मल मूत्रके लगनेसे रोग मिटे, (६) सर्वौषधि–मुनिके अंगसे स्पर्शी पवनसे रोग मिटे, (७) आस्याविष–तीव्र जहरका अपहार जिनके मुखमें जानेसे विपरहित हो, (८) दृष्ट्यविष–जिनके देखने मात्र करि तीव्र जहर दूर होजावे। (सर्वा० जय० सूत्र ३६ अ० ३)।

अष्ट अनुयोग–पुलाकादि पांच तरहके मुनियोंका विचार आठ रीतियोंसे साधना होता है। (१) संयम–सामायिकादि चारित्रमें कितना पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ, स्नातकके संभव है। (२) श्रुत–शास्त्रका ज्ञान कितना२ संभव है। (३) प्रतिसेवना–उपकरण व शिष्यादिमें राग है व नहीं। (४) तीर्थ–तीर्थंकर है या सामान्य केवली है। (५) लिंग–भेष क्या है? (६) लेश्या–भावलेश्या क्या२ संभव है? (७) उपपाद–शरीर छोड़नेपर कौन कितने स्वर्गतक जाता है। (८) स्थान–संयमके स्थान कितने संभव हैं (सर्वा० अ० ९ सू० ४७)

अष्ट अंग–शरीरके (देखो प्र० जि० पृ० ८० नोट नं० १), (२) अष्ट अंग सम्यग्दर्शनके–(१) निःशंकित–शंका या भय न करना। (२) निःकांक्षित–भोगोंकी इच्छा न करना। (३) निर्विचिकित्सित–घृणा न करना। (४) अमूढ़ दृष्टि–मूढ़तासे कोई धर्म न सेवना। (५) उपगूहन–अपने गुण बढ़ाना (६) स्थितिकरण–धर्ममें स्थिर करना। (७) वात्सल्य–धर्मात्माओंमें प्रेम करना। (८) प्रभावना–धर्मकी महिमा प्रगट करनी। (३) आठ अंग सम्यग्ज्ञानके (१) शब्दशुद्धि, (२) अर्थ-

गुजरातमें जो सोलंकी (चालुक्य) राज्यका शाखाराज्य स्थापित हुआ था, वह भी राठौरोंके हाथमें आ गया था। इस तरह ये दोनों राज्य भी राठौर राज्यके अन्तर्गत हो गये थे और दन्तिदुर्गसे लेकर खोट्टिगदेवके राज्यकाल तक (शक संवत् ८९४ तक) राठौर वंशके ही अधिकारमें रहे थे। शक संवत् ८९४ में मालवाके परमार राजा श्रीहर्षने राठौरोंपर विजय प्राप्त की थी और मान्यखेटनगरीको लूटी थी और उसी समय खोट्टिगदेवका देहान्त हुआ था। खोट्टिगदेव अमोघवर्ष प्रथमके प्रपौत्रका[1] पुत्र था। इसीके समय राठौरोंकी राज्यलक्ष्मी प्रभाहीन हुई।

अमोघवर्ष प्रथमके समय राष्ट्रकूटवंशकी स्वतंत्र राज्यलक्ष्मी उन्नतिके शिखरपर विराजमान थी, और अन्य राजाओंकी लक्ष्मीका परिहास करती थी। निम्नलिखित श्लोकोंसे मालूम होता है कि अमोघवर्ष बड़े भारी प्रतापी वीर थे, बली थे, सोलंकी राजाओंके लिये वे प्रलयकालकी अग्निके समान थे, अन्य शत्रुओंकी स्त्रियोंको वैधव्यकी दीक्षा देनेवाले थे, उनकी सेना इतनी अधिक थी कि उसके भारसे शेषनाग दबा जाता था। उन्होंने वेंगीमें किसी चालुक्यराजाको मार करके उसके अपूर्व सुस्वादु खाद्यसे यमराजको सन्तुष्ट किया था। शत्रुओंको उनके मारे कहीं भी ठहरनेका अवकाश नहीं मिलता था, उनका निर्मल यश सब ओर फैल रहा था, और उनकी राजधानीका

१. अमोघवर्षका पुत्र अकालवर्ष उसका जगत्तुंग (दूसरा) और उसका अमोघवर्ष द्वितीय। इस अमोघवर्षके तीन पुत्र थे—१ कृष्ण, २ निरुपम और ३ खोट्टिगदेव।

फल बताना)। (१६) प्रज्ञाश्रमणत्व-विशेष बुद्धिकी प्रगटता, द्वादशांग विना पढ़े भी सूक्ष्म तत्वको जान लेना। (१७) प्रत्येक बुद्धता-परके उपदेश विना ही ज्ञान व संयमकी दृढ़ता। (१८) वादित्व-वादमें उन्हें कोई जीत न सके (भग० पृ० ५१७-५२१)

अष्टादश मिश्रभाव-देखो 'अष्टादश क्षयोपशमिक भाव'।

अष्टादशलिपि-१ ब्राह्मी, २ यवनानी, ३ दशोत्तरिका, ४ खरोष्ट्रिका, ५ पुष्करसारिका, ६ पार्वतिका, ७ उत्तरकुरुका, ८ अक्षर पुस्तिका, ९ भौमवद्दिका, १० विक्षेपिका, ११ निक्षेपिका, १२ अंक, १३ गणित, १४ गंधर्व, १५ आदर्शक, १६ माहेश्वर, १७ द्राविड़ी, १८ बोलिंदी लिपि (पन्नवना सूत्र चौथा उपांग-विश्वकोष पृष्ठ ६०)।

अष्टादशश्रेणी-एक राजा १८ श्रेणियोंका स्वामी होता है-(१) सेनापति, (२) गणकपति-ज्योतिषी, (३) वणिकपति, (४) दण्डपति, (५) मंत्री, (६) महत्ता-कुलमें बड़ा, (७) तलवर-कोतवाल, (८) से (११) चार वर्ण क्षत्रियादि, (१२) से (१५) चार प्रकार सेना-हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे, (१६) पुरोहित, (१७) अमात्य-देश अधिकारी, (१८) महा अमात्य-सर्व राज्य कार्य अधिकारी (त्रि.गा. ६८३)

अष्टादशसहस्र मैथुन भेद-देखो (प्र० जि० पृ० २४७)।

अष्टादशसहस्र ब्रह्मचर्य दोष-देखो ऊपरका शब्द।

अष्टादशसहस्र शील-देखो (प्र० जि० पृ० २४९)।

अष्टादशसहस्र शीलांगकोष्टक-,, पृ० २५०

अष्टाह्निका यज्ञ, मह, पूजा-देखो "अठाईपूजा" (प्र० जि० पृ० २३३)।

अष्टाह्निका कथा-देखो अठाईव्रत कथा (प्र० जि० पृ० २३९)।

अष्टाह्निका पर्व-देखो "अठाईपर्व" (प्र० जि० पृ० २३३)।

अष्टाह्निका व्रत-देखो अठाईव्रत (प्र० जि० पृ० २३६)।

अष्टाह्निका व्रतोद्यापन-देखो अठाईव्रत उद्यापन (प्र० जि० पृ० २३९)।

अष्टाह्निका सर्वतोभद्रचतुर्मुख पूजा-मुकुटबद्ध राजा लोग चार दरवाजेका मंडप बनाकर बीचमें चार प्रतिमा विराजमानकर जो अष्टाह्निकाकी पूजा करते हैं (सा० अ० २ श्लो० २७)।

अष्टापद-कैलाश पर्वत जहांसे ऋषभदेव मोक्ष गए।

अष्टाविंशति इन्द्रिय विजय-इंद्रिय संयममें पांच इंद्रिय व मनके २८ विषय रोकने चाहिये। स्पर्शनके ८, रसनाके ५, घ्राणके २, चक्षुके ५, कर्णके गानके षड्ज आदि सात स्वर। (मू० गा० ४१८) मनकी संकल्प विकल्प। प्र० जि० पृ० २२२)।

अष्टाविंशति नक्षत्र-देखो "अट्ठाईस नक्षत्र" (प्र० जि० पृ० २२२)।

अष्टाविंशतिप्ररूपणा-देखो अट्ठाईस प्ररूपणा (प्र० जि० पृ० २२३)।

अष्टाविंशतिभाव-देखो "अट्ठाईस भाव" (प्र० जि० पृ० २२४)।

अष्टाविंशति मतिज्ञान भेद-देखो अट्ठाईस मतिज्ञान भेद (प्र० जि० पृ० २२५)।

अष्टाविंशति मूलगुण-देखो अट्ठाईस मूलगुण (प्र० जि० पृ० २२६)।

अष्टाविंशति मोहनीय कर्म-देखो अट्ठाईस मोहनीय कर्म (प्र० जि० पृ० २२७)।

अष्टाविंशति विषय-देखो अट्ठाईस इन्द्रिय विषय (प्र० जि० पृ० २२२)।

अष्टाविंशति श्रेणीबद्ध गुफर बिल-देखो अट्ठाईस श्रेणीबद्ध बिल पृ० २२८ प्र० जि०।

अमोघवर्ष जैसे वीर तथा उदार थे, उसी प्रकारसे विद्वान् भी थे। उन्होंने संस्कृत और कानड़ी भाषामें अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है, जिसमेंसे एक **प्रश्नोत्तररत्नमालाका** उल्लेख तो ऊपर हो चुका है—जो छप चुकी है, दूसरा प्राप्य ग्रन्थ **कवि—राजमार्ग** है। यह अलंकारका ग्रन्थ है, और कानड़ी भाषाके उत्कृष्ट ग्रन्थोंमें गिना जाता है। इनके सिवाय और भी कई ग्रन्थ अमोघवर्षके सुने जाते हैं, परन्तु वे अप्राप्य हैं।

इतिहासज्ञोंने अमोघवर्षका राज्यकाल शक संवत् ७३६ से ७९९ तक निश्चय किया है। **जिनसेनस्वामीका** स्वर्गवास शक संवत् ७६५ के लगभग निश्चित किया जा चुका है। इससे समझना चाहिये कि जिनसेनके शरीरत्यागके समय अमोघवर्ष महाराज राज्य ही करते थे। राज्यका त्याग उन्होंने शक संवत् ८०० में किया है जब कि आचार्यपदपर **गुणभद्र**स्वामी विराजमान थे। यह बात अभी विवादापन्न ही है कि अमोघवर्षने राज्यको छोड़कर मुनिदीक्षा ले ली थी या केवल उदासीनता धारण करके श्रावककी कोई उत्कृष्ट प्रतिमाका चारित्र ग्रहण कर लिया था। हमारी समझमें यदि उन्होंने मुनिदीक्षा ली होती, तो प्रश्नोत्तररत्नमालामें वे अपना नाम 'अमोघवर्ष' न लिखकर मुनि अवस्थामें धारण किया हुआ नाम लिखते। इसके सिवाय राज्यका त्याग करनेके समय उनकी अवस्था लगभग ८० वर्षकी थी, इसलिये भी उनका कठिन मुनिलिंग धारण करना संभव प्रतीत नहीं होता है।

असत्यकाय योग—असत्यके अभिप्राय सहित कायसे चेष्टा करना।

असत्य त्याग—असत्य मन वचन कायकी प्रवृत्तिका त्याग।

असत्य मनोयोग—मनमें असत्य विचार करना तब आत्म प्रदेशका सकंप होना।

असत्य वचन—अप्रशस्त व अशुभ वचन कहना।

असत्य वचनयोग—असत्य वचन द्वारा आत्मप्रदेशका सकंप होना।

असत्यानन्द रौद्रध्यान—असत्य कहने कहलानेमें व असत्यकी अनुमोदना करनेमें दुष्टभाव रखना।

असत्य अव्रत—असत्यका त्याग न करना।

असत्यासत्य—बहुत असत्य। जो अपना पदार्थ नहीं है उसके लिये प्रतिज्ञा करना कि कल तुझे दूंगा (सागा० अ० ४ श्लोक ४३)।

असद्भाव स्थापना—अतदाकार स्थापना, जिस वस्तुमें ठीक आकार न झलके उसमें किसीकी स्थापना करना। जैसे सतरञ्जकी गोटोंमें हाथी, घोड़ेकी स्थापना।

असद्भाव स्थापना पूजा—पूजा करते हुए कमलगट्टा, अक्षत, मिट्टीके पिंड आदिमें किसी अरहंत व सिद्ध आदिकी स्थापना करके पूजा करनी। ऐसी पूजा वर्तमान हुंडावसर्पिणी कालमें मना है (ध० सं० अ० ९ श्लोक ९०)।

असद्भूत व्यवहारनय—जो मिले हुए पदार्थोंको अभेदरूप ग्रहण करे जैसे यह शरीर मेरा है अथवा मिट्टीके घड़ेको घीका घड़ा कहना (जै० सि० प्र० नं० १०२)।

असद्वेद्य—असाता वेदनीय कर्म जिसके फलसे असाता मालूम होनेका निमित्त प्राप्त होजाता है।

असपत्न ज्ञान—जो ज्ञान केवलज्ञान होने तक छूटे नहीं। जैसे विपुलमति मनःपर्ययज्ञान।

असमर्थ कारण—एक कार्यके लिये भिन्न२ प्रत्येक सामग्रीको असमर्थ कारण कहते हैं। यह कार्यका नियामक नहीं है (जै० सि० प्र० नं० ४०९)।

असमर्थ पक्ष—जो स्वयं असमर्थ है वह कार्यको नहीं कर सक्ता। चाहे जितने कारण मिलो (परी० ६९–६)।

असमान परिणमन—जिस परिणमन या पर्याय पलटनमें वस्तु एक आकारको छोड़कर दूसरे आकारको धारण करले। जैसे सोनेके कड़ेसे अंगूठी बन जाना, मनुष्यका बालकसे युवान होना (पु० २१९१)

असमान परिणमनशील पर्याय—जो अवस्था असमान परिणमनसे हो, जैसे मनुष्यका देव होजाना।

असमीक्ष्याधिकरण अतीचार—अनर्थदण्डका चौथा अतीचार। विना विचार किये प्रयोजनसे अधिक कार्य करना (सा० अ० ५ श्लो० १२)।

असंप्राप्तासृपाटिका संहनन—जिस नामकर्मके उदयसे जुदे२ हाड़ नसोंसे बंधे हुए हों, परस्पर कीले न हों (जै० सि० प्र० नं० २९७)।

असंभव दोष—लक्ष्यमें लक्षणकी असंभवता अर्थात किसी भी तरह संभव न होना (जै० सि० प्र० नं० १२)।

असंभ्रांत—पहले नर्कका सातवां पाथड़ा (इ० ए० ३४)।

असंयत—संयमका न होना।

असंयत गुणस्थान—वे जीवोंके भावोंके दरजे जहां संयम संभव नहीं है, ऐसे पहले ४ गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और अविरत सम्यग्दर्शन।

असंयत सम्यग्दृष्टि—चौथा गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टी जीव जो संयमका नियम नहीं पाल रहा है।

असंयम—संयमका न होना—संयम दो प्रकारका है। इंद्रिय संयम—पांच इंद्रिय व मनको वश रखना, प्राणि संयम—पृथ्वी आदि छः कायोंके जीवोंकी रक्षा करना।

असंयमवर्द्धिनीक्रिया—वे क्रियाएं या आचरण जिनसे असंयम बढ़े, इंद्रियें चंचल हों व हद्दाकी वृद्धि हो।

असंयमी—संयमको न पालनेवाला।

राजा था। तृतीय कृष्णराजके दानपत्रमें जो कि वर्धा नगरके समीप-एक कुएमें प्राप्त हुआ है—इसकी इस प्रकार प्रशंसा लिखी है—

तस्योत्तर्जितगूर्जरो हृतहटल्लासोद्भटश्रीमदो
गौडानां विनयव्रतार्पणगुरुः सामुद्रनिद्राहरः।
द्वारस्थाङ्गकलिङ्गगाङ्गमगधैरभ्यर्चिताज्ञश्चिरं
सूनुः सूनृतवाग्भुवः परिवृढः श्रीकृष्णराजोऽभवत् ॥

इसका अभिप्राय यह है कि उस अमोघवर्षका पुत्र श्रीकृष्ण-राज हुआ जिसने गुर्जर, गौड, द्वारसमुद्र, अंग, कालिंग, गंग, मगध आदि देशोंके राजाओंको अपने वशवर्ती वा आज्ञानुवर्ती किये थे। गुणभद्रस्वामीने भी उत्तरपुराणके अन्तमें इस राजाकी बहुत प्रशंसा की है। दो श्लोक यहां उद्धृत किये जाते हैं—

यस्योत्तुंगमतंगजा निजमदस्रोतस्विनीसंगमा-
द्गाङ्गं वारि कलङ्कितं कटु मुहुः पीत्वाप्यगच्छत्तृषः।
कौमारं घनचन्दनं वनमपां पत्युस्तरंगानिलै-
र्मन्दान्दोलित (?) भास्करकरच्छायं समाशिश्रियन् ॥ २६ ॥
दुग्धाब्धौ गिरिणा हरौ हतसुखागोपीकुचोद्घट्टनैः
पद्मे भानुकरैर्भिदेलिमदले वासायसंकोचने।
यस्योरः शरणे प्रथीयसि भुजस्तम्भान्तरोत्तम्भित-
स्थेये हारकलापतोरणगुणे श्रीः सौख्यमागाच्चिरम् ॥ २७ ॥

यह नहीं कहा जा सकता है कि अमोघवर्षके समान अकाल-वर्ष भी जैनधर्मका श्रद्धालु था या नहीं। क्योंकि इस विषयका हमें अभी तक कोई उल्लेख नहीं मिला है। पर उसका सामन्त

असुर संगीत—वह नगर जिसका राजा मय था जिसकी पुत्री मंदोदरीका विवाह रावणसे हुआ (इति० २ पृ० ६३)।

असैनी जीव—मन रहित जीव। देखो शब्द 'असंज्ञी'।

असैनी पंचेन्द्रिय—वे पंचेन्द्रिय जीव जिनके मन नहीं होता है जैसे कोई२ जातिके पानीके सर्प आदि।

असंक्षेपाद्धा—आयु कर्मकी आबाधाका जघन्य काल—आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण। कोई जीव परभवके लिये आयु अपनी भोगे जानेवाली आयुमें कमसे कम इतना काल शेष रहनेपर बांधता है। (गो० क० गा० १५८)।

असंग महाव्रत—परिग्रह त्याग महाव्रत—मुनि १४ प्रकार अंतरंग व १० प्रकार बाहरी परिग्रहका त्याग कर देते हैं (मू० गा० ९)।

अस्ति—किसी वस्तुका होना। हरएक पदार्थ अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा अस्तिरूप है, सत् है या भाव रूप है। जैसे घड़ा अपने घड़ेपनेकी अपेक्षा है तब हम कहते हैं—स्यात घटः अस्ति अर्थात् किसी अपेक्षासे अर्थात अपने घटपनेकी अपेक्षासे घट है या घटकी मौजूदगी है।

अस्ति अवक्तव्य—हरएक पदार्थ एक ही समयमें अस्तिरूप है। अपने द्रव्यादिकी अपेक्षासे तथा तब ही वह नास्ति रूप है पर द्रव्यादिकी अपेक्षासे अर्थात् घड़ेमें घड़े पनेका अस्तित्व है या होना या भाव है परन्तु उस घड़ेके सिवाय अन्य सर्व पदार्थोंका उस घड़ेमें अभाव है या नास्ति है। इस तरह अस्ति व नास्ति या भाव या अभाव दोनों स्वभाव एक ही समयमें है तथापि एक साथ वचनसे कहे नहीं जासके इसलिये अवक्तव्य है। अवक्तव्य होनेपर भी अपने द्रव्यादिकी अपेक्षा अस्तिपना अवश्य है इस बातको अस्ति अवक्तव्य झलकाता है।

अस्तिकाय—जो बहुप्रदेशी द्रव्य है उनको अस्तिकाय कहते हैं—जैसे जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाश। काल अस्तिकाय नहीं है क्योंकि कालाणु आकाशके एक२ प्रदेशमें अलग २ रत्नकी राशिके समान रहते हैं वे कभी मिलते नहीं। जितनी आकाशकी जगहको एक अविभागी पुद्गल परमाणु घेरता है उसको प्रदेश कहते हैं, काल सिवाय पांच द्रव्योंके बहुप्रदेश होते हैं इसलिये वे अस्तिकाय हैं।

अस्ति नास्ति—द्रव्यमें अपने द्रव्यादिकी अपेक्षा अस्तिपना है व परकी अपेक्षा नास्तिपना है। दोनोंको कहना अस्ति नास्ति है। देखो अस्ति अवक्तव्य।

अस्ति नास्ति अवक्तव्य—द्रव्यमें अस्ति व नास्ति दोनों एक कालमें हैं परन्तु एक साथ कहे नहीं जासके इसलिये द्रव्य अवक्तव्य है तथापि अपनी अपेक्षा अस्ति व परकी अपेक्षा नास्तिरूप है। पदार्थोंमें दो विरोधी स्वभावोंको समझानेकी सात रीतियां या भंग हैं। जैसे घटमें अपनी अपेक्षा अस्ति स्वभाव है, परकी अपेक्षा नास्ति स्वभाव है तब इनको सात तरहसे कहेंगे—

१—स्यात अस्ति घटः—अपनी अपेक्षासे घट है।

२—स्यात नास्ति घटः—परकी अपेक्षासे घट नहीं है। अर्थात घटमें और सब अन्यका अभाव है।

३—स्यात अस्तिनास्ति घटः—किसी अपेक्षासे घटमें अस्ति व नास्ति दोनों स्वभाव हैं।

४—स्यात अवक्तव्यं—यद्यपि घटमें एक साथ दोनों स्वभाव हैं। तथापि एक साथ वचनसे कहे नहीं जासके।

५—स्यात अस्ति अवक्तव्यं च—किसी अपेक्षासे यद्यपि घट अवक्तव्य है तथापि अपनी अपेक्षा है जरूर।

६—स्यात नास्ति अवक्तव्यं च—किसी अपेक्षा यद्यपि घट अवक्तव्य है। तथापि परकी अपेक्षा नास्ति है जरूर।

७—स्यात अस्ति नास्ति अवक्तव्यं च—किसी अपेक्षा यद्यपि घट अवक्तव्य है, तथापि अस्ति व नास्ति दोनों स्वभाव हैं जरूर।

पूर्वके कवि वा आचार्य ।

जिनसेनस्वामीने आदिपुराण व महापुराणकी भूमिकामें जिन बहुतसे कवियों तथा आचार्योंका स्मरण किया है, यहां हम उनका उल्लेख कर देना भी ऐतिहासिक दृष्टिसे उपयोगी समझते हैं;—

१. **सिद्धसेनकवि**—इन्हें 'प्रवादिकरिकेसरी' विशेषण दिया है, जिससे मालूम होता है कि ये बड़े भारी नैयायिक व तार्किक विद्वान् होंगे। कई लोगोंका अनुमान है कि, ये प्रसिद्ध श्वेताम्बर तार्किक '**सिद्धसेनदिवाकर**' ही होंगे, जिन्होंने अनेक न्यायग्रन्थोंकी रचना की है।

२. **समन्तभद्र**—इनकी कवियोंके, वादियोंके, गमकोंके और वाग्मीजनोंके शिरोमणि कहकर स्तुति की है। गन्धहस्तिमहाभाष्य, रत्नकरंड-श्रावकाचार और देवागम आदि ग्रन्थोंके कर्त्ता यही गिने जाते हैं। न्यायशास्त्रके ये अद्वितीय विद्वान् हुए हैं।

३. **श्रीदत्त**—इन्हें बड़े भारी तपस्वी और वादिरूपीसिंहोंके भेदन करनेवाले बतलाये हैं।

४. **यशोभद्र**—इनके विषयमें कहा है कि, विद्वानोंकी सभामें इनका नाम सुनते ही वादियोंका गर्व गलित हो जाता था।

५. **प्रभाचन्द्रकवि**—जिन्होंने चन्द्रोदय (न्यायकुमुदचन्द्रोदय) करके जगतको आल्हादित किया। प्रमेयकमलमार्तंडके कर्त्ता भी ये ही समझे जाते हैं।

६. **शिवकोटिमुनीश्वर**—जिसके आराधनाचतुष्टय (भगवती आराधना) का आराधन करके यह संसार शीतीभूत वा शान्त हो गया।

तेन्द्रियके सात प्राण होते हैं—एक घ्राण इंद्रिय बढ़ जाती है। चौन्द्रियोंके आठ प्राण होते हैं—एक आंख इंद्रिय बढ़ जाती है। मन रहित पंचेन्द्रियोंके नौ प्राण होते हैं—एक कर्ण इंद्रिय बढ़ जाती है। मन सहित पंचेन्द्रियोंके दश प्राण होते हैं—मन बल बढ़ जाता है। जितने अधिक प्राण होंगे व जितने बलवान प्राण होंगे उनके घातमें कषाय भाव भी वैसा ही प्रायः अधिक होता है। इससे अधिक प्राणोंके अधिक बलवान प्राणोंके घातमें अधिक हानि होनेसे अधिक हिंसा है। कम प्राणोंके व कम मूल्यवान प्राणोंके घातमें कम हानि होनेसे कम हिंसा है (पुरु० श्लोक ४२-९०)।

अहिंसा व्रतोपवास—चौदह जीव समासमें संसारी जीव विभक्त हैं। सूक्ष्म एकेंद्रिय, बादर एकेंद्रिय, द्वेंद्रिय, तेंद्रिय, चौंद्रिय, असैनी पंचेंद्रिय, सैनी पंचेंद्रिय। ये सात पर्याप्त और सात अपर्याप्त इन १४ जीव समासोंकी नौ तरहसे हिंसा न करना अर्थात मन, वचन, कायसे करना नहीं, कराना नहीं, अनुमोदना करना नहीं। इस तरह १४×९= १२६ भेद होते हैं इसलिये इस अहिंसाव्रतके १२६ उपवास व १२६ पारणा करना चाहिये। अर्थात् लगातार २९२ दिनमें इस व्रतको पूर्ण करना चाहिये (ह० पु० ३९५-३९६)।

अहिंसा अणुव्रत—अहिंसा व्रतको पूर्णपने गृह त्यागी महाव्रती आरम्भ परिग्रह रहित साधु ही पाल सक्ते हैं। गृहस्थ श्रावक यथाशक्ति पाल सक्ता है, इसलिये उसके अणुव्रत कहलाता है। गृहस्थ श्रावक संकल्प करके या इरादा करके द्वेंद्रियादि त्रस जन्तुओंकी हिंसाका त्यागी होता है। यदि कोई (१००) रु० भी दे और कहे कि एक चींटीको मार डालो तो ऐसी हिंसा नहीं करेगा। स्थावर जल वृक्षादिकी हिंसाको उसे नित्य खानपानादिके हेतु करना पड़ता है। उसमें भी कम हिंसा करता है, वृथा स्थावरोंको भी नहीं सताता है। वृथा पानी फेंकता नहीं वृक्ष काटता नहीं, भूमि खोदता नहीं, आरंभी त्रस हिंसाका त्यागी वह नियमसे सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमातक नहीं होसकता है, आठमी आरंभत्याग प्रतिमासे आरंभी त्रस हिंसाका त्यागी होजाता है। गृहस्थको तीन तरहसे आरंभी हिंसा करनी पड़ जाती है-(१) उद्यममें—असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य, विद्या द्वारा आजीविका करनेमें हिंसा करना न चाहते हुए भी हिंसा होजाती है, (२) गृहारंभमें—मकान, वापी, बागीचा लगाने व खानपानका प्रबंध करनेमें, (३) विरोधमें—यदि कोई चोर, डाकू, शत्रु अपनी सम्पत्ति, देश व अपनेपर आक्रमण करें तो गृहस्थ उनसे अपनी रक्षा करेगा। यदि शस्त्रसे उनको प्रहार करना पड़ेगा तौभी वह करके रक्षा करेगा। इस तरहकी आरंभी हिंसाका त्यागी साधारण गृहस्थ नहीं होसक्ता। (गृ० स० ८)।

अहिंसा भावना—अहिंसाव्रतके पालनेके लिये पांच भावनाएँ होती हैं—(१) वचनगुप्ति—वचनकी सम्हाल, (२) मनोगुप्ति—मनको हिंसात्मक भावोंसे बचाना, (३) ईर्या समिति—चार हाथ जमीन आगे देखकर चलना, (४) आदाननिक्षेपण समिति—कोई वस्तु देखभालकर रखना, उठाना, (५) आलोकित पान भोजन—खानपान देखभाल कर करना (सर्वा० अ० ७ सू० ४)।

अहिंसा परमो धर्मः यतो धर्मस्ततो जयः—जैनियोंमें इन शब्दोंका बहुत प्रचार है। रथोत्सवमें ऐसे शब्दोंके तोरण बनवाकर निकालते हैं, इनका अर्थ यह है—अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है, जितना यह धर्म होगा उतनी ही आत्माकी जय होगी।

अहिंसा दिग्दर्शन—एक पुस्तक हिंदीमें जिसे श्वेतांबर जैनाचार्य विजयधर्मसूरिने रचा है।

अहीन्द्र वर—(द्वीप, समुद्र) अंतके स्वयंभूरमण समुद्र व द्वीपसे पहला द्वीप व समुद्र (त्रि.गा.३०६)

अहेर—शिकार।

अहोरात्रि—दिनरात।

अज्ञान भाव—बिना जाने व बिना इरादेके कोई काम होजाना।

पण्डितप्रवर आशाधर।

“ आशाधरो विजयतां कलिकालिदासः ”

इस ऋषितुल्य विद्वान्का नाम **आशाधर** था। आशाधरके पिताका नाम **सल्लक्षण** [**सलखण**] और माताका नाम **श्रीरत्नी** था। जैनियोंकी ८४ जातियोंमें **बघेरवाल** नामकी एक जाति है। हमारे चरित्रनायकने इसी बघेरवाल जातिका मुख उज्ज्वल किया था। **सपादलक्ष** देशमें **मंडलकर** नामका एक नगर है। पंडित आशाधरका जन्म उसी मंडलकर नगरमें हुआ था[1]।

सपादलक्ष देशको भाषामें **सवालख** कहते हैं। नागौरके निकटका प्रदेश सवालखके नामसे प्रसिद्ध है। इस देशमें पहले **चाहमान** (चौहान) राजाओंका राज्य था। फिर सांभर और अजमेरके चौहान राजाओंका सारा देश सपादलक्ष कहलाने लगा था और उसके सम्बन्धसे चौहान राजाओंके लिये “ सपादलक्षीय नृपति-भूपति” आदि शब्द लिखे जाने लगे थे[2]।

आशाधरके समयमें सपादलक्ष देशमें **सांभरका** राज्य भी शामिल था, यह उनके दिये हुए “ शाकंभरीभूषण ” विशेषणसे स्पष्ट होता है। **शाकंभरी** झील जिसमें कि नमक पैदा होता है और जिसे

१—श्रीमानास्ति सपादलक्षविषयः शाकंभरीभूषण—
स्तत्र श्रीरतिधाममण्डलकरं नामास्ति दुर्गं महत्।
श्रीरत्न्यामुदपादि तत्र विमलव्याघ्रेरवालान्वयात्
श्रीसल्लक्षणतो जिनेन्द्रसमयश्रद्धालुराशाधारः ॥ १

२–प्राचीन कालमें “कमाऊंके” आसपासके देशको भी सपादलक्ष कहते थे।

आकाश भूत–भूत जातिके व्यंतरोंका सातवां द। वे सात प्रकार हैं–सुरूप, प्रतिरूप, भूतोत्तम, विभूत, प्रतिछिन्न, महाभूत, आकाशभूत (त्रि० ा० २६९)।

आकाशोत्पन्न व्यन्तर–जो व्यंतर मध्यलोकमें हते हैं उनमेंका एक भेद–पृथ्वीसे १ हाथ ऊपर नीचोपपाद–फिर दश हजार हाथ ऊँचे दिग्वासी, फिर दश हजार हाथ ऊपर अन्तरवासी–फिर दस हजार हाथ ऊँचे कूष्मांड–फिर बीस हजार हाथ ऊँचे उत्पन्न हैं। फिर २० हजार हाथ ऊँचे अनु-त्पन्न हैं। फिर २० हजार हाथ ऊँचे प्रमाणक हैं फिर २० हजार हाथ ऊँचे गन्ध हैं फिर २० हजार हाथ ऊँचे महागन्ध हैं फिर २० हजार हाथ ऊँचे भुजंग हैं, फिर २० हजार हाथ ऊंचे प्रीतिक हैं फिर २० हजार हाथ ऊँचे आकाशोत्पन्न हैं। इन आकाशोत्पन्नकी आयु आध पल्य प्रमाण है (त्रि० गा० २९१–२९२–२९३)।

आकम्पित दोष–साधु अपने दोषोंकी आलो-चना आचार्यसे करे उसमें यह पहला दोष न लगावे। उपकरण आदि दे करके व वंदना विशेष करके ऐसा चाहे गुरु मेरे ऊपर दया करें तो दंड कम देंगे इस भावसे दोष कहे यह मायाचार सहित आलोचना दोषको नहीं दूर करता है जैसे कोई विष पीकर जीवना चाहे वैसे इस दोष सहित आलोचना है (भ० पृ० २२९)।

आकिंचन्य महाव्रत–परिग्रह त्याग महाव्रत जिसमें सर्व परिग्रहको छोड़ा जावे व यह विचार किया जावे कि मैं शुद्ध आत्मा हूं और मुझसे सब पर हैं। दशलाक्षणी धर्ममें यह नौमा धर्म है।

आकिंचन्यकी ५ भावना–परिग्रहत्यागव्रतकी पांच भावनाएं ये हैं कि पांचों इन्द्रियोंके विषय मनोज्ञ या अमनोज्ञ मिलें उनमें राग द्वेष न करना (सर्वा० अ० ७–८)।

आक्रंदन–दुःखसे आंसू बहाकर प्रगट रोना। इससे असाता वेदनीय कर्मका बंध होता है (सर्वा० अ० ६–११)।

आक्रोश परीषह–मुनिको यदि कोई दुष्ट गालियां दें व निन्दा करें तो उस सबको कषाय न लाकर सहना १२वीं परीषह है (सर्वा.अ.९–९)।

आक्षेपिणी–कथा–जो सत्यमार्गको प्रतिपादन करे।

आखड़ी–प्रतिज्ञा, नियम।

आगत–कौन जीव कहांसे आकर उपजता है। नारकी मर करके नरक व देवगतिमें नहीं उपजते, किंतु मनुष्य या तिर्यंच गति हीमें उपजते हैं। मनुष्य व तिर्यंच मरकर नरक व देवगतिमें जासके हैं। देवगतिसे भी कोई नरकमें नहीं जाता न देव पैदा होता है वे मनुष्य व तिर्यंच होंगे। असैनी पंचेंद्री पहिले नरकसे आगे नहीं जाते, सरीसृप दूसरे नर्कतक, पक्षी तीसरे तक, सर्प चौथे तक, सिंह पांचवें तक, स्त्री छठे तक, कर्मभूमिका मनुष्य व तिर्यंच मत्स्य सातवें तक पैदा होते हैं। भोगभूमिके जीव देव ही होते हैं। निरंतर नरकको जावे तो पहलेमें बीचमें और होकर आठ वार, दूसरेमें सात वार, तीसरेमें छः वार, चौथेमें पांच वार, पांचवेमें चार वार, छठेमें तीन वार व सातवें नरकमें दोवार तक जावे। जो जीव सातवेंसे आता है वह पशु होता है उसे सातवें व अन्य किसी नरकमें एकवार फिर जाना ही पड़ता है उसे व्रत नहीं होते हैं। छठेसे निकलकर मुनि नहीं होसक्ता है, पांचवेंसे निकलकर मुनि होसक्ता है। परन्तु मोक्ष नहीं जा सक्ता है। चौथेसे निकलकर मोक्ष जासक्ता है। परन्तु तीर्थंकर नहीं होता है, पहले दूसरे तीसरे नर्कसे निकलकर तीर्थंकर होसक्ते हैं। नरकसे निकले हुए चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण व प्रतिनारायण नहीं होते। सूक्ष्म वायु व अग्निकायवाले मरकर तिर्यंच ही होते हैं। पृथ्वी, जल व वनस्पतिकायवाले, द्वेंद्रिय, तेंद्रिय, चौन्द्रिय, असैनी पंचेंद्रिय व मनुष्य, सैनी पशु ये परस्पर एक दूसरेमें जाकर पैदा होसके हैं। मिथ्यादृष्टी जीव सैनी व असैनी मरकर [illegible] व भवनवासी व ज्योतिषी होसक्ते हैं। [illegible]

उसका भी उल्लेख करते। अनगारधर्मामृतकी भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका वि० सं० १३०० की बनी हुई है, जब कि उनकी आयु कमसे कम ६५ वर्षकी होगी, जैसा कि हम आगे सिद्ध करेंगे। इस अवस्थाके पश्चात् पुत्र उत्पन्न होनेकी संभावना बहुत कम होती है।

आशाधरने अपने ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंमें अपना बहुत कुछ परिचय दिया है। परन्तु किसीमें अपने जन्मका समय नहीं बतलाया है। तो भी उन्होंने अपने विषयमें जो बातें कहीं हैं, उनसे अनुमान होता है कि विक्रम संवत् १२३५ के लगभग उनका जन्म हुआ होगा।

जिस समय गजनीके बादशाह शहाबुद्दीनगोरीने सारे सपादलक्ष देशको व्याप्त कर लिया था, उस समय सदाचार भंग होनेके भयसे मुसलमानोंके अत्याचारके डरसे आशाधर अपने परिवारके साथ देश छोड़कर निकले थे, और मालवाकी धारा नगरीमें आ बसे थे। उस समय मालवाके परमारवंशके प्रतापी राजा विन्ध्यवर्माका राज्य था। वहां उनकी भुजाओंके प्रचंड बलसे तीनों पुरुषार्थोंका साधन अच्छी तरहसे होता था। शहाबुद्दीन गोरीने ईस्वी सन् ११९३ में अर्थात् विक्रम संवत् १२४९ में पृथ्वीराजको कैद करके दिल्लीको

१—म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षति-
त्रासाद्विन्ध्यनरेन्द्रदोःपरिमलस्फूर्जत्त्रिवर्गौजसि।
प्राप्तो मालवमंडले बहुपरीवारः पुरीमावसत्
यो धारामपठज्जिनप्रमितिवाक्शास्त्रे महावीरतः ॥ ५॥
प्रशस्तिकी टीकामें 'म्लेच्छेशेन' काअर्थ "साहबदीनतुरुष्केन" लिखा है।

आचार सार—वीरनंदि (वि० सं० ९९९) कृत मुनि आचरण ग्रन्थ मुद्रित।

आचारांग—जिनवाणीके १२ अँगोंमें पहला अँग जिसमें मुनि आचारका कथन है जो मोक्षमार्गमें सहाई है। कैसे बैठना, सोना, आहार करना आदि विधि वर्णित है, इसके १८००० मध्यम पद हैं (गो० जी० ३५६–३५८)।

आचारांगसूत्र—श्वेतांबर जैन ग्रन्थ जो सरस्वती भवन बम्बईमें है।

आचार्य—जो साधुओंको दीक्षा शिक्षा देकर चारित्र आचरण करावें व स्वयं ५ प्रकार आचार पालें (सर्वा० अ० ९–२४)।

आचार्य भक्ति—१६ कारण भावनामें १२वीं भावना—आचार्यकी भक्ति करना (सर्वा.अ.६।२४)।

आचार्य विनय—आचार्यकी अंतरंग व बहिरंग विनय करना, उनको आते देख उठ खड़ा होना, नमस्कार करना, उनकी आज्ञा मानना।

आचेलक्य—चेल वस्त्रको कहते हैं। मुनि कपास, वाट, रेशम, सन, टाट, छाल आदि व मृग व्याघ्रादिसे उत्पन्न मृग छालादिसे शरीरको नहीं ढकते। नग्न रहना (श्रा० ए० २७१), कड़े आदि आभूषण पहरना, संयमके विनाशक द्रव्य न रखना (मू० गा० ३०)।

आजीवन दोष—जो मुनि अपना कुल, जाति, ऐश्वर्य व महिमा प्रगट करके वस्तिका ग्रहण करे (म० ए० ९९)।

आजीवी षट्कर्म—गृहस्थोंके पैसा पैदा करनेके छः कर्म कर्मभूमिकी आदिसे श्री आदिनाथ भगवानने बताए हैं—१ असि (शस्त्र विद्या), २ मसि (लेखन), ३ कृषि, ४ वाणिज्य, ५ शिल्प, ६ विद्या।

आताप—धूप, सूर्यकी प्रभा जो उष्ण होती है।

आताप नामकर्म—नामकर्मकी वह प्रकृति जिसके उदयसे सूर्यके विमानमें पृथ्वीकायिक जीवोंके ऐसा शरीर होता है जो स्वयं तो उष्ण न हो परन्तु दूसरोंको उष्ण लगे (सर्वा० अ० ८–११)।

आतापन योग—धूपमें खड़े या बैठकर ध्यान करना।

आत्मख्याति समयसार—श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत प्राकृत समयसार पर संस्कृतमें श्री अमृतचंद्र आचार्य कृत टीका। उसपर पंडित जयचन्द जैपुर कृत हिन्दी टीका दोनों मुद्रित हैं।

आत्मतत्त्व—जीवतत्त्व। चेतना लक्षणधारी।

आत्मधर्म—एक पुस्तक हिन्दीमें ब्र० सीतलप्रसादजीकृत जिसमें आत्मा व आत्माके ध्यानका विवेचन है। मुद्रित है।

आत्मप्रबोध—एक संस्कृतकी पुस्तक। आत्माका अच्छा विवेचन है, कुमार कविकृत मुद्रित है।

आत्मप्रवाद पूर्व—दृष्टिवाद अंगमें १४ पूर्वोंमेंसे सातवां पूर्व, जिसमें आत्माका विस्तारसे विवेचन है। इसके २६ करोड़ मध्यम पद हैं (गो.जी.गा.३६६)।

आत्मभूत लक्षण—जो लक्षण वस्तुके स्वरूपमें मिला हो उससे भिन्न न होसके जैसे आगका लक्षण उष्णपना, जीवका लक्षण चेतना (जै. सि. प्र. नं. ४)

आत्मरक्ष देव—देवोंमें वे देव जो इन्द्रके अंगकी रक्षा करें। १० पदवियोंमेंसे पांचवी पदवी (सर्वा० अ० ४–४)।

आत्मरक्षित—लौकांतिक देवोंका एक भेद जो तुषित और अव्याबाध भेदोंके अंतरालमें रहते हैं (त्रि० गा० ५३८)।

आत्मलिंग—चैतन्य स्वरूप, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख और दुःख संसारी आत्माके चिह्न हैं इनसे संसारी आत्मा पहचाना जाता है (द० ए० ५१७)

आत्मवाद—एकांत मतोंमें एक मत जो मानता है कि एक ही महात्मा है सो ही पुरुष है देव है सर्व विषे व्यापक है, सर्वांगपने अगम्य है, चेतना सहित है, निर्गुण है, परम उत्कृष्ट है ऐसे एक आत्मा ही करि सबको मानना सो आत्मवाद है। (गो० क० गा० ८८१)।

आत्मवादी—एक आत्मा हीको माननेवाले।

आत्मविचार—आत्माके यथार्थ स्वरूपका विचार।

भिलाषी महाराजा भोजको मरे हुए यद्यपि उन दिनों १९० वर्ष बीत चुके थे, तो भी धारानगरीमें संस्कृत विद्याका अच्छा प्रचार था। उन दिनों संस्कृतके कई नामी नामी विद्वान् हो गये हैं जिनमें वादीन्द्र **विशालकीर्ति**, **देवचन्द्र**, महाकवि **मदनोपाध्याय**, कविराज **बिल्हण** (मंत्री), **अर्जुनदेव**, **केल्हण**, **आशाधर** आदि मुख्य गिने जाते हैं।

वि० संवत् १२४९ में जब कि पंडित आशाधर धारामें आये होंगे, उनकी अवस्था अधिक नहीं होगी। क्योंकि धारामें आनेके पश्चात् उन्होंने न्याय और व्याकरण शास्त्र पढ़े थे। हमारी समझमें उस समय उनकी अवस्था २० वर्षके भीतर भीतर होगी। और इस हिसाबसे उनका जन्म वि० सं० १२३०–३९ के लगभग हुआ होगा, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं।

जिस समय आशाधर धारामें आये थे, उस समय मालवाके राजा **विन्ध्यनरेन्द्र**, **विन्ध्यवर्मा**, अथवा **विजयवर्मा** थे। प्रशस्तिकी टीकामें 'विन्ध्यभूपतिका' अर्थ 'विजयवर्मा नाम मालवाधिपति' किया है। जिससे मालूम होता है कि विन्ध्यवर्माहीका दूसरा नाम विजयवर्मा है। विन्ध्यवर्माका यह नामान्तर अभीतक किसी शिलालेख या दानपत्रमें नहीं पाया गया है। विजयवर्मा परमार महाराज भोजकी पांचवीं पीढ़ीमें थे। पिप्पलियाके अर्जुनदेवके दानपत्र[१]में उनकी कुलपरम्परा इस प्रकार लिखी है:– '**भोज–उदयादित्य–नरवर्मा**, **यशोवर्मा**, **अजयवर्मा**, **विन्ध्यवर्मा** (विजयवर्मा), **सुभटवर्मा**,

---

१–बंगाल एशियाटिक सुसाइटीका जनरल जिल्द ५ पृष्ठ ३७८।

आदिसागर—वर्तमान दि० जैन मुनि बाहुबलि पर्वत स्टे० हातकलिंगरा (कोल्हापुर राज्य)।

आदीश जिन—आदिनाथ प्रथम तीर्थंकर।

आदीश्वर—आदिनाथ प्रथम तीर्थंकर।

आदेय नामकर्म—जिस प्रकृतिके उदयसे प्रभावान शरीर हो (सर्वा० अ० ८–११)।

आदेश—अपेक्षा, मार्गणा, विस्तार। जहां जीवोंको ढूंढा जावे या देखा जावे सो मार्गणा है। यह १४ होती हैं। गाथा—गई इंदिये च काये जोगे वेदे कसाय णाणेय। संयम दंसण लेस्सा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे॥ १–चार गति, २–पांच इंद्रिय, ३–छः काय, ४–पंद्रह योग, ५–तीन वेद, ६–चार या २५ कषाय, ७–आठ ज्ञान, ८–सात संयम, ९–चार दर्शन, १०–छः लेश्या, ११–दो भव्य, १२–छः सम्यक्त, १३–दो संज्ञी, १४–दो आहारक, (गो० जी० गा० ३)।

आदेश दोष—उद्दिष्ट दोषका एक भेद। आज हमारे यहां तपस्वी, परिव्राजक भोजनके लिये आवेंगे उन सबके लिये भोजन दूंगा। ऐसे विचार कर किया हुआ अन्न सो आदेश दोष है। ऐसा भोजन मुनिको देना योग्य नहीं। जो मुनि जानकर ले तो उसे भी दोष लगे। जो भोजन गृहस्थीने आपके कुटुंबके निमित्त किया हो और साधु आजाय तो भोजनदान करे (भ० ए० १०२३)।

आद्यन्त मरण—जो वर्तमान पर्यायका स्थिति आदिक जैसा उदय था वैसा आगेकी पर्यायका सर्व प्रकारसे व एक देशसे बंध व उदय नहीं हो (भ० ए० ९)।

आधिकरणिकी क्रिया—हिंसाके उपकरण ग्रहण करना। आस्रवकी २५ क्रियाओंमेंसे पांचवीं क्रिया (सर्वा० अ० ६–५)।

आनत—तेरहवें स्वर्गका नाम; (त्रि०गा० ४५३) पहला इंद्रक जो आनतादि ४ स्वर्गोंमें है छः इन्द्रक हैं (त्रि० गा० ४६८)।

आनति—मुनिको आहारदान कराते हुए नौ प्रकार भक्तिमें पांचवीं भक्ति। पूजाके पीछे नमस्कार करना। वे ९ भक्तिये हैं। १–प्रतिग्रह–अन्न आहारपानी शुद्ध, तिष्ठत तिष्ठत तिष्ठत, ऐसा कहकर पड़गाहना, २ उच्च स्थान–घरमें लेजा ऊँचे आसनपर विराजमान करना, ३–अंघ्रिप्रछालन–चरणकमल धोना व जलको मस्तकपर चढ़ाना, ४ अर्चा–अष्ट द्रव्योंसे पूजना, ५ आनति–नमस्कार, ६ मनशुद्धि–आर्त व रौद्रध्यान न करना, ७ वचनशुद्धि–कठोर वचन न कहना, ८ कायशुद्धि–शुद्ध शरीर कपड़ेसे ढका हुआ विनय युक्त रखना, ९ अन्नशुद्धि–शुद्धाहार मुनिको देना (सा० अ० ५–४५)।

आनयन—देशविरति नाम दूसरे गुणव्रतका पहला अतीचार। अपने नियम किये हुए स्थानके बाहरसे कुछ मंगाना (सर्वा० अ० ७–३१)।

आनन्द—सुख, आल्हाद, गंधमादन नाम गजदंतपर सातवां कूट (त्रि० गा० ७४१)।

आनीक—सेना बननेवाले देवोंकी जाति—सात तरहके भेद होते हैं। एक२ भेदमें सात२ कक्ष या सेना होती हैं। असुरकुमार भवनवासियोंके भैंसा, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादा, गंधर्व व नर्तकी ऐसी सात प्रकार सेना होती है। नागकुमारादिमें–सर्प, गरुड़, हाथी, माछला, ऊँट, सूर, सिंह, पालकी, घोड़ा, ऐसे पहले भेदमें अंतर है–असुर कुमारमें पहली सेना भैंसोंकी है तब नागकुमारोंमें सर्पकी, विद्युतकुमारोंमें गरुड़ोंकी इत्यादि। शेष छः भेद सब में समान हैं। व्यंतरोंके सात आनीक हैं–हाथी, घोड़ा, प्यादा, रथ, गंधर्व, नर्तकी, वृषभ। कल्पवासियोंमें वृषभ, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादा, गन्धर्व, नर्तकी ऐसे भेद हैं (त्रि० गा० २२९, २३०, २८०, २३२, २३३, २२४)।

आनुपूर्वी—इसका पांच प्रकार है। १ आनुपूर्वी—चारों प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग अनुयोगोंको क्रमसे पढ़ना या उनका कहना

कि आशाधर कोई सामान्य पुरुष नहीं थे। एक बड़े भारी राज्यके महामंत्रीकी जिनके साथ इतनी गाढ़ मित्रता थी, उनकी प्रतिष्ठा थोड़ी नहीं समझना चाहिये। उक्त बिल्हण कविका उल्लेख मांडूके एक खंडित शिलालेखमें है। उसे छोड़कर न तो उनका बनाया हुआ कोई ग्रन्थ मिलता है और न आशाधरको छोड़कर उनका किसीने उल्लेख किया है। ऐसे राजमान्य प्रतिष्ठित कविकी जब यह दशा है तब पाठक सोच सकते हैं कि कालकी कुटिल गतिने हमारे देशके ऐसे कितने विद्वानोंकी कीर्तिका नाम शेष न कर दिया होगा !

आशाधरकी प्रशस्तिमें **बिल्हण कवीश**का नाम देखकर पहले हमने समझा था कि काश्मीरके प्रसिद्ध कवि **बिल्हण** ही जिनकी उपाधि **विद्यापति** थी, आशाधरकी प्रशंसा करनेवाले हैं। परन्तु वह केवल एक भ्रम था। विद्यापति बिल्हण और मालवा राज्यके मंत्री कवीश बिल्हणके समयमें लगभग डेढ़ सौ वर्षका अन्तर है। विद्यापति बिल्हण काश्मीरनरेश **कलश**के राज्यकालमें विक्रम संवत् ११२० के लगभग काश्मीरसे निकला था। जिस समय वह धारामें आया था, **भोजदेव**की मृत्यु[1] हो चुकी थी। इससे स्पष्ट है कि विन्ध्यवर्माके मंत्री बिल्हणसे विद्यापति बिल्हण भिन्न पुरुष थे।

बिल्हणचरित नामका एक काव्य बिल्हण कविका बनाया हुआ प्रसिद्ध है। परन्तु इतिहासज्ञोंका मत है कि उसका कर्त्ता बिल्हण

१–राजा भोजकी मृत्यु वि० सं० ११११२के पूर्व हो चुकी थी और१११५ में उदयादित्यको राज्य मिल चुका था, ऐसा परमार राजाओंके लेखोंसे सिद्ध हो चुका है।

गतिको जाता है वहांतक उदय नहीं आती है। इसकी उत्कृष्ट आबाधा एक कोड़ पूर्वका तीसरा भाग है व जघन्य असंक्षेपाद्धा या आवलीका असंख्यातवां भाग है। (गो० क० गा० १५९–१५८) उदीरणाकी अपेक्षा सातो कर्मोंकी एक आवली आबाधा है। (गो० क० गा० १५९)

आबाधा भेद–उत्कृष्ट आबाधामेंसे जघन्य आबाधाको घटाए जितना काल हो उतने समयोंमें एक मिलानेसे आबाधाके सर्व भेद निकलते हैं। जैसे १० समय उत्कृष्ट व २ समय जघन्य आबाधा थी तो आबाधाके भेद ९ हुए। (गो०क०गा० १५०)

आबाधावली–कर्मबंध होनेके समयसे एक आवली तक उदीरणा व उदय आदि नहीं होता है। उसे बंधावली, अचलावली या आबाधावली कहते हैं। (ल० पृ० २८)।

आबू–अतिशय क्षेत्र, राजपूतानामें सिरोही राज्यमें एक बहुत ऊँचा पर्वत जिसपर विमलशाह व तेजपाल वस्तुपालके निर्मापित करोड़ों रुपयोंके खर्चके बने संगमर्मरकी कारीगरीके दर्शनीय जैन मंदिर हैं। श्वेताम्बर मंदिरोंके साथमें दि० जैन मंदिर भीतर है व बाहर भी दि० जैन मंदिर व धर्मशाला है। आबूरोड स्टेशनसे मोटरद्वारा पर्वतपर जाना होता है।

आबूके जैन मंदिरोंके निर्माता–अम्बाला शहर जैन सभा द्वारा प्रकाशित ट्रैक्ट नं० १५४।

आभास–मिथ्या, भ्रम।

आभिनिबोधिक ज्ञान–मतिज्ञान, जो ज्ञान इंद्रिय व मन द्वारा अपने जानने योग्य नियमित पदार्थको सीधा जाने। जैसे स्पर्शन इंद्रिय स्पर्श हीको, रसना इंद्रिय रस हीको, घ्राण गंध हीको, इस तरह नियमसे जानते हैं। यह सामनेके स्थूल विषयोंको ही जानता है। इसके ३३६ भेद हैं। अभिके अर्थ अभिमुख या सन्मुख है, निके अर्थ नियमित अर्थ उसका बोध अर्थात् जानना सो आभिनिबोध है। यह ज्ञान जिससे हो वह आभिनिबोधिक मतिज्ञान है (गो० जी० गा० ३०६)।

आभियोग्य देव–देवोंका एक पद जिस पदके धारक हाथी, घोड़ा, आदि वाहन बन जानेका काम करते हैं। इन्हींमेंसे ऐरावत हाथी बनता है (त्रि० गा० २२३–२२४)।

आभियोग्य भावना–जिन्होंने मनुष्य पर्यायमें पाप क्रियाओंमें दासत्वपनेका काम किया है वैसी भावना की है वे १६ स्वर्गतक आभियोग्य जातिके देव पैदा होते हैं। जो साधु रसादिकमें आसक्त होके तंत्र मंत्र भूत कर्मादिक बहुत भाव करते हैं और हास्य सहित आश्चर्यकारी बातें करते हैं वे अपने भावोंसे मरकर इस जातिके देवोंमें पैदा होते हैं (मूला० गा० ६९)।

आभ्यन्तर उपकरण–द्रव्येंद्रियकी रक्षा करनेवाला भीतरी अंग जैसे आंखकी पुतलीका रक्षक काला व सफेद मण्डल। बाहरी पलकादि बाह्य उपकरण है (सर्वा० अ० २–१७)।

आभ्यन्तर क्रिया–एक स्थानसे दूसरे स्थानपर गमन करनेको क्रिया कहते हैं। उसके दो निमित्त हैं। आभ्यंतर व बाह्य। द्रव्यमें जो क्रियारूप परिणमनेकी शक्ति है वह अभ्यंतर क्रिया है। उस शक्तिके होते हुए बाहरी निमित्त वर्ग द्रव्य आदिके होते हुए क्रिया होती है। (रा० अ० ५)

आम्नाय–परम्परासे चला आया मार्ग; शब्द व अर्थको शुद्धतासे घोखकर कंठस्थ करना। (सर्वा० अ० ९–२५) यह स्वाध्यायतपका चौथा भेद है।

आमंत्रणी भाषा–यह ८ प्रकार अनुभय वचनमें पहली भाषा है। बुलानेवाला वचन, जैसे कहना कि हे देवदत्त यहां आओ। (गो० गा० २२५)

आमर्शन–शरीरके एक किसी भागको स्पर्श करना (भ० पृ० २३३)

आमर्षौषधिऋद्धि–तपस्वी साधुओंमें यह शक्ति जिसके पहले उनके हाथ या पैर आदि अंगोंका स्पर्शन रोगीके रोगका नाश करे (भ० पृ० २२३)

आमिष–मांस-इन्द्रियके [illegible]।

व्याघ्रेरवालवरवंशसरोजहंसः
काव्यामृतौघरसपानसुतृप्तगात्रः ।
सल्लक्षणस्य तनयो नयविश्वचक्षु—
राशाधरो विजयतां कलिकालिदासः ॥ ३ ॥

अर्थात्—जो बघेरवालोंके श्रेष्ठवंशरूपी सरोवरसे उत्पन्न हुआ हंस है, काव्यामृतके पानसे जिसका हृदय तृप्त है, जो सम्पूर्ण नयोंका जाननेवाला है और जो श्रीसल्लक्षणका पुत्र है, वह **कलियुगका कालिदास** आशाधर जयवन्त होवे ।

इसी प्रकारसे श्रीमदनकीर्तिमुनिने कहा था कि—

इत्युदयसेनमुनिना कविसुहृदा योऽभिनान्दितः प्रीत्या ।
प्रज्ञापुञ्जोसीति च योऽभिहितो मदनकीर्तियतिपतिना ॥ ४॥

" अर्थात् आप प्रज्ञाके पुंज हैं अर्थात् विद्याके भंडार हैं । "

इन दोनों विद्वानोंमेंसे हमको उदयसेनके विषयमें तो केवल इतना ही मालूम है कि वे कविके मित्र थे और मदनकीर्तिके विषयमें इससे अधिक और कुछ नहीं कहा जा सकता कि वे एक ' यतिपति ' वा जैन मुनि थे । मदनोपाध्याय वा बालसरस्वति 'मदन' से कुछ नामसाम्य देखकर भ्रम होता है कि मदनकीर्ति और मदनोपाध्याय (राजगुरु) एक होंगे । परन्तु इसके लिये कोई संतोषप्रद प्रमाण नहीं ।

मालवाधीश महाराज अर्जुनदेव बड़े भारी विद्वान् और कवि थे ।

रहता हुआ धर्मसाधन करता है, सांसारिक आरंभी हिंसाका त्यागी होजाता है। सातवीं तक आरंभी हिंसा होसक्ती थी। यहां निमंत्रित होनेपर अपने घरमें या पर घरमें संतोषपूर्वक भोजन करता है। यह वाहनादि पर चढ़नेका आरंभ भी त्याग देता है। रसोई आदि बनानेका आरंभ भी न करता है न कराता है (गृ० अ० १४)।

आरंभी हिंसा—वह हिंसा जो हिंसाके संकल्पसे न हो किन्तु गृहस्थके असि, मसि, कृषि, वाणिज्य शिल्प, विद्याकर्म करते हुए, विरोधियोंसे अपनी व अपने धन व देशकी रक्षा करते हुए व गृह प्रबंध करते हुए होजाती है (सा० अ० २ श्लोक ८२)।

आरोहक—वे देव जो वृषभादि बने हुए आभियोग्य जातिके देवोंपर सवारी करते हैं (त्रि.गा. ५०१)

आर्जवा—श्री ऋषभदेवके पूर्वभवमें जब वह राजा वज्रजंघ थे तब उनके पूर्वजन्मके पुरोहित रुषितका जीव अपराजित सेनापति और आर्जवाके पुत्र अकंपन सेनापति हुआ (आ० प० ८।२१६)।

आर्त्तध्यान—"ऋतं दुःखं अर्दनम् अर्तिः वा तत्र भवम् आर्तम्" दुःखमई भावसे होनेवाला ध्यान। यह चार प्रकारका है—१ अनिष्ट संयोगज—मनको न रुचनेवाले पदार्थके सम्बन्ध होनेपर उसके वियोगकी चिन्ता। २ इष्ट वियोगज—मनको रोचक चेतन व अचेतन पदार्थके वियोग होनेपर शोक। ३ वेदनाजनित—रोगजनित पीड़ासे खेद करना। ४ निदान—आगामी भोगोंकी वांछाका चिंतवन करना (सर्वा० अ० ९।२८)।

आर्य—सज्जन, आर्यखंडनिवासी मानव या पशु; जो गुणोंके धारी हों; ये दो तरहके हैं। ऋद्धि प्राप्त आर्य, जिनको बुद्धि, विक्रिया, तप, बल, औषधि, रस व अक्षीण ऋद्धियें सिद्ध हों, अनृद्धि प्राप्त आर्य वे पांच तरहके हैं। १—क्षेत्र आर्य, २—जात्यार्य, ३—कर्मार्य, ४—चारित्रार्य, ५—दर्शनार्य। अर्थात् १—आर्यखंडवासी, २—उत्तम लोकमान्य, ३—उत्तम अल्प पापवाले कर्मसे आजीविका करनेवाले, ४ उत्तम चारित्र सम्यक्त सहित पालनेवाले, सम्यग्दर्शनको रखनेवाले (सर्वा० अ० ३-३६)।

आर्यखण्ड—भरत व ऐरावत व विदेहके देशोंमें छः छः खण्ड हैं, उनमें एक आर्य खण्ड है, पांच म्लेच्छ खण्ड हैं। आर्यखण्डमें तीर्थंकरादि महापुरुष होते हैं। मुनि व श्रावक धर्म व जिनधर्मकी प्रवृत्ति होती है। म्लेच्छ खण्डोंमें धर्मका प्रचार नहीं होता है। आर्यखण्डके भीतर उपसमुद्र भी होता है। एक एक मुख्य राज्यधानी होती है जैसे भरतमें अयोध्या। भरत व ऐरावतके आर्यखण्डमें ही उत्सर्पिणी व अवसर्पिणीके छहोंकाल पलटते रहते हैं। इनके म्लेच्छ खण्डोंमें व विजयार्द्धपर चौथे कालकी रचनामें ही हानि वृद्धि हुआ करती है। अवसर्पिणीमें आदिसे अंत तक हानि होती है। कुल आर्यखण्ड ढाईद्वीपमें १७० हैं (त्रि० गा० ७११-८८३)।

आर्यभ्रम निराकरण—पुस्तक मुद्रित।

आर्य भ्रमोच्छेदन— "

आर्य मत लीला— "

आर्य संशयोन्मूल— "

आर्यिका—(आर्जिका, आर्या)—ग्यारह प्रतिमाके व्रत पालनेवाली ऐलकके समान आचरण करनेवाली एक सफेद सारी, पीछी, कमंडल शास्त्र रक्खे, बैठकर हाथमें भोजन करे। आर्यिका जब वंदनाको जावे तब आचार्यसे ५ हाथ, उपाध्यायसे ६ हाथ तथा साधुसे ७ हाथ दूरसे वंदना करे। पिछाड़ी बैठे, अगाड़ी न बैठे। गौके समान बैठकर वंदना करे।

आर्यिकाएं अकेली न रहें, दो तीन साथ रहें, योग्य स्थानमें ठहरें, भिक्षा कालमें बड़ी आर्यिकासे पूछकर अन्य आर्यिकाओंके साथ जावें। भिक्षावृत्तिसे ऐलकके समान भिक्षा ले। इनको बाढ़ें काम न करना चाहिये (मू० १८७...)।

आर्जव धर्म (आर्जव धर्म)—कपटका अभाव होकर जहां सरल भाव हो, मन वचन कायका सरल वर्तन, योगोंका वक्र न होना (सर्वा० अ० ९।६)।

इन सब विषयोंमें उन्होंने सैकड़ों शिष्योंको निष्णात कर दिया था देखिये, वे क्या कहते हैं:—

यो द्राग्व्याकरणाब्धिपारमनयच्छुश्रूषमाणान्नकान्
षट्तर्कीपरमास्त्रमाप्य न यतः प्रत्यर्थिनः केऽक्षिपन् ।
चेरुः केऽस्खलितं न येन जिनवाग्दीपं पथि ग्राहिताः
पीत्वा काव्यसुधां यतश्च रसिकेष्वापुः प्रतिष्ठां न के ॥९॥

भावार्थ—शुश्रूषा करनेवाले शिष्योंमेंसे ऐसे कौन हैं, जिन्हें आशाधरने व्याकरणरूपी समुद्रके पार शीघ्र ही न पहुंचा दिया हो तथा ऐसे कौन हैं, जिन्होंने आशाधरसे षट्दर्शनरूपी परम शस्त्रको लेकर अपने प्रतिवादियोंको न जीता हो तथा ऐसे कौन हैं, जो आशाधरसे निर्मल जिनवचनरूपी (धर्मशास्त्र) दीपक ग्रहण करके मोक्षमार्गमें प्रवृत्त नहीं हुए हों, अर्थात् मुनि न हुए हों और ऐसे कौन शिष्य हैं, जिन्होंने आशाधरसे काव्यामृतका पान करके रसिक पुरुषोंमें प्रतिष्ठा नहीं पाई हो ।

इस श्लोककी टीकामें पंडितवर्यने प्रत्येक विषयके पार पहुंचे हुए अपने एक २ दो २ शिष्योंका नाम भी दे दिया है। पंडित **देवचंद्रादिको** उन्होंने व्याकरणज्ञ बनाया था, वादीन्द्र **विशालकीर्ति** आदिको षड्-दर्शनन्यायका ज्ञाता बनाकर वादियोंपर विजय प्राप्त कराई थी, भट्टारक **देवचन्द्र विनयचन्द्र** आदिको धर्मशास्त्र पढ़ाकर मोक्षमार्गमें प्रवृत्त किया था और **मदनोपाध्यायादिको** काव्यके पंडित बनाकर अर्जुन-वर्मदेव जैसे रसिक राजाओंकी प्रतिष्ठाका अधिकारी (राजगुरु) बना दिया था। पाठक इससे जान सकते हैं कि आशाधरकी विद्वत्ता,

वंदना, (४) प्रतिक्रमण—अपने दोषोंको अपने आप प्रगट करना व आचार्यादिसे प्रगट करना। दोषको शोधना (५) प्रत्याख्यान—आगामी कालके लिये दोषोंका त्यागना (६) कायोत्सर्ग—२५, २७ या १०८ उछ्वास तक शरीरसे ममत्व त्यागना। गृहस्थोंके छः जरूरी काम हैं—१ देवपूजा, २ गुरु भक्ति, ३ स्वाध्याय, ४ संयम, ५ तप, ६ दान।

आवश्यका परिहाणि—मुनि व श्रावकको अपनी नित्यकी आवश्यकीय क्रियाओंको न त्यागना। नित्य करना। यह १६ कारण भावनामें १४ वीं भावना है (सर्वा० अ० ६–२४)।

आवागमन—भव भवमें भ्रमण करना।

आवागमन स्थान—देखो शब्द "आगत"।

आवास—व्यंतरके भवनोंका नाम, जो द्रह, पर्वत व वृक्षमें होते हैं ये मध्य लोककी पृथ्वीसे ऊँचे होते हैं, जो नीचे होते हैं उन्हें भवन व जो सम-भूमिमें होते हैं उन्हें भवनपुर कहते हैं (त्रि०गा० २९४–२९५)।

आविद्ध—भ्रमण करता हुआ, घूमता हुआ।

आवीचिका मरण—जो आयु कर्मका उदय समय२ होकर घटता है। यह आवीचि कहिये समुद्रमें तरंगकी तरह उदय हो होकर पूर्ण होता जाता है इसे समय२ मरण भी कहते हैं (भ. पृ. १०)।

आशकरण—भाषा कवि, नेमिचंद्रिका छन्दोबद्धके कर्ता (दि० जैन नं० ६–४१)।

आशा—तृष्णा, चाह।

आशाधर—पंडित गृहस्थ बघेरवाल जाति। यह नागौरके निकट सवालक्ष देशके मंडलकर नगरमें जन्मे थे, वहां सांभरका राज्य भी शामिल था। इनका जन्म वि० सं० १२३५ में हुआ होगा। सं० १३०० में उन्होंने अनगार धर्मामृतकी भव्य कुमुदचंद्रिका टीका पूर्ण की थी। यह बड़े विद्वान थे। इनके बनाए बहुतसे ग्रन्थ संस्कृतमें हैं। जैसे—सागारधर्मामृत व इष्टोपदेश टीका, भक्तिसंग्रह, अष्टांगहृदय टीका, रत्नत्रय विधान, अध्यात्मरहस्य, भरताभ्युदय, चम्पूकाव्य आदि (दि०जै० नं० २९ व सा० भूमिका प्रथम भाग)।

आशाराम—पं० भाषा कवि—समवशरण पूजा व अहिछत्र विधानके कर्ता (दि० जैन नं० ५।४१)

आशिका—पूजाके करनेके पीछे बचे हुए अक्षत शेषा कहलाते हैं उनको पूजा करनेवाले अपने विनय पात्रोंके पास लेजाते हैं उनको वे हाथ जोड़कर विनय सहित लेते हैं और अपने मस्तकपर रखते हैं इस हीको आशिका कहते हैं। विनय करना आशिका मस्तक चढ़ाना है (अ० प० ४३।१७७ १७८)।

आशीविष—पश्चिम विदेह सीतोदा नदीके दक्षिण तटमें भद्रसालवनकी वेदीसे आगे क्रमसे चार वक्षार पर्वत हैं उनमेंसे तीसरा पर्वत (त्रि.गा. ६६८)।

आश्रम—चार हैं, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, भिक्षु या सन्यास। जो ब्रह्मचर्य पालते हुए विद्याभ्यास करें वह ब्रह्मचर्य आश्रम है। जो नित्य क्रिया करते हुए गृहस्थ धर्म पालते हैं वे गृहस्थ हैं, उनके दो भेद हैं—एक जाति क्षत्रिय जैसे क्षत्रिय, ब्राह्मण वैश्य और शूद्र, दूसरे तीर्थ क्षत्रिय, ३ वानप्रस्थ जो खंडवस्त्र धारकर तप करते हैं, ४ भिक्षु जो दिगंबर मुनि हैं। (सा० अ० ७।२० छठी प्रतिमा तक गृहस्थ, सातमीसे ११ वीं प्रतिमातक वानप्रस्थ होते हैं (श्रा० पृ० २५६)।

आष्टाह्निकमह पूजा—आष्टाह्निकाके दिनोंमें जो महा पूजा की जाय। कार्तिक, फागुन व आषाढ़के अंत आठ दिनोंमें (सा० अ० १।१८)।

आष्टे (श्री विघ्नहर पार्श्वनाथ)—निजाम हैदराबाद रियासतमें दुधनी स्टेशनके पास आष्टेसे करीब १६ मील—यहां प्राचीन जिनालय है। पार्श्वनाथकी मूर्ति २ फुट ऊंची नीचे श्यामकी है। पद्मासन। मंदिरका जीर्णोद्धार शक सं० १२८में [illegible] शिलालेखसे प्रगटता है। [illegible] सेठ [illegible] हेमचंदने कुछ वर्ष हुए जीर्णोद्धार कराया था। (तीर्थयात्रा दर्पण पृ० [illegible])।

जिस समय पंडितवर्य आशाधर नालछाको गये, उस समय मालवामें महाराज अर्जुनवर्मदेवका राज्य था। अर्जुनवर्मदेवके अभीतक तीन दानपत्र प्राप्त हुए हैं, जिनमेंसे एक विक्रमसंवत् १२६७ का है, जो पिप्पलिया नगरमें है और मंडपदुर्गमें दिया गया था। दूसरा वि० सं० १२७० का भोपालमें है और भृगुकच्छ (भरोंच) में दिया गया था और तीसरा १२७२ का है, जो अमरेश्वर तीर्थमें दिया गया था और भोपालमें है। इसके पश्चात् अर्जुनदेवके पुत्र देवपालदेवके राजत्वकालका एक शिलालेख हरसोदामें मिला है, जो वि० सं० १२७५ का लिखा हुआ है। इससे मालूम पड़ता है कि १२७२ और १२७५ के बीचमें किसी समय अर्जुनदेवके राज्यका अन्त हुआ था और १२६७ के पहले उनके राज्यका प्रारंभ हुआ था। कब प्रारंभ हुआ था, इसका निश्चय करनेके लिये विन्ध्यवर्मा और सुभटवर्मा इन दो राजाओंके राज्यकालके लेख मिलना चाहिये, जो अभीतक हमको प्राप्त नहीं हुए हैं। तो भी ऐसा अनुमान होता है कि १२६७ के अधिकसे अधिक २-३ वर्ष पहले अर्जुनवर्माको राज्य मिला होगा। क्योंकि संवत् १२५० में जब आशाधर धारामें आये थे, तब विन्ध्यवर्माका राज्य था और जब वे विद्वान् हो गये थे, तब भी विन्ध्यवर्माका राज्य था। क्योंकि मंत्री बिल्हणने आशाधरकी विद्वत्ताकी प्रशंसा की थी। यदि आशाधरके विद्याभ्यास कालके केवल ७-८ वर्ष गिने जावें, तो

१-अमेरिकन् ओरियंटल सुसाइटीका जनरल भाग ७, पृष्ठ ३२। २-अ०ओ० सु० का जनरल भाग ७, पृष्ठ २५।

रना। ये कर्मोंका आना विषय कषायसे होता है इनको रोकना चाहिये (सर्वा० अ० ९-७)।

आहनिक–एक अध्यायका भाग।

आहार्य विपर्यय–दूसरेके उपदेशसे विपरीत शास्त्रज्ञानका ग्रहण।

आहार–भोजन। चार प्रकारका है–खाद्य (जिससे पेट भरे), स्वाद्य (इलायची आदि), लेह्य (चांटने योग्य), पेय (पीने योग्य) १४वीं मार्गणा। औदारिक, वैक्रियिक व आहारक इन शरीर नामा नामकर्मोंमेंसे किसी एकके उदय करके उन शरीररूप व वचन रूप व द्रव्य मनरूप होने योग्य नोकर्म वर्गणा। अर्थात् आहारक, भाषा व मनोवर्गणाओंका ग्रहण करना आहार है (गो० जी० ६२४)।

आहार पर्याप्ति–जब कोई जीव एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाता है तब वह औदारिक, या वैक्रियिक या आहारक शरीररूप होने योग्य आहारक वर्गणाको, भाषा वर्गणाको व मनोवर्गणाको, एकेंद्रिय मात्र आहारक वर्गणाओंको द्वेन्द्रियादिक सब भाषा वर्गणाको भी व मनवाले मनोवर्गणाको भी ग्रहण करते हैं, उन पुद्गल स्कन्धोंमें खल अर्थात् मोटे रूप रस अर्थात् पलते रूप कर देनेकी जो आत्मामें शक्ति पर्याप्ति नाम कर्मके उदयसे पैदा होती है उसे आहार पर्याप्ति कहते हैं (गो.जी.गा. ११९)।

आहार संज्ञा–आहार करनेकी इच्छा यह सामान्यसे सब संसारी जीवोंके पाई जाती है, इस इच्छाके पैदा होनेके बाहरी कारण हैं–(१) विशेष भोजन देखना, (२) आहारकी याद करना व आहारकी बात सुनना, (३) उदरका खाली होना। अंतरंग कारण असाता वेदनीयका तीव्र उदय या उदीरणा है (गो० जी० गा० १३५)।

आहारक–विग्रह गतिवाले चारों गतिके जीव, प्रतर व लोकपूरणरूप केवल समुद्घातवाले सयोगी जिन व सर्व अयोगी १४वें गुणस्थानी जिन अनाहारक होते हैं बाकी सब हरसमय आहारक होते हैं (गो० ६६६)।

आहारक अङ्गोपांग–वह नाम कर्म जिसके उदयसे मुनियोंके मस्तकसे जो आहारक शरीर निकलता है उसमें अंगोपांग होते हैं (सर्वा. अ. ८-११)

आहारक ऋद्धि–छठे प्रमत्त गुणस्थानी मुनिको आहारक शरीरको बनानेकी शक्ति जो आहारक नाम कर्मके उदयसे होती है।

आहारककाय योग–प्रमत्त छठे गुणस्थानी मुनिके आहारक शरीर नामकर्मके उदयसे आहारक वर्गणासे आहारक शरीर बनता है। ढाईद्वीपमें तीर्थयात्राके लिये असंयम दूर करनेके लिये किसी शंकाके दूर करनेके लिये जहां अपने जानेकी शक्ति न हो वहां यह शरीर जाता है, केवली श्रुतकेवलीके दर्शन करनेसे संशय मिट जाता है। यह रसादि सात धातुसे रहित है, बड़ा सुन्दर है। सफेद वर्ण है, एक हाथ प्रमाण या २४ व्यवहार अँगुल प्रमाण है। यह मुनिके मस्तकसे निकलता है, यह कहीं रुकता नहीं है। इसकी स्थिति उत्कृष्ट व जघन्य अंतर्मुहूर्त है। आहारक शरीरके काम करते हुए जो आत्माके प्रदेश सकम्प होते हैं उसे आहारक काययोग कहते हैं। इस शरीरके निमित्तसे मुनि अपनी शंकाको आहरति अर्थात् दूर करता है व सूक्ष्म अर्थको आहरति–अर्थात् ग्रहण करता है इसलिये इसे आहारक कहते हैं (गो०जी०गा०२३९–२३९) कोई साधु आहारक योग होते हुए मरण भी कर जाता है।

आहारक जीव–देखो शब्द "आहारक"।

आहारक मार्गणा या आहार मार्गणा–१४वी मार्गणा जिसमें जीवोंके आहारक व अनाहारकका कथन है (गो० जी० गा० ६६४)।

आहारक मिश्र काययोग–आहारक शरीरके बननेमें एक अन्तर्मुहूर्त लगता है। जबतक वह पूर्ण न हो अर्थात् जबतक आहारक वर्गणारूप पुद्गल स्कन्ध आहारक शरीररूप नहीं परिणमा तबतक आहारक मिश्रयोग होता है। उस समय आहारक

मृत और तीसरा अनगारधर्मामृत। इन तीनों ही ग्रन्थोंमें वे अपनी विस्तृत प्रशस्ति लिखके रख गये हैं। वि० संवत् १३०० तक उन्होंने जितने ग्रन्थोंकी रचना की है, उन सबके नाम उक्त तीनों प्रशस्तियोंमें लिखे हुए हैं। हम उन्हें यहां क्रमसे प्रकाशित करते हैं:—

स्याद्वादविद्याविशदप्रसादः प्रमेयरत्नाकरनामधेयः॥
तर्कप्रबन्धो निरवद्यपद्यपीयूषपूरो वहतिस्म यस्मात्॥ १०॥

सिद्ध्यङ्कं भरतेश्वराभ्युदयसत्काव्यं निबन्धोज्ज्वलम्
यस्त्रैविद्यकवीन्द्रमोदनसहं स्वश्रेयसेऽरीरचत्।
योऽर्हद्वाक्यरसं निबन्धरुचिरं शास्त्रं च धर्मामृतम्
निर्माय व्यदधान्मुमुक्षुविदुषामानन्दसान्द्रं हृदि॥ ११॥

आयुर्वेदविदामिष्टां व्यक्तुं वाग्भटसंहिताम्।
अष्टाङ्गहृदयोद्योतं निबन्धमसृजच्च यः॥ १२॥

यो मूलाराधनेष्टोपदेशादिषु निबन्धनम्।
विधत्तामरकोशे च क्रियाकलापमुज्जगौ[1] ॥ १३॥

(जिनयज्ञकल्प.)

भावार्थ—स्याद्वादविद्याका निर्मल प्रसादस्वरूप प्रमेयरत्नाकर नामका न्यायग्रन्थ जो सुन्दर पद्यरूपी अमृतसे भरा हुआ है, आशाधरके हृदयसरोवरसे प्रवाहित हुआ। भरतेश्वराभ्युदय[3] नामका

१—ये १३ श्लोक तीनों प्रशस्तियोंमें एकसे हैं। अनगारधर्मामृतकी टीकामें बारहवाँ श्लोक १९ वें नम्बरपर है और तेरहवां चौदहवें नम्बरपर है। उनके स्थानपर जो दूसरे श्लोक हैं, वे आगे लिखे गये हैं। २-३. ये दोनों ग्रन्थ सोनागिरके भट्टारकके भण्डारमें हैं।

(१०) अशन दोष—(१) शंकित—यह लेने योग्य है या नहीं, शंकापर भी लेले, (२) मृक्षित—चिकने हाथ या वर्तनपर रक्खा भोजन ले, (३) निक्षिप्त—सचित्तपर धरा ले, (४) पिहित—सचित्तसे ढका ले, (५) संव्यवहरण—वस्त्र विना संभाले व विना भोजनको देखे दे, (६) दायक—सूतकादि युक्त अशुद्ध आहार ले, (७) उन्मिश्र—सचित्तसे मिला ले, (८) अपरिणत—पूर्णनयका व ठीक प्राशुक न हुआ जलादि ले, (९) लिप्त दोष—गेरू हरताल आदि अप्राशुक वस्तुसे लिप्त वर्तन या हाथमें दिया ले, (१०) त्यक्त—हाथसे गिरते हुए ले व हाथमें आया हुआ छोड़ अन्य आहार ले।

चार दोष और हैं—(१) संयोजना दोष—ठंढा भोजन गरम जलमें व ठंढा जल गरम भोजनमें मिला, (२) प्रमाण दोष—मात्राको उल्लंघनकर भोजन करना, (३) अंगार दोष—अति तृष्णासे लेना, (४) धूम दोष—भोजनकी निन्दा करता लेना। इस तरह १६ उद्गम +१६ उत्पादन +१० अशन+४ संयोजनादि=४६ आहार दोष हैं (मू.गा. ४७५ से ४७७)

आहार शुद्धि—मुनिको ४६ दोष रहित आहार लेना यह शुद्धि है (मू०गा० ४२२) पिंड शुद्धि।

आह्वनीय कुंड—होमके लिये तीन कुंड बनाए जाते हैं, (१) चौखूंटा—गार्हपत्य—यहां तीर्थंकरके निर्वाणकी अग्निकी स्थापना है, (२) त्रिकोण—आह्वनीय—यहां गणधरोंके निर्वाणकी अग्निकी स्थास्थापना है। (३) अर्द्धचंद्राकार—दक्षिणावर्त्त—यहां सामान्य केवलीके निर्वाणकी अग्निकी स्थापना है (गृ० अ० ४)।

आह्वानन—पूजनके पहले स्थापनमें पूज्यके विनयके लिये आह्वानन, स्थापन व सन्निधीकरण करते हैं। इसका भाव यह है आइये आइये, विराजिये विराजिये मेरे निकट या दिलमें होजाइये। इसीलिये कहते हैं अत्र अवतर अवतर संवौषट् "यह आह्वानन है।" "अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः" यह स्थापन है। अत्र मम सन्निहितो भव भव, वषट्" यह सन्निधीकरण है। संवौषट्, ठः ठः, वषट् यह मंत्राक्षर हैं—ये विनयके सूचक हैं।

आक्षेपिणी कथा—धर्मका स्वरूप बतानेवाली मतिज्ञानादिका व सामायिकादि चारित्रका स्वरूप झलकानेवाली कथा (भ० पृ० २९६)।

आज्ञापनी अनुभय वचन—ऐसा वचन जिसमें आज्ञा सूचित हो जैसे कहना "तू इस कामको कर" यह ८ प्रकार अनुभय वचनका दूसरा भेद है।

आज्ञाविचय—धर्मध्यानका (गो० जी० गा० २२५) पहला भेद—जिसमें सूक्ष्म पदार्थोंको मति अल्प होनेसे समझमें न आनेपर सर्वज्ञके आगमकी आज्ञानुसार विचारना व तत्त्वोंका स्वरूप सर्वज्ञकी आगमकी आज्ञानुसार प्रकाश करना (सर्वा० अ० ९–३६)।

आज्ञाव्यापादिकी क्रिया—आगमकी यथार्थ आज्ञाके अनुसार किसी क्रियाको आप कषायवश यथार्थ न कर सका हो तो उसका स्वरूप भी औरका और आज्ञा विरुद्ध कहना। यह आस्रवकी २५ क्रियाओंमें १९वीं क्रिया (सर्वा० अ० ६–५)।

आज्ञा सम्यक्त—जो सम्यक्त वीतराग सर्वज्ञकी आज्ञानुसार श्रद्धा करनेसे हो कि भगवान असत्य कहनेवाले नहीं होसक्ते (भ० पृ० ५१७)।

इ

इक्षुवर—सातवां द्वीप व समुद्र।

इक्ष्वाकु वंश—यह वंश जिसमें श्री ऋषभदेव भगवान हुए, इसीमें श्री रामचन्द्रादि हुए। इस वंशका नाम इक्ष्वाकु इसलिये पड़ा कि भगवानने प्रजाको सबसे पहले ईखके रसको पीनेका उपदेश दिया इससे भगवान इक्ष्वाकु कहलाए और इसीके कारण उनके वंशका नाम इक्ष्वाकु वंश प्रसिद्ध हुआ (इति० वं० १ पृ० २६)।

इंगिनी मरण—जो साधु संघसे निकलकर एकांत स्थानमें बाहर समाधिमरण करें, अपनी

योऽर्हन्महाभिषेकार्चाविधिं मोहतमोरविम्
चक्रे नित्यमहोद्योतं स्नानशास्त्रं जिनेशिनाम् ॥ १६ ॥

(सागारधर्मामृत टीका)

भावार्थ—रुद्रट कविके काव्यालंकार ग्रन्थकी टीका बनाई, अरहंत देवका सहस्रनाम[2] टीकासहित बनाया, जिनयज्ञकल्प सटीक बनाया, त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र (संक्षिप्त) टीकायुक्त बनाया और नित्य[3]महोद्योत नामक अभिषेकका ग्रन्थ बनाया, जो भगवान्की अभिषेकपूजाविधि सम्बन्धी अंधकारको नाश करनेके लिये सूर्यके समान है ।

वि० संवत् १२९६ के पीछे बने हुए ग्रन्थोंके नाम अनगारधर्मामृतकी टीकामें इस प्रकार मिलते हैं:—

राजीमतीविप्रलम्भं नाम नेमीश्वरानुगम् ।
व्यधात्त खण्डकाव्यं यः स्वयंकृतनिबन्धनम् ॥ १२ ॥
आदेशात्पितुरध्यात्मरहस्यं नाम यो व्यधात् ।
शास्त्रं प्रसन्नगम्भीरं प्रियमारब्धयोगिनाम् ॥ १३ ॥
रत्नत्रयविधानस्य पूजामाहात्म्यवर्णकम् ।
रत्नत्रयविधानाख्यं शास्त्रं वितनुतेस्म यः ॥ १८ ॥

(अनगारधर्मामृत टीका)

---

१. यह भी सोनागिरके भंडारमें है । २. आशाधरकृत मूल सहस्रनाम प्रायः सब जगह मिलता है । बुन्देलखंडमें प्रायः इसी सहस्रनामका प्रचार है । ३. नित्यमहोद्योत बम्बईके भंडारमें है ।

रेमें ११, तीसरेमें ९, चौथेमें ७, पांचवेमें ५, छठेमें ३, सातवेंमें १, कुल ४९ इंद्रकविले हैं। पहले नरकका पहला इन्द्रक सीमंत ढाईद्वीप प्रमाण ४५ लाख योजन चौड़ा है। व अंतका अप्रतिष्ठित जम्बूद्वीप समान १ लाख योजन चौड़ा है। (त्रि० गा० १५३ व १६९)

इन्द्रजीत–रावणका पुत्र जो बड़वानीसे मुक्त हुए।

इन्द्रदेव–सं०मदनपराजय नाटकके कर्ता आचार्य।

इन्द्रध्वजपूजा–इन्द्रद्वारा करी पूजा।

इन्द्रनन्दि–नंदिसंघके आचार्य सं० ९९९, इन्द्रनंदि संहिता, प्रतिष्ठापाठ, औषधिकल्प, मातृका यंत्र, पूजा आदिके कर्ता (दि० ग्रं० नं० २६); मुनि नीतिसार व समयभूषणके कर्ता (दि० ग्रं० नं० २७); भट्टारक धर्मप्रबोध, प्रायश्चित्त आदिके कर्ता (दि० ग्रं० नं० २८); यतिपति श्रुतावतारके कर्ता (श्रा० पृ० २४)।

इन्द्रवाम देव–त्रैलोक्य दीपक, त्रैलोक्य चरित्र व त्रैलोक्य दर्पणके कर्ता (दि०ग्रं० नं० २९)।

इन्द्रराज–इस पंचमकालके अंतमें भरतमें इन्द्रराज आचार्यका शिष्य वीरांगद अंतका साधु होगा (त्रि० गा० ८५८)।

इन्द्राणी–इन्द्रकी स्त्री–शची।

इन्द्रिय–इन्द्र नाम आत्मा उसका लिंग अर्थात् उसके पहचाननेका चिन्ह; इन्द्र नामकर्मको कहते हैं। उनके उदयसे बनी हुई (सर्वा० अ० १।१४) अहमिंद्रोंके समान जो स्वतंत्र हो अपना अपना काम करें। इन्द्रिय दो प्रकार है, द्रव्येंद्रिय, भावेंद्रिय। इंद्रियकी रचना व उसकी रक्षाके अंगको द्रव्येंद्रिय कहते हैं व जाननेकी शक्ति व उपयोगको भावेंद्रिय कहते हैं। एकेंद्रियोंके एक स्पर्शनेंद्रिय होती है, द्वेंद्रिय जीवोंके स्पर्शन व रसना, तेंद्रिय जीवोंके स्पर्शन रसना, घ्राण, चौंद्रिय जीवोंके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु–पंचेंद्रियोंके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व कर्ण होते हैं (गो०जी० १६४।१६५–१६६)।

इन्द्रिय आकार–चक्षुइंद्रियका आकार मसूरकी दालके समान है, कर्णका जौकी नालीके आकार है, नाकका कदंबके फूलके आकार है, जिह्वाका खुरपाके आकार है, स्पर्शनका अनेक प्रकार है (गो० जी० गा० १७१)।

इन्द्रिय निग्रह–इंद्रियोंको अपने आधीन रखना।

इन्द्रिय पर्याप्ति–यथायोग्य द्रव्येंद्रियोंके स्थानरूप प्रदेशोंसे वर्णादिक ग्रहण रूप उपयोगकी शक्तिकी प्राप्ति जो पर्याप्त जीवोंके एक अंतर्मुहूर्तमें पूरी होती है (गो० जी० गा० ११९)।

इन्द्रिय मुण्ड–पांचों इंद्रियोंका मुण्डना, अपने२ विषयोंके व्यापारको छुड़ाना (मू० गा० १२१)।

इंद्रिय विवेक–इंद्रिय विषयोंसे वैराग्य।

इंद्रिय विषय–स्पर्शन इंद्रियका विषय। आठ प्रकारका स्पर्श है। रसनाका पांच तरहका रस है, घ्राणका दो तरह गंध है, चक्षुका पांच तरहका वर्ण है। कर्णका सात स्वर गानेके हैं। एकेंद्रिय जीवोंके स्पर्शन इंद्रियका विषय चारसौ धनुष है। यही विषय द्वेन्द्रिय आदि असैनी पंचेन्द्रिय तकके दूना दूना है। इतने क्षेत्र दूरके विषयको पाकिर स्पर्श द्वारा जान सके। द्वेंद्रियके रसनाका विषय चौंसठ धनुष है, असैनी पंचेंद्रियतक दूना दूना है। तेन्द्रियके घ्राणका विषय सौ धनुष है। आगे दूना दूना असैनी पंचेंद्रिय तक है, चौंद्रियके नेत्रका विषय २९५४ योजन है। इससे दूना असैनी पंचेंद्रियके है, असैनी पंचेंद्रियके श्रोत्रका विषय आठ हजार धनुष है। सैनी पंचेंद्रियके स्पर्शन, रसना व घ्राण उत्कृष्ट विषय नौ नौ योजन है। नेत्रका सैंतालीस हजार दोसौ तेसठ योजन व साठ योजनका बीसवां भाग (४७२६३$\frac{7}{20}$) है। कर्णका विषय बारह योजन उत्कृष्ट है। (गो० जी० गा० १६८–१६९)

इन्द्रियावलोकन [illegible]–[illegible] अंगोंको राग भावसे देखना [illegible] (श्रा० पृ० २०७)।

महाराज अर्जुनदेवके वि० सवंत् १२७२ के दानपत्रके अन्तमें लिखा हुआ है:—“ रचितामिदं महासान्धि० राजा सलखणसंमतेन राजगुरुणा मदनेन ” इससे ऐसा मालूम होता है कि पं० आशाधरके पिता सलखण (सल्लक्षण) महाराजा अर्जुनदेवके सान्धिविग्रह सम्बन्धी मंत्री थे। यद्यपि आशाधरके पिता महाजन थे और दानपत्रमें सम्मति देनेवाले सलखणके साथ ‘ राजा ’ पद लगा हुआ है, इससे अन्य किसी सलखण नामक राजाकी भी संभावना भी हो सकती है, परन्तु आशाधरके पिताका संधिविग्रहको मंत्रियोंका राजा होना कुछ आश्चर्यकी बात भी नहीं है। क्योंकि उस समय प्रायः महाजन लोग ही राज्यमंत्री होते थे।

अब हम यहांपर तीनों ग्रंथोंकी प्रशास्तियोंके बाकी श्लोक जो ऊपर कहीं नहीं लिखे गये हैं, भावार्थसहित उद्धृत करते हैं:—

प्राच्यानि संवर्ज्य जिनप्रतिष्ठाशास्त्राणि दृष्ट्वा व्यवहारमैन्द्रम्।
आम्नायविच्छेदतमश्छिदोऽयं ग्रन्थःकृतस्तेन युगानुरूपम् १४
खण्डिल्यान्वयभूषणाल्हणसुतः सागारधर्मे रतो
वास्तव्यो नलकच्छचारुनगरे कर्ता परोपक्रियाम्।
सर्वज्ञार्चनपात्रदानसमयोद्योतप्रतिष्ठाग्रणीः
पापासाधुरकारयत्पुनरिमं कृत्वोपरोधं मुहुः॥ १५॥
विक्रमवर्षसपञ्चाशीतिद्वादशशतेष्वतीतेषु।
आश्विनसितान्त्यदिवसे साहसमल्लापराख्यस्य—॥ १६॥
श्रीदेवपालनृपतेः प्रमारकुलशेखरस्य सौराज्ये।
नलकुच्छपुरे सिद्धो ग्रन्थोऽयं नेमिनाथचैत्यगृहे॥ १७॥

आकार ढाईद्वीप प्रमाण ४५ लाख योजन चौड़ी गोल सिद्ध शिला है, यह मध्यमें आठ योजन है फिर अंतपर्यंत घटती गई है। ऊपर तल समान है नीचेसे घट बढ़ है। अंतमें थोड़ा मोटा है जैसे ऊँचा रक्खा हुआ कटोरा होता है वैसे है, इसी सिद्ध शिलाकी सीधमें तनुवातवलयमें लोकशिखरपर सिद्ध भगवान विराजते हैं (त्रि. गा. ५५६-५५८) यह पृथ्वी शाश्वत् रहती है, सर्वार्थसिद्धि विमानसे बारह योजन ऊँची है। इस पृथ्वीके ऊपर बड़े दो कोस मोटी घनोदधि पवन है, फिर बड़े एक कोस मोटी घन पवन है फिर बड़े १५७५ धनुष मोटी तनु पवन है इसी वातवलयके अंतमें उत्कृष्ट छोटे पांचसे पचीस धनुष व जघन्य साढ़े तीन हाथके आकार धरे सिद्ध भगवान अचल तिष्ठते हैं (म.पु. ६२९)

ईशान इन्द्र-सौ धर्म ईशानके उत्तर दिशाके श्रेणीबद्ध विमानमें ईशान नामका दूसरा कल्पवासी इन्द्र रहता है।

ईशान स्वर्ग-दूसरा स्वर्ग-स्वर्गकी देवियां दूसरे स्वर्ग तक ही पैदा होती हैं। इस स्वर्गमें ४ लाख बिमान देवियोंके उपजनेके हैं।

ईश्वर-परम ऐश्वर्य अनंतज्ञानादि धारी सिद्ध या अरहंत परमात्मा जो सर्वज्ञ व वीतराग हैं, कृतकृत्य हैं, न कुछ बनाते न विगाड़ते हैं, अपने आत्मानंदमें मगन हैं।

ईश्वरका कर्तव्य-ट्रैक्ट, अंबाला शहर जैन सभा द्वारा मुद्रित।

ईश्वरवाद-वह एकांत मत जो ऐसा मानता है कि यह आत्मा ज्ञान रहित व अनाथ है, कुछ करनेको समर्थ नहीं है। इस आत्माके सुख दुःख स्वर्ग नरक आदिमें गमनादिक सर्व ईश्वरका किया होता है। सर्व कार्य ईश्वरकृत मानना (गो०क०गा० ८८०)

ईश्वरवादी-जो ईश्वरवाद मतको माननेवाले है, जो ईश्वरको कर्ता व फलदाता मानते हैं।

ईश्वरास्तित्व-एक ट्रैक्ट अम्बाला शहर जैन सभा द्वारा मुद्रित।

ईषत्संक्लेश परिणाम-कर्मोंकी स्थितिबन्धको कारण कषायरूप अध्यवसाय स्थान होता है उनमें उत्कृष्ट स्थितिको कारण असंख्यातलोक प्रमाण परिणाम हैं उनके पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण खंड किये जावें तब अंतके खंडमें जो परिणाम बहुत कषायरूप पाइये तिनको उत्कृष्ट संक्लेश कहिये। प्रथम खंडमें जो परिणाम थोड़े कषायरूप पाइये उनको ईषत संक्लेश कहिये। दोनों खंडोंके बीच जो खंड हैं उनके परिणामोंको मुख्य संक्लेश कहिये (गो० क० गा० १३८)

ईहा-मतिज्ञानके चार भेदोंमेंसे दूसरा भेद दर्शन इन्द्रिय व पदार्थके संबन्धके समय होता है उसके पीछे जो कुछ ग्रहण होता है वह अवग्रह है, उसके पीछे उसके विशेष जाननेकी उत्कंठा सो ईहा है। ईहामें जैसा वह पदार्थ उस तरफ झुकता हुआ ज्ञान होता है ढीला ज्ञान है जैसे दूरसे कबूतर देखा तब इतना ज्ञान कि कबूतर मालूम होता है। यह ईहा ज्ञान है। कबूतर ही है यह उसके पीछे होनेवाला अवायज्ञान है (सर्वा० अ० १।१५)।

उ

उक्त-कहा हुआ पदार्थ।

उग्रवंश-भरतके प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवके समयमें स्थापित। काश्यप राजा प्रथम उग्रवंशी हुआ (इ० १ पृ० २३)।

उग्रसेन-श्री नेमिनाथ तीर्थंकरकी मांग राजुलके पिता।

उग्राचार्य-कनकद्वीप व कल्याणकारक वैद्यक कर्ता (दि० ग्रं० नं० ३२)।

उग्रादित्याचार्य-निघण्टु महाद्य राम निघण्टु वैद्यकके कर्ता (दि० ग्रं० नं० ३२)।

उच्च गोत्र-वह कर्म जिसके उदयसे लोक पूजित व लोक मान्य कुलोंमें जन्म हो (सर्वा.अ. ८।१२)

उच्छादन-छिपाना।

उच्छ्वास-स्वास्थ्य पुरुष पुरुषकी निरोगी पुरुषकी नाड़ीका फड़कना। एकवार फड़कनेका काल

हुए और न्यासग्रंथको अच्छी तरहसे जाननेवाले केल्हणने पाठ करनेके लिये जिनयज्ञकल्पकी पहली पुस्तक लिखी ।

सोऽहं आशाधरो रम्यामेतां टीकां व्यरीरचम् ।
धर्मामृतोक्तसागारधर्माष्टाध्यायगोचराम् ॥ १७ ॥
प्रमारवंशवार्धीन्दु—देवसेननृपात्मजे ।
श्रीमज्जैतुगिदेवेसि स्थाम्नावन्तीमवत्यलम् ॥ १८ ॥
नलकच्छपुरे श्रीमन्नेमिचैत्यालयेऽसिधत् ।
टीकेऽयं भव्यकुमुदचन्द्रिकेत्युदिता बुधैः ॥ १९ ॥
षण्णवद्ध्येकसंख्यानविक्रमाङ्कसमात्यये ।
सप्तम्यामसिते पौषि सिद्धेयं नन्दताच्चिरम् ॥ २० ॥
श्रीमान्श्रेष्ठिसमुद्धरस्य तनयः श्रीपौरपाटान्वय—
व्योमेन्दुः सुकृतेन नन्दतु महीचन्द्रोदयाभ्यर्थनात् ।
चक्रे श्रावकधर्मदीपकमिमं ग्रंन्थं बुधाशाधरो—
ग्रंथस्यास्य च लेखितो मलभिदे येनादिमं पुस्तकम् ॥२१॥

अलमितिप्रसंगेन—

यावत्तिष्ठति शासनं जिनपतेश्छेदानमन्तस्तमो—
यावच्चार्कनिशाकरौ प्रकुरुतः पुंसां दृशामुत्सवम् ।
तावत्तिष्ठतु धर्मसूरिभिरियं व्याख्यायमानानिशं—
भव्यानां पुरुतोत्र देशविरताचारप्रबोधोद्धुरा ॥ २२ ॥

इत्याशाधरविरचिता स्वोपज्ञधर्मामृतसागारटीका भव्यकुमुदचन्द्रिका-नाम्नी समाप्ता ।

उत्तमार्थ प्रतिक्रमण–जन्मपर्यंत लगे हुए दोषोंकी शुद्धि करना (मू० गा० १२०)।

उत्तमार्थ मरण–उत्तम प्रयोजन जो मोक्ष उसका साधक मरण समाधिमरण। जहां समताभावसे आत्मध्यान करते हुए मरण हो (भ० पृ० २६३)।

उत्तर कर्म प्रकृति–मूल कर्म आठ हैं उनकी भेदरूप १४८ या १५८ कर्म प्रकृतियां हैं। ज्ञानावरणकी ५, दर्शनावरणकी ९, वेदनीयकी २, मोहनीयकी २८, आयुकी ४, नामकी ९३ या १०३, गोत्रकी २, व अंतरायकी ५। नाम कर्ममें ५ शरीरके स्थानमें १५ शरीर नाम कर्म लेनेसे १०३ होती हैं (सर्वा० अ० ८–५)।

उत्तर कुरु–यह उत्तम भोगभूमि विदेहके भीतर उत्तर ओर है जहां तीन पल्य धारी युगलिया उत्पन्न होते हैं (त्रि० गा० ६५३) इसका क्षेत्र धनुषाकार है। दो गजदंतके बीच जितनी कुलाचलकी लम्बाई वह जीवा है। जीवा व मेरुके बीचका क्षेत्र है सो बाण है। यहां सुखमा सुखमा काल वर्तता है। (त्रि० गा० ३५७–८८२); सीता नदीका दूसरा द्रह (त्रि० गा० ६५७); गंधमादन गजदंत या तीसरा कूट (त्रि० गा० ७४१)।

उत्तर कौरव–माल्यवान गजदंतपर तीसरा कूट (त्रि० गा० ७३८)।

उत्तर गुण–मुनिके मूलगुण २८ व उत्तर गुण ८४ लाख होते हैं। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, अरति, रति, जुगुप्सा, मन चञ्चलता, वचन चंचलता, काय चंचलता, मिथ्यादर्शन, प्रमाद, पैशून्य, अज्ञान, इंद्रियोंका वश करना, ये २१ दोष हैं। इनको अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतीचार व अनाचारसे गुणना तब ८४ हुए। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, साधारण वनस्पति, प्रत्येक वनस्पति, द्वेंद्रिय, तेंद्रिय, चौंद्रिय, पंचेंद्रिय, इन १०को आपसमें गुणा करनेसे १०० भेद होते हैं। ८४को १००से गुणा करो, ८४०० हुए, इनको १० शील विराधनासे गुणा करे, १ स्त्री संसर्ग, २ पुष्टाहार, ३ गंधमाला, ४ कोमल शैया आसन, ५ आभूषण, ६ गीत वादित्र, ७ धनसंग्रह, ८ कुशील संगति, ९ राजसेवा, १० रात्रिगमन तब ८४००० भेद हुए। इनको १० आलोचना दोषसे गुणा करे, वे हैं आकंपित, अनुमानित, दृष्ट, बादर, सूक्ष्म, प्रच्छन्न, शब्दाकुलित, बहुजन, अव्यक्त, तत्सेवी, तब ८ लाख ४० हजार भेद हुए। इनको १० शुद्धिरूप प्रायश्चित्तसे गुणा करे। ये हैं आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार, श्रद्धान। तब ८४ लाख भेद मुनि चारित्रके होते हैं (मू० गा० १०२४–१०३१)

श्रावकके मूलगुण आठ होते हैं, वे यदि श्री समंतभद्राचार्यके अनुसार लिये जावें तो स्थूलरूपसे अहिंसादि पांच अणुव्रत व मद्य, मांस, मधुका त्याग है। इनके उत्तर गुण अतीचार रहित पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, दिग्विरति, देशविरति व अनर्थदण्डत्याग विरति व चार शिक्षाव्रत–सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण व अतिथि संविभाग इन १२ व्रतोंको शुद्ध पालना है (श्रा. अ. १–४)

उत्तर गुण निर्वर्तना अधिकरण–निर्वर्तना रचनाको कहते हैं, उसके दो भेद हैं, मूलगुण निर्वर्तना–शरीर, वचन, मन, व श्वासोच्छ्वासका बनना, उत्तर गुण निर्वर्तना–काठकी चौकी, चित्र, मूर्ति, मकान आदि जो पदार्थ शरीरादिसे बने। ये दोनों अजीवाधिकरणके भेद हैं, इनके आधारसे कर्मोंका शुभ या अशुभ आस्रव होता है (सर्वा. अ. ६–९)

उत्तरचर–पूर्व जो होगया है उसकी वर्तमानसे सिद्धि, जैसे एक मुहूर्त पहले ही भरणीका उदय हो गया है। क्योंकि अब कृत्तिकाका उदय होरहा है (प० मु० ३–६९)।

उत्तर छत्तीसी–दिगम्बर जैन सरस्वती भवन बम्बईका एक ग्रन्थ।

उत्तरपुराण–श्री गुणभद्राचार्य कृत संस्कृतमें

बहुदेवात्मजाश्चासन्हरदेवः स्फुरद्गुणः ।
उदयिस्तम्भदेवश्च त्रयस्त्रैवर्गिकादृताः ॥ २५ ॥
मुग्धबुद्धिप्रबोधार्थं महीचन्द्रेण साधुना ।
धर्मामृतस्य सागारधर्मटीकास्ति कारिता ॥ २६ ॥
तस्यैव यतिधर्मस्य कुशाग्रीयधियामपि ।
सदुर्वोधस्य टीकायै प्रसादः क्रियतामिति ॥ २७ ॥
हरदेवेन विज्ञप्तो धनचन्द्रोपरोधतः ।
पण्डिताशाधरश्चक्रे टीकां क्षोदक्षमामिमाम् ॥ २८
विद्वद्भिर्भव्यकुमुदचन्द्रिकेत्याख्ययोदिता ।
तिष्ठाप्याकल्पमेषास्तां चिन्त्यमाना मुमुक्षुभिः ॥ २९ ॥
प्रमारवंशवार्धीन्दुदेवपालनृपात्मजे ।
श्रीमज्जैतुगिदेवोसि स्थाम्नावन्तीमवत्यलम् ॥ ३०॥
नलकच्छपुरे श्रीमन्नेमिचैत्यालयेसिधत् ।
विक्रमाब्दशतेष्वेषा त्रयोदशसु कार्तिके ॥ ३१ ॥
अनुष्टुप्छन्दसामस्याः प्रमाणं द्विशताधिकैः ।
सहस्त्रैर्द्वादशमितैर्विज्ञेयमनुमानतः ॥ ३२ ॥

अलमातिप्रसंगेन—

शान्तिः शं तनुतां समस्तजगतः संगच्छतां धार्मिकैः
श्रेयः श्रीः परिवर्धतां नयधुराधुर्यो धरित्रीपतिः ॥
सद्विद्यारसमुद्गिरन्तु कवयो नामाप्यघस्यास्तु मा
प्रार्थ्यं वा कियदेक एव शिवकृद्धर्मोजयत्वर्हताम् ॥ ३३ ॥

इत्याशाधरविरचिताभव्यात्महरदेवानुमता
धर्मामृतयतिधर्मटीका समाप्ता ॥

उत्पाद—उत्पत्ति, पैदाइश; द्रव्यमें नवीन पर्यायकी उत्पत्ति। जैसे सुवर्णका कड़ा तोड़कर बाली बनाई। यहां कड़ेका व्यय या नाश हुआ, बालीका उत्पाद हुआ, तथापि सोना वही ध्रौव्य या कायम है। द्रव्यमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यके तीन स्वभाव सदा पाए जाते हैं (सर्वा० अ० ५–३०)।

उत्पाद पूर्व—दृष्टिवाद नाम १२वें अँगमें १४ पूर्व होते हैं। उनमेंसे पहला पूर्व, इसमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यका कथन है। तीन काल अपेक्षा इसके ९ भेद भए जैसे उपजा था उपजे है, उपजेगा, नष्ट भया, नष्ट होता है, नष्ट होगा। स्थिर था स्थिर है, स्थिर रहेगा। ऐसे नौ भेद भए, ऐसे नौप्रकार द्रव्य भया। इस प्रत्येकको नौ नौ स्वभावोंसे कहना। अर्थात् हरएकमें तीन काल अपेक्षा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य लगाना। ऐसे ८१ भेदोंसे द्रव्यका स्वरूप वर्णित है। इसके एक करोड़ मध्यमपद हैं (गो०जी० गा० ३६५)।

उत्पादन दोष—भोजन पैदा करनेवाले दोष—साधु ४६ दोष रहित आहार करते हैं उनमें १६ वे दोष हैं, देखो शब्द "आहार दोष"।

उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय—जो नय उत्पाद व्यय सहित सत्ताको ग्रहण करके एक समयमें तीन पनेको ग्रहण करता है। जैसे द्रव्य एक समयमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है। (सि० द० ए० ८)।

उत्संज्ञा संज्ञा—अनंतानंत परमाणुका समूह।

उत्सर्ग—त्याग, मलमूत्र त्याग।

उत्सर्ग मार्ग—जैन मुनियोंके चारित्रके दो भेद हैं—१ उत्सर्ग मार्ग—जहां पूर्ण त्याग होकर शुद्धोपयोगरूप परम वीतराग संयम हो, २ अपवाद मार्ग—जहां शुद्धोपयोगके बाहरी साधन आहार-विहार, निहार, पठन पाठन आदि शुभोपयोग रूप सराग संयम हो (प्रा० ए० २६०); जिस चारित्रको मन वचन काय, कृत कारित अनुमोदनासे नौ कोटि शुद्ध पाला जाय वह उत्सर्ग मार्ग है। इससे कम हो वह अपवाद मार्ग है। जैसे हिंसाको नौ प्रकार त्यागना उत्सर्ग मार्ग है। इससे कम विचित्र रूप त्यागना अपवाद मार्ग है (पु० श्लोक ७६)।

उत्सर्ग लिंग—शुद्धतासे जिनके मुनिका चारित्र हो, अंतरंगमें भी सामायिक चारित्र हो बाहरमें भी यथार्थ साधुका द्रव्य लिंग हो। लिंग शुद्धि सहित त्याग (मू० ७७३–७७७)।

उत्सर्पिणीकाल—ढाईद्वीपमें पांच भरत व पांच ऐरावतमें आर्यखंडके भीतर उत्सर्पिणी व अवसर्पिणीके छः छः काल पलटते हैं। जिस कालमें तिष्ठे जीवोंके क्रमसे शरीरकी ऊँचाई, आयु, शरीरका बल बढ़ता जाय वह उत्सर्पिणी है, जहां घटता जाय वह अवसर्पिणी है। अवसर्पिणीमें जो छः काल होते हैं उनसे उलटे इसमें होते हैं। देखो शब्द "अवसर्पिणी काल।" यहां भरतमें अवसर्पिणीका दुःखमा नामक पंचमकाल चल रहा है। इसके बाद छठा काल लगेगा। फिर उत्सर्पिणीका प्रारम्भ होगा। उसके तीसरे कालमें अर्थात् दुःखमा सुखमामें जो ४२००० वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरका होगा, राजा श्रेणिकका जीव महापद्म पहला तीर्थंकर व अनंतवीर्य चौबीसवां तीर्थंकर होगा (त्रि० गा० ७७९–८६८)।

उत्सेध—ऊंचाई; वेध; (त्रि० गा० १९–१७)

उत्सेध अंगुल—कर्मभूमि वालोंके आठ बालाग्रकी एक लीख व आठ लीखका एक सरसों, आठ सरसोंका एक जौ, आठ जौका एक उत्सेधांगुल। इसी अंगुलसे चार गतिके जीवोंका शरीर, देवोंके नगर व मंदिर आदिका परिमाण होता है। इससे पांचसौ गुणा प्रमाणांगुल होता है (सि. द. पृ. ६९)

उदक—जल, राक्षस आदिके व्यंतरोंके सात भेद हैं उनमें चौथा भेद (त्रि० गा० २६७); लवण समुद्रके दक्षिण दिशा वर्ती पातालके दोनों तरफ दो पर्वत हैं उनमें पहलेका नाम (त्रि० गा० ९०५); लवणसमुद्रकी पश्चिम दिशा वर्ती पातालके दोनों

पं० आशाधरके विषयमें जितना परिचय मिल सका, वह हमने पाठकोंके आगे निवेदन कर दिया। इससे अधिक परिचय पानेके लिये आशाधरके दूसरे ग्रन्थोंकी खोज करना चाहिये। मालवामें प्रयत्न किया जावे, तो हमको आशा होती है कि, उनके बहुतसे ग्रन्थ मिल जावेंगे। इस विषयमें हमने नालछाके एक सज्जनको लिखा था, जो कि जैनहितैषीके ग्राहक हैं। परन्तु उन्होंने हमको कुछ उत्तर भी नहीं दिया!

इस लेखके लिखनेमें हमको सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझासे बहुत कुछ सहायता मिली है, इस लिये हम उनका हृदयसे आभार मानते हैं।

उदीरणा–स्थिति विना पूरी किये ही कर्मोंका फल देना (जै० सि० प्र० नं० ३७१)।

विनाही काल आए अपक कर्मका पचना (गो० क० गा० १५९)।

उदीरणा मरण–विष शस्त्रादिके निमित्तसे कर्मभूमिके मनुष्य व तिर्यंचोंका अपनी बांधी हुई आयुकी स्थितिके पहले ही आयु कर्मके निषेक झड़ जानेसे मर जाना; कदलीघात मरण, जैसे तेलसे भरा प्रदीप पवनके योगसे बुझ जाय तैसे पूर्ण आयुका छेद निमित्त मिलनेसे होजाय। देव नारकी भोगभूमिया व चरम देहधारीके उदय मरण है। पूरी आयु भोगके मरते है (चर्चा समाधान नं० १००)।

उदीरणा व्युच्छित्ति–जिन कर्मोंकी उदीरणा किसी गुणस्थान तक हो आगे न हों। उदीरणाका अभाव (गो० क० गा० २८१)।

उद्गम दोष–मुनियोंके आहारमें ४६ दोष न लगने चाहिये, उनमें १६ उद्गम दोष, देखो 'आहार दोष' (मू० गा० ४२३)।

उद्दायन राजा–यह निर्विचिकित्सा अंगमें प्रसिद्ध हुए। रौरवक नगरके राजा थे। रानी प्रभावती। दोनों सम्यक्ती थे। एक देवने परीक्षार्थ नया मुनिभेष बनाकर आहार लिया, कई दफे वमन किया, दोनोंने ग्लानि न की, बहुत सेवा की, तब देवने सम्यक्ती जान प्रतिष्ठा की (आ० कथा नं० ८)।

उद्दिष्ट–जिसका विचार किया हो, उद्देश बांधा हो। नियत की हुई। किसी अक्षको घरके संख्याका लाना जैसे प्रमादोंके कथनमें प्रमाद ८० हैं। ४ विकथा ×४ कषाय × ५ इंद्रिय ×१ निद्रा ×१ स्नेह=८० अस्सी भंग होंगे। जैसे स्नेहवान निद्रालु स्पर्शनेंद्रिय वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथा आलापी भंग नं० १; स्नेहवान निद्रालु रसनाइंद्रियके वशीभूत स्त्रीकथालापी भंग नं० २; स्नेहवान् निद्रालु घ्राणइं० क्रोधी स्त्रीक० भंग नं० ३; स्ने० नि० चक्षुइं० क्रोधी स्त्री० भंग नं० ४; स्नेह० नि० श्रोत्रइं० क्रोधी स्त्री० भंग नं० ५। क्रोधके स्थानमें मान माया लोभ पलटनेसे २० भंग हुए। अब स्त्रीकथाको पलटके भक्तकथा फिर राष्ट्रकथा फिर राज कथा ऐसे २०, २० भंग सब ८० भंग हुए। उद्दिष्ट लानेका अर्थात् कौनसा प्रमाद है। ऐसा बतानेका नियम यह है कि पहले १को रखके फिर इंद्रिय पांचसे गुणे, उनमेंसे जिन इंद्रियोंको आगेकी न गिना हो उनकी संख्याको घटादे, जो बचे उसको कषाय चारसे गुणे, उनमें आगे न कहे हुए कषायोंकी संख्याको घटादे, जो बचे उसको चार विकथासे गुणे, फिर आगे न कही हुई विकथाकी संख्या घटादे, जो बचे उतने नम्बरका प्रमाद होगा। उदाहरण जैसे किसीने पूछा कि राष्ट्र कथालापी लोभी स्पर्शनेंद्रियके वशीभूत निद्रालु स्नेहवान कौनसा आलाप है? तब ऊपरके नियमसे करना–१×५=५–४ इंद्रिय=१=१×४ कषाय=४–० क्योंकि लोभके आगे कोई कषाय नहीं है तब ४ हुए ४×४ विकथा=१६–१ कथा राज कथा=१५। उत्तर हुआ कि यह पंद्रह नं०का आलाप है, यह उद्दिष्ट है।

इसी तरह ऊपर कहा नं० १ का भंगका उद्दिष्ट निकाले। अर्थात् स्नेहवान निद्रालु स्पर्शनेंद्रिय वशीभूत क्रोधी स्त्री कथालापी। १×४ विकथा=४–३ विकथा=१–१×४ कषाय=४–३ कषाय=१×५ इंद्रिय=५, ५–४ इंद्रिय=१। इस तरह यह पहले नं०का आलाप हुआ, यही उद्दिष्ट है (गो० जी० गा० ४२)।

उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा–११ वीं प्रतिमा–जिसमें अपने निमित्त किये भोजन लेनेका त्याग होता है। यह प्रतिमावाला पहली प्रतिमाओंके नियम पालता है। भिक्षासे भोजन करता है, देखो शब्द 'उत्कृष्ट श्रावक' ([illegible])।

उद्दिष्ट दोष– } साधुके उद्देशसे किया हुआ
उद्देश दोष– } भोजन साधुको देना। इस दोषके चार भेद हैं–

१ उद्देशदोष–[illegible]

जिस प्रकार महाराज विक्रमादित्यकी सभामें **कालिदास**, **अमरसिंह** आदि नव रत्न थे, सुनते हैं, उसी प्रकार मुंजकी सभामें भी अनेक कविरत्न थे। तिलकमंजरीके कर्त्ता **धनपाल**, दशरूपकके कर्त्ता **धनिक**, पिंगलसूत्रवृत्तिके प्रणेता **हलायुध**, नवसाहसाङ्कचरितके कर्ता **पद्मगुप्त** कवि और हमारे इस लेखके नायक महात्मा **अमितगति** इन्हीं महाराजके राज्यकालमें हुए हैं। पुण्यात्मा राजाके राज्यमें ही ऐसे विद्वान् अवतार लेते हैं।

महाराज मुंजका एक दानपत्र विक्रम संवत् १०३६ का प्राप्त हुआ है, जिसपर उनके हाथकी सही है और जिसे उनके प्रधान मंत्री रुद्रादित्यने लिखा था। और विक्रम संवत् १०७८ में तैलंग देशके राजा तैलिपदेवके द्वारा उनकी मृत्यु हुई थी। तथा उनकी मृत्युके पश्चात् भोजमहाराजका राज्याभिषेक हुआ था। यथाः—

विक्रमाद्वासरादष्टमुनिव्योमेन्दु (१०७८) संमिते।
वर्षे मुञ्जपदे भोजभूपः पट्टे निवेशितः।

मुंजका[1] राज्याभिषेक कब हुआ था, इसका ठीक २ पता नहीं लगता है परन्तु संवत् १०३६ के कुछ वर्ष पहलेसे १०७८ तक वे मालवदेशके राजा रहे हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। महात्मा

---

१. श्रीमेरुतुंगाचार्यने प्रवन्धचिन्तामणिमें मुंजकी विस्तृत कथा लिखी है। समयानुसार उसे प्रकाश करनेका विचार है। उक्त कथाका पूर्व भाग विनोदीलालकृत भक्तामरचरित्रमें भी लिखा है।

उपकेश—देखो शब्द "ओसवाल"।

उपकल्की—अवसर्पिणीके इस पंचमकालमें अंतिम तीर्थंकर मोक्ष जानेके पीछे हजार हजार वर्ष पीछे कल्की राजा व उनके मध्यमें ५०० वर्ष पीछे एक एक उपकल्की राजा होते हैं (सि०द०पृ० १२०)

उपक्रम—जिस पदार्थके निरूपण करनेकी प्रतिज्ञा की है। श्रोताओंको उसका स्वरूप समझा देना उपक्रम है। दूसरा नाम उपोद्घात भी है, इसके ५ भेद हैं। १ आनुपूर्वी—क्रमसे प्रथमानुयोग आदि चारोंको गिनना, चाहे पहलेसे चाहे उल्टा; २ नाम—ग्रन्थका नाम रखना; ३ प्रमाण—श्लोक व अक्षर संख्या नियत करना; ४ अभिधेय—ग्रन्थका कथन ५ अर्थाधिकार—जीवाजीव नव पदार्थ कथन। (आ० प० २।१०४)।

उपगूहन (उपबृंहण)—सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंमेंसे पांचवां अंग। अपने आत्माके गुणोंको बढ़ाना व दूसरोंके दोषोंको प्रकाश न करना (पु० श्लो० २७)।

उपग्रह—उपकार।

उपघात नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे अपने अंगोंसे अपना घात हो (जै० सि० प्र० नं० ३०४)।

उपचरित असद्भूत व्यवहारनय—अमति भिन्न पदार्थोंको अभेदरूप ग्रहण करे या अपने माने जैसे हाथी, घोड़ा, महल मेरे हैं (जै० सि० प्र० नं० १०४)।

उपचरित महाव्रती—जो श्रावक दिग्विरतिमें दस दिशाकी मर्यादा कर लेता है व मर्यादाके बाहर कोई पापारम्भ नहीं करता है, इसलिये उसकी अपेक्षा वह महाव्रती तुल्य है अर्थात् वह उपचरित महाव्रती है (पु० श्लो० १३८)।

उपचरित व्यवहारनय—देखो "उप० असद्० व्यवहारनय।"

उपचार विनय—आचार्यादिको व देवशास्त्रको शरीरसे व वचनोंसे विनय करना, खड़ा होना, हाथ जोड़ना, उच्च विराजना आदि (सर्वा० अ० ९।२३)।

उपदेश शतक—दि० जैन सरस्वती भवन बंबईमें एक ग्रन्थ।

उपदेश सम्यक्त—तीर्थंकर चक्रवर्ती आदिके चरित्रके उपदेशसे जो सम्यक्त हो (भ०पृ० ९१७)।

उपधानाचार—स्मरण सहित व सावधान सहित शास्त्र पढ़ना (श्रा० पृ० ७२) सम्यग्ज्ञानके ८ अंगोंमेंसे छठा अंग।

उपधि विवेक—धर्मोपकरण शास्त्र कमंडल पीछी विना अन्य शस्त्र वस्त्र आभूषण वाहनादि उपकरणोंको मन वचन कायसे ग्रहणका त्याग (भ० पृ० ७२)।

उपनय—पक्ष और साधनमें दृष्टांतकी सदृशता दिखाना। जैसे यह पर्वत भी वैसा ही धूमवान है (जै० सि० प्र० नं० ६७) व्यवहारनय (सि० द० पृ० ६)।

उपनयन ब्रह्मचारी—जो बालक उपनीति संस्कारके पीछे गुरुकुलमें रहकर जनेऊ रखता हुआ आगमका अभ्यास करे। पीछे गृह धर्ममें रह सके (ग्र० अ० १३)।

उपनयन संस्कार—
उपनीति क्रिया— } यह बालकोंके लिये १४वां संस्कार है। जब बालक ८ वर्षका होजाय तब या उसके पीछे जनेऊ संस्कार कराना रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्रका चिह्न—तीन तारका जनेऊ पहराना। हिंसादि पांच स्थूल पापके त्यागका उपदेश देना, जबतक विद्या पढ़े ब्रह्मचर्य पाले, सादेपनेसे जीवन बितावे (गृ० अ० ४)।

उपपाद—उत्पत्ति, जन्म।

उपपाद ग्रह—स्वर्गोंमें देवोंकी उत्पत्तिका गृह। यह मानस्तम्भके पास आठ योजन [illegible] होता है (त्रि० गा० ५२२)।

उपपाद जन्म—संसारी जीवोंमें देवनारकियोंका जन्म। देवोंका [illegible] नारकियोंका [illegible] [illegible] अंतर्मुहूर्तमें पूर्ण [illegible]

दिये हैं। अर्थात् उस समय उनकी अवस्था खूब प्रौढ़ होगी और दीक्षा लिये हुए बहुत कम हुए होंगे; तो चार छह वर्ष ज़रूर हो चुके होंगे। इसके सिवाय यह भी अनुमान होता है कि उन्होंने बालकपनमें ही दीक्षा नहीं ले ली होगी, किन्तु कुछ काल गृहस्थाश्रमका अनुभव करके और फिर उससे विरक्ति लाभ करके ली होगी। धर्मपरीक्षाकी रचनामें उन्होंने जिस प्रकारकी व्यवहारकुशलता दिखलाई है, और सांसारिक घटनाओंके जैसे उत्तम चित्र खींचे हैं, उन्हें ध्यानस्थ करनेसे यह अच्छी तरहसे विश्वास हो जाता है कि, उन्होंने पहले संसारका भली भांति अनुभव कर लिया होगा। इस तरहसे सुभाषितकी रचनाके समय उनकी अवस्था बहुत कम होगी, तो २५–३० वर्षकी होगी अर्थात् उनका जन्म विक्रमसंवत् १०२५ के लगभग हुआ होगा। महाराज मुंज उस समय या तो राज्यारूढ़ होंगे, अथवा युवराज होंगे। धर्मपरीक्षा बना चुकनेके पश्चात्, आचार्य महाराजने संसारका और कब तक हितसाधन किया, यह उनके अन्यग्रन्थोंसे अथवा उनकी शिष्यपरंपराके ग्रन्थोंसे जाना जा सकता है। परन्तु खेद है कि, इस समय हमारे पास उक्त दोनों ही साधन नहीं है। धर्मपरीक्षा और सुभाषितके सिवाय **श्रावकाचार** नामका एक ग्रन्थ और भी प्राप्त है, परन्तु उसमें समयका उल्लेख बिलकुल नहीं है। नहीं कह सकते हैं कि, वह उक्त दो ग्रन्थोंसे पहलेका बना हुआ है, अथवा पीछेका। **शेठ हीराचंदजीने** रत्नकरंडश्रावकाचारकी भूमिकामें उसके बननेका समय वि० संवत् १०५० लिखा है; परन्तु वह अनुमानसे

उपवास–जहां पांचों इंद्रियां अपने २ विषयोंके रागसे छूटकर धार्मिक भावोंमें वर्ते उसको उपवास कहते हैं "शब्दादिग्रहणं प्रति निवृत्तौत्सुक्यानि पंचापीन्द्रियाण्युपेत्य तस्मिन् वसंति इति उपवासः" अथवा–खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय चार तरहका आहारका (सर्वा० अ० ७) उपवासके दिन श्रृंगाररूप स्नानादि न करना चाहिये। भगवानकी पूजा व सामायिकादि करे। उत्तम उपवास १६ पहर–पहले व अंतके दिन एकासन बीचमें उपवास। मध्यममें इसी बीचमें पानी ले या १४ पहरका करे। जघन्य १६ पहरके बीचमें पानी सिवाय एकासन भी करे या १२ पहर करे। जैसे सप्तमीकी सांझसे नौमीके प्रातःतक। १४ पहरमें सप्तमीको १ पहर दिनसे छोडे १ पहर दिन चढ़े नौमीतक। तीन घंटाका एक पहर होता है। उपवासके दिन विषय व क्रोधादि कषाय व आहार छोडे। यदि कषाय व विषय न त्यागे हों व धर्मध्यान न किया हो तो वह मात्र लंघन है। (गृ० अ० ८)

उपविष्टोत्थित कायोत्सर्ग–जहां बैठे आसनसे धर्मध्यान व शुक्लध्यान किया जावे।

(मू० गा० ६७६)

उपविष्ट निविष्ट–जहां बैठे आसनसे आर्त व रौद्रध्यान किया जाय (मू० गा० ६७७)

उपलब्धि–प्राप्ति, विधि या निषेध रूप हेतुसे किसी साध्यको सिद्ध करना।

उपशम–द्रव्य क्षेत्र काल भावके निमित्तसे कर्मकी शक्तिकी अप्रगटता या कर्मोंका फल न देना किन्तु सत्तामें बैठे रहना। कुछ कालके लिये दबे रहना। इसके दो भेद हैं (१) अंतःकरण उपशम–आगामी कालमें उदय आने योग्य कर्म परमाणुओंको आगे पीछे उदय आने योग्य कर देना। (२) सदवस्थारूप उपशम–वर्तमान कालको छोडकर आगामी कालमें उदय आने योग्य कर्मोंको सत्तामें रहना। (जै० सि० प्र० नं० २५१-२५४-२५२)

उपशम द्रव्य–जिन कर्म परमाणुओंको उदय आनेके अयोग्य कर दिया (ल० पृ० २९)

उपशम योग्य काल–सम्यक्तमोहनी और मिश्रमोहनीकी जो स्थिति पहले बांधी थी सो सत्तारूप त्रसके उसे ९ सागर प्रमाण हो व एकेंद्रियकी पल्यका असंख्यातवां भाग कम १ सागर प्रमाण रहे वहांतक वेदक योग्य काल है, उसके ऊपर जो सत्तारूप स्थिति कम हो तो उपशम योग्य काल है। (गो० क० गा० ६१९)

उपशम श्रेणी–आठवां अपूर्वकरण गुणस्थान, नौमा अनिवृत्तिकरण, दसवां सूक्ष्म लोभ, ग्यारहवां उपशांत मोह। इनमें जब अनंतानुबंधीको छोडकर शेष २१ प्रकृति चारित्र मोहनीयकी जहां मात्र उपशम की जावें, नाश न हों। उपशम श्रेणीसे साधु अंतर्मुहूर्त पीछे अवश्य गिरता है, सातवें या नीचे आजाता है या मरता है तो चौथेमें आता है। इस उपशम श्रेणीमें एक जीव मात्र चार बार चढ़ सक्ता है, फिर क्षपकश्रेणी ही चढ़े। (गो० क० गा० ६१९)

उपशम सम्यक्त–आत्मा व अनात्माका भेद ज्ञानपूर्वक जो श्रद्धा यथार्थ हो वह सम्यक्त है। अनादि मिथ्यादृष्टिके चार अनन्तानुबंधी कषाय तथा मिथ्यात्व इन पांचके तथा सादि मिथ्यादृष्टीके इन पांचके अथवा सम्यक्त मोहनी और मिश्रमोहनी मिलाकर सात प्रकृतिके उपशमसे जो पैदा हो इसका काल अंतर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है। यही मोक्षमार्गका प्रारम्भ है। जब भव्य जीवको अधिकसे अधिक एक अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल शेष रहता है तब ही यह उपशम होता है। इसको सैनी ही बुद्धिमान चार गतिवाले प्राप्त कर सके हैं। अंतर्मुहूर्त पीछे यातो सम्यक्त मोहनीके उदयसे वेदक सम्यक्त होजाता है या मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यात्व गुण० में। या अनंतानुबंधी कोई कषायके उदयसे सासादन गुण० में, या मिश्रके उदयसे मिश्र

लेनेसे होती है। अन्तर केवल इतना है कि, उपन्यासोंसे थोड़े समयके लिये मनोरंजन मात्र होता है, और इसके पढ़नेसे धर्ममें दृढ़ता होनेके सिवाय बहुज्ञता प्राप्त होती है। अर्थान्तर-न्यासोंकी और नीतिके खंडश्लोकोंकी इस ग्रन्थमें इतनी अधिकता है कि, यदि कोई उनको अलग चुनकर प्रकाशित करे, तो एक उत्तम पोथी बन सकती है, जिसे धर्मी विधर्मी सब ही विद्वान आदरपूर्वक ग्रहण कर सकते हैं।

धर्मपरीक्षा ग्रन्थ कैसा है, इसके लिये हम अधिक कुछ न लिखकर अपने पाठकोंसे उसके एक वार स्वाध्याय करनेका आग्रह करते हैं। यदि श्रीअमितगति महाराजने केवल धर्मपरीक्षा ही रची होती अन्य ग्रन्थ न रचे होते, तो यही एक उनके असाधारण पांडित्यको प्रगट करनेके लिये बस थी।

धर्मपरीक्षाके अतिरिक्त अमितगतिके बनाये हुए निम्नलिखित ग्रन्थोंका और भी उल्लेख मिलता है।

१ सुभाषितरत्नसंदोह।
२ श्रावकाचार।
३ भावनाद्वात्रिंशति।
४ पंचसंग्रह।
५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति।
६ चन्द्रप्रज्ञप्ति।
७ सार्द्धद्वयद्वीपप्रज्ञप्ति।
८ व्याख्याप्रज्ञप्ति।
९ योगसारप्राभृत।

---

१. धर्मपरीक्षा मूल और भाषासहित छप चुकी है। इसकी दो तीन भाषाटीकायें और भी हैं, जो अभीतक प्रकाश नहीं हुई हैं।

उष्ण परीसह-तीव्र गर्मीका कष्ट शांतभावसे साधुओं द्वारा सहना। (सर्वा० अ० ९-९)

उष्ण स्पर्श नामकर्म-वह नामकर्मकी प्रकृति जिससे शरीर उष्ण हो। (सर्वा० अ० ८-११)

ऊ

ऊनोदर-(अवमोदर्य) तप-दूसरा बाह्य तप, संयम सिद्धि, दोष शांति, संतोष व तप सिद्धिके लिये भूखसे कम खाना। पुरुषका स्वाभाविक आहार बत्तीस ग्रास है, उससे एक दो आदि ग्रास कम लेना (मू० गा० ३५०) स्त्रीका भोजन अट्ठाईस ग्रास प्रमाण होता है। एक हजार चावलका प्रमाण एक ग्रासका है। इसलिये ३२००० चावल पुरुषका व २८००० चावल स्त्रीका आहार होता है, उससे कम लेना। (अ० पृ० ८७)

ऊमर फल-गूलर फल, इसमें भुनगे उड़ते रहते हैं।

ऊर्जयंत तीर्थ-श्री गिरनार पर्वत काठियावाड़में जहांसे श्री नेमिनाथ तीर्थंकर व शंबु व अनिरुद्ध कुमार व ७२ करोड़ मुनि मुक्त गए हैं।

ऊर्ध्व अतिक्रम (ऊर्ध्व भाग व्यतिक्रम)-दिग्विरतिका पहला अतीचार। ऊपर जानेकी जो मर्यादा की गई उसको अज्ञान व प्रमादसे लांघकर आगे चले जाना। (सर्वा० अ० ७-३०)

ऊर्ध्वगति-शुद्ध जीव ठीक ऊपरको जाकर लोकशिखरपर विराजता है। ऊपर गमन जीवका स्वभाव है।

ऊर्ध्वलोक-मृदंगके आकार है, यह लोक १४ राजू ऊंचा है। सुमेरु पर्वतकी जड़ १००० योजन नीचे है। वहांकी चित्रा पृथ्वीसे नीचे सात राजू अधोलोक है। ऊपर सात राजू ऊंचा ऊर्ध्वलोक है। मेरु पर्वतके नीचे चित्रा पृथ्वीसे दूसरे ईशान स्वर्ग तक १॥ राजू फिर चौथे स्वर्ग तक १॥ राजू फिर ब्रह्मोत्तर छठे तक ॥ राजू, ३॥ राजू ऊपर जानेपर विस्तार पांच राजू है। मध्यलोकके यहां विस्तार एक राजू है। छट्टेसे आठवें स्वर्ग तक ऊंचा आध राजू। आठवेंसे १० वें तक आध राजू। दसवेंसे बारहवें तक आध राजू। १२ वेंसे १४ वें तक आध राजू। १४ वेंसे १६ वें तक आध राजू। सोलहवें स्वर्गसे सिद्धलोक तक १ राजू है। वहां लोकका विस्तार भी एक राजू है। दक्षिण उत्तर लम्बा सब जगह सात राजू है। ऊर्ध्वलोकका घन क्षेत्रफल दो भागोंसे निकालना चाहिये। मध्यलोकसे पांच राजू जहां चौड़ा व ३॥ राजू ऊंचा है वहांतक ऐसा ही दूसरी तरफ अंततक बराबर है सो मध्यलोकसे पांच राजू तक होगा।

$$५+१\times\frac{७}{२}\times\frac{७}{२}=\frac{६\times७\times७}{४}=\frac{१४७}{२}$$ घन राजू।

इतना ही दूसरी तरफ है तब कुल १४७ घन राजू भया। अधोलोक १९६ घन राजू है। जैसे $७\times१\times७\times\frac{७}{२}=\frac{८\times७\times७}{२}=१९६$ कुल ३४३ घन राजू क्षेत्र है। ऊर्ध्वलोकमें ही मध्यलोक गर्भित है इसमें १६ स्वर्ग+नौग्रैवेयिक+९ अनुदिश+५ अनुत्तर ऐसे कुल १९ विमान भूमि हैं। ऊपर शिखरपर सिद्धक्षेत्र है। (ह० पृ० ३१)

ऊर्मिमालिनी पश्चिम विदेहके सीतोदा नदीके तटमें तीसरी विभंगा नदी। (त्रि० गा० ६६९)

ऊहा=ईहा मतिज्ञान।

ऋ

ऋग्वेदके बनानेवाले ऋषि-एक दूसरा [illegible] हिंदीमें मुद्रित।

ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान-जो ज्ञान [illegible] सहायता बिना आत्मा से दूसरेके मन [illegible] कर्म चिन्तित व अचिन्तितमें चिन्तवन [illegible] भेदको जाने है वह मनःपर्यय ज्ञान है। इसके दो भेद हैं-पहला ऋजुमति है जो सरलपने मनमें प्राप्त हुआ [illegible] हुआ [illegible] जाने [illegible] वर्तमान [illegible]

टीकासहित पृथक् प्रकाशित किया जावे, तो एक छोटासा श्रावकाचार बन सकता है। और श्रावकधर्मका संक्षेपमें परिचय चाहनेवालोंको उपयोगी हो सकता है। यहापर सुभाषितके दश बीस चुने हुए श्लोक उद्धृत करनेकी इच्छा थी, परन्तु स्थानाभावसे इस विचारको छोड़ना पड़ा।

तीसरा ग्रन्थ **श्रावकाचार** इस समय हमारे समक्ष उपस्थित नहीं है, परन्तु उसका विषय बतलानेकी पाठकोंको अवश्यकता नहीं है। १३५२ श्लोकोंमें बहुत उत्तमताके साथ श्रावकाचारका स्वरूप बतलाया गया है। प्रचलित श्रावकाचारोंसे यह बहुत ही बड़ा है।

चौथा ग्रन्थ **योगसारप्राभृत** है। इसका दूसरा नाम अध्यात्म तरंगिणी भी है। इसमें ५५० के करीब अनुष्टुप् श्लोक हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, चारित्र, और उपसंहार इस प्रकार नौ अध्याय हैं और प्रायः प्रत्येक अध्यायमें पचास २ श्लोक हैं। अन्तके दो अध्यायोंमें सौ सौके अनुमान श्लोक हैं। विषय नामहीसे प्रगट है। योगियोंको उपर्युक्त विषयोंका ध्यानावस्थामें किस प्रकार चिन्तवन करना चाहिये, बहुत सरल शब्दोंमें इसीका उपदेश दिया गया है। जो प्रति हमारे देखनेमें आई वह संवत् १५५२ की लिखी हुई है और प्रायः शुद्ध है। उसमें आदिके १०–१२ श्लोक नहीं हैं। एक पत्रका अभाव है। ग्रन्थके अन्तमें ग्रन्थ लिखानेवालोंकी तो बड़ी लम्बी चौड़ी प्रशस्ति लिखी है, परन्तु

---

१. धर्मपरीक्षाके पिछले दो परिच्छेदोंमें भी श्रावकाचारका विषय बहुत उत्तमताके साथ कहा है। उसके २०० के करीब अनुष्टुप् श्लोक हैं।

इस ग्रन्थमें अध्यात्मकी ओर विशष झुकाव दिखता है इससे तथा अपने नामके साथ जो वीतराग विशेषण दिया है, इससे अनुमान होता है कि यह ग्रन्थ पहले ग्रन्थोंके बहुत पीछे बना होगा।

पांचवां ग्रन्थ **पंचसंग्रह** है। इसकी एक प्रति ईडरके ग्रन्थसंग्रहालयमें संवत् १५३४ की लिखी हुई है। हमको उसकी प्रशस्ति मात्र प्राप्त हुई है। वह इस प्रकार है.—

श्रीमाथुराणामनघद्युतीनां संघोऽभवद्वृत्ति विभूपितानाम्
हारोमणीनामिव तापहारी सूत्रानुसारी शशिरश्मिशुभ्रः ॥१॥
माधवसेन गणी गणनीयः शुद्धतमोऽजानि तत्र जनीयः।
भूयासि सत्यवतीव शशांकः श्रीमति सिन्धुपतावकलंकः ॥ २ ॥
शिष्यस्तस्य महात्मनोऽमितगतिर्मोक्षार्थिनामग्रणि-
रेतच्छास्त्रमशेषकर्म्मसमितिप्रख्यापनायाकृत ।
वीरस्ये- जिनेश्वरस्य गणभृद्ध (व्यात्मनां) व्यापको-
दुर्वारस्मरदन्तिदारुणहरिः श्रीगौतमः सत्तमः ॥ ३ ॥
यदत्र सिद्धान्तविरोधि वद्धं ग्राह्यं निराकृत्य तदेतदार्यैः।
गृण्हन्ति लोका ह्युपकारि यत्नात्त्वचं निराकृत्य फलं विनम्रं॥

---

१. इस श्लोकमें माथुर संघको मणियोंके हारकी उपमा दी है और उसे दोनों पक्षमें घटित की है। पापरहित प्रकाशवाले (निर्मल कान्तिवाले) वृतों करके शोभायमान (वृत्तरूप अर्थात् गोलमणियोंसे शोभायमान) तापको हरन करनेवाला, सूत्र अर्थात् सिद्धान्त वचनोंका अनुसरण करनेवाला (सूत्र अर्थात सूतमें पोया हुआ) और चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्वल माथुरसंघ मणियोंके हारकी समान उत्पन्न हुआ।

गोला (मैसूर) के मंदिर व शिलालेखोंका कथन है, मुद्रित है।

एकेन्द्रिय भेद—एकेंद्रिय जीवोंके ४२ भेद हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, नित्य निगोद, साधारण वनस्पति, इतर निगोद सा० वं०। इन छः के सूक्ष्म व बादरकी अपेक्षा १२ भेद हुए। प्रत्येक वनस्पति सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित भेदसे दो प्रकार ऐसे १४ प्रकार हरएक पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त, व लब्ध्य पर्याप्त इसतरह ४२ भेद हुए। (जै० सि० प्र० ९४–९७)

एवंभूत नय—जिस शब्दका जिस क्रियारूप अर्थ हो उसी क्रियारूप परिणमे पदार्थको जो ग्रहण करे। जैसे वैद्यको वैद्यक करते समय ही वैद्य कहना। (जै० सि० प्र० नं० १००)

एषणा दोष—मुनिके आहार सम्बन्धी दोष देखो "आहार दोष"

एषणा समिति—शुद्ध भोजन ४६ दोष व ३२ अंतराय टालकर मुनिद्वारा लेना। यह तीसरी समिति है। (सर्वा० अ० ९–९)

एलाचार्य—श्री कुन्दकुन्दाचार्यका एक नाम।

एलाचार्य भट्टारक—ज्वालामालिनी कल्पके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ३९)

ऐ

ऐतिहासिक स्त्रियाँ—पंडिता चंदाबाई जैन आरा कृत स्त्री शिक्षाकी पुस्तक, मुद्रित।

ऐंद्रध्वज पूजा—इन्द्र द्वारा रची गई महापूजा।

ऐरावत क्षेत्र—जम्बूद्वीपका सातवां क्षेत्र। उत्तरमें ढाईद्वीपमें पांच ऐरावत हैं। वहां भरतक्षेत्रके समान कर्मभूमि रहती है। चौथे कालमें चौबीस तीर्थंकर होते हैं। (त्रि.गा. ५६४–७७९–८८१–८८३)

२—स्वर्गोंके दक्षिण इन्द्रोंमें चौथे इन्द्रकी सेनाके प्रधान पुरुष नायक (त्रि० गा० ४९६)

३—सीतानदी सम्बन्धी चौथा द्रह। (त्रि०गा० ६५७)

४—शिखरी कुलाचल पर नौमा कूट। (त्रि० गा० ७२९)

ऐलक—उत्कृष्ट श्रावक ग्यारह प्रतिमाधारी जो एक लंगोट मात्र रखते हैं व भिक्षासे बैठकर भोजन करते हैं, मुनि धर्मके अभ्यासी हैं। (गृ० अ० १७)

ऐशान—दूसरे स्वर्गका नाम।

ऐहिक फलानपेक्षा—दातारका पहला गुण कि वह इस लोकके फलकी इच्छा न करे कि मुझे धन व पुत्र हो व यश हो। (पु० श्लो० १६९)

ओ

ओघ—गुणस्थान जो १४ होते हैं (गो० जी० गा० ३)

ओं, ओम, ओं, ॐ—पांच परमेष्ठी वाचक मंत्र। अरहंतका प्रथम अक्षर अ, सिद्ध अशरीर हैं पहला अक्षर अ, आचार्यका पहला अक्षर आ; उपाध्यायका पहला अक्षर उ, साधुको मुनि कहते हैं पहला अक्षर म्; सब मिलकर अ+अ+आ+उ+म्=ॐ या ओम, (द्रव्य संग्रह; ज्ञानार्णव अ० २८) प्रणव मंत्र, पदस्थ ध्यानमें इस मंत्रको दो भौंहोंके बीचमें व अन्यत्र विराजमान करके ध्यान किया जाता है।

ओंकार मुद्रा—अनामिका, कनिष्ठा और अंगूठेसे नाक पकड़ना। (क्रिया मं० ए० ८७ नोट)

औ

औद्देशिक दोष—देखो "उद्दिष्ट दोष"

औधिक समाचार—मुनिके योग्य योग्य आचरण। इसके १० भेद हैं (१) इच्छाकार—सम्यग्दर्शन व व्रतादि आचरणमें हर्ष सहित प्रवर्तना। (२) मिथ्याकार—जो व्रतादिमें अतिचार हों उनको मिथ्या कहना। (३) तथाकार—सूत्रके अर्थको वैसा ही मानना जैसा कहा है। (४) आसिका—रहनेकी जगहसे जाते समय देवता व गृहस्थ आदिसे पूछकर जाना या पाप क्रियासे हटना। (५) निषेधिका—नवीन स्थानमें पूछके प्रवेश करके निश्चिंतिमें

भाई सिंधुपतिके समयमें जिन्हें **सिन्धुल सिन्धल सिन्धुराज कुमारनारायण और नवसाहसांक** भी कहते हैं, हुए थे । सिन्धुल बडे प्रतापशाली राजा थे । भक्तामरचरित्रमें इनकी वीरताकी वहुत कुछ प्रशंसा लिखी है । ये परमारवंशके मुकुटमणि थे । म्लेच्छ राजाओंपर इन्होंने विजयश्री प्राप्त की थी । डॉक्टर बुल्हरने एफिग्राफिया इंडिकाकी पहली जिल्दके २२६—२२८ पृष्ठमें जो प्रशस्तिलेख प्रकाशित किया है, उसमें लिखा है;—

तस्यानुजो निर्जितहूणराजः श्रीसिन्धुराजो विजयार्जितश्रीः ।
श्रीभोजराजोऽजनि येन रत्नं नरोत्तमाकल्पकृदद्वितीयम् ॥१॥

पंचसंग्रहकी प्रशस्तिसे यह भी मालूम पडता है कि सिन्धुराजने मुंजके पहले कुछ समय तक उज्जयनीका राज्य किया है,क्योंकि इसमें जो "अवति सति" पद दिया है,उससे सिंधुलमहाराजके राज्य करनेमें कोई संदेह नहीं रहता है । तव अनेक ग्रन्थों और शिलालेखोंमें

---

१. अनेक लोगोंका ऐसा मत है कि मुंज भोजके पितामह थे,परन्तु जैनग्रन्थोंसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मुंज भोजके पितृव्य और सिंधुराजके भाई थे । कई कथाग्रन्थोंमें लिखा है की सिंधुलके पिताके सन्तान नहीं होती थी,इसी लिये उन्होंने पहले एक मुंजके खेतमें पड़े हुए नवजात बालकको पालकर उसका नाम मुंज रक्खा था । उसके थोड़े ही दिन पीछे उनके सिंधुलका जन्म हुआ था । मुंज बुद्धिशाली था, और उसपर राजाका प्यार अधिक था, इसलिये उन्होंने उसीको राजकार्य सोंप दिया । पीछे पिताके मर जानेपर सिंधुलके पराक्रमको देख मुंजको ईर्षा उत्पन्न हुई । इसलिये उन्होंने उसे देशसे निकाल दिया था और दूसरी वार लौटकर आनेपर नेत्र फोड़ दिये थे । अंधावस्थामें उनके भोजदेवने जन्म लिया था । परन्तु इतिहाससे इस कथाकी कई बातोंमें विरोध पड़ता है ।

उदयमें तीन मुहुर्त या छः घडी तिथि न हो वहां वह तिथि घटी मानी जायगी तब पहले दिन उस तिथिको मानके उपवासादि करना चाहिये। जैसे अष्टमी तीन मुहूर्तसे कम है तो सप्तमीको व्रत करना चाहिये। अष्टमीको जितनी घडी अष्टमी हो उतने काल पीछे पारणा करे, सप्तमीका उपवास करके दूसरे दिन छः घडीसे जितनी कम अष्टमी हो उतनी घडी पीछे भोजन ले अर्थात् वहांतक अष्टमी माने
(च० स० न० ११८)

औषध ऋद्धि–देखो 'अंगद ऋद्धि' (प्र० जि० पृ० ९०) यह ८ प्रकार है (१) आमर्श–औ० ऋ० साधुओंके अंग स्पर्शसे रोग नाश हो, (२) क्ष्वेल–औ०ऋ० उनके कफ लगनेसे रोग नाश हो, (३) जल्ल०–उनके पसीनेके लगनेसे रोग नाश हो, (४) मल०–उनके कर्ण, दंत व नासिका मलसे रोग नाश हों, (५) विट्–उनके विष्टाके स्पर्शसे रोग नाश हो, (६) सर्वौषधि–जिनके अंग उपंगको स्पर्श करनेवाली पवनसे रोग नाश हो, (७) आस्याविष–जिनके मुखमें प्राप्त विष निर्विष होजाय व जिनके वचन सुननेसे विष उतर जावे, (८) दृष्ट्यविष–जिनके देखने मात्रसे विष उतर जावे (भ० पृ० ९२३)।

औषधिदान–रोग दूर करनेके लिये शुद्ध प्राशुक व पवित्र दवाई धर्मात्मा पात्रोंको या दुःखितोंको दयासे देना।

औषधी–विदेहोंके बत्तीस देशोंमें ३२ राज्यधानी हैं उनमें सातवीं राज्यधानी (त्रि.गा. ७१२)

औस्तुभास–लवण समुद्रके बडवामुख आदि दिशा सम्बन्धी पातालोंके दोनों तरफ एक२ पर्वत है। पूर्वदिशाके पातालकी पश्चिम दिशामें पर्वतका नाम (त्रि०गा० ९०५–९०६) वहांपर जो व्यंतर रहता है उसका भी नाम औस्तुभास है।

अं

अंग–शरीर; शरीरमें आठ अंग हैं। १–मस्तक, १ पीठ, १ पेट, २ भुजा, २ गोडे, १ नितंब; जिनवाणीके १२ अंग हैं देखो शब्द "अङ्ग" (प्र० जि० पृ० ११६)।

अंगोपांग–देखो शब्द "अङ्गोपांग" (प्र० जि० पृ० १३५)

अंथऊ–ब्यालू, संध्याके पहलेका भोजन। बुंदेलखंडमें इस शब्दका रिवाज है।

अंशुमान–अरिष्टपुरके स्वामी हिरण्यनाभ राजासे उत्पन्न रोहिणी कन्याके स्वयंवरमें उपस्थित एक राजा (ह० पृ० ३१५)

क

कचयव–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें छठा ग्रह।
(त्रि० गा० ३६३)

कच्छ–माल्यवान गजदंत पर चौथा कूट (त्रि० गा० ७३८); महाराज ऋषभदेव तीर्थंकरके श्वसुर।

कच्छा–विदेह क्षेत्रके ३२ देशोंमें पहला देश, (त्रि० गा० ६८७)। विदेहके चित्रकूट व क्षार पर दूसरा कूट। (त्रि० गा० ७४३)

कच्छकावती–विदेह क्षेत्रके ३२ देशोंमें चौथा।
(त्रि० गा० ६८७)

कज्जलप्रभा–सुमेरु पर्वतके नंदनवनमें आठवीं वापिका। (त्रि० गा० ६२९)

कज्जला–सुमेरु पर्वतके नंदनवनमें सातवीं वापिका। (त्रि० गा० ६२९)

कटु रस नामकर्म–जिसके उदयसे शरीरमें कटु रस हो। (सर्वा० अ० ८–११)

कठूमर–पांच उदम्बर फलोंमें पांचवां अंजीर फल।

कठोर स्पर्श नामकर्म–जिसके उदयसे शरीरका स्पर्श कठोर हो। (सर्वा० अ० ८–११)

कथा–जिससे धर्मका लाभ हो ऐसी कथा–यह चार प्रकार है–(१) आक्षेपिणी–चारित्रादिका स्वरूप बतानेवाली, (२) विक्षेपिणी–स्वमत स्थापन व परमत खण्डन करके वस्तु स्वरूप बतानेवाली, (३) संवेजिनी–ज्ञान चारित्र, वीर्य, भावनाके द्वारा

है कि मुंजके राज्यकालके प्रारंभमें ही अमितगति आचार्यपदवीसे भूषित हो गये थे।

छट्ठे ग्रन्थ भावना द्वात्रिंशतिमें केवल ३२ श्लोक हैं। यह ग्रन्थ बहुतही शान्तिका देनेवाला है। कविता बहुत ही मधुर और कोमल है।

अमितगतिके इन छह ही ग्रन्थोंके विषयमें हमें थोड़ा बहुत परिचय है। शेष ग्रन्थोंके विषयमें हम कुछ भी नहीं जानते हैं।

गुजराती साहित्यपरिषत्की रिपोर्टमें हमने अमितगतिके एक प्राकृत ग्रन्थका भी उल्लेख पढ़ा था, जो कि गुजरातके किसी भंडारमें है; परन्तु अभी तक हमें वह देखनेको प्राप्त नहीं हुआ। इससे मालूम होता है कि, अमितगति संस्कृतके समान प्राकृतके भी विद्वान् थे।

यशस्तिलकचम्पू ग्रन्थकी रचना विक्रमसंवत् १०१६ (शक संवत ८८१) में हुई है और उसके पीछे भी महाकवि **श्रीसोमदेवसूरिने** नीतिवाक्यामृत, षण्णवतिप्रकरण, युक्तिचिन्तामणि आदि बहुतसे ग्रन्थोंकी रचना की है, जिससे मालूम पड़ता है कि, वे अमितगतिके समसामयिक अथवा कुछ ही समय पहलेके विद्वान् थे। आज कल यह बात असंभव सी मालूम होती है कि ऐसे धुरंधर विद्वानोंका एक दूसरेसे परिचय न होगा अथवा दूसरेने पहलेकी कीर्ति न सुनी होगी। परन्तु खेद है कि अपने किसी भी ग्रन्थमें अमितगतिने सोमदेवसूरिका उल्लेख नहीं किया है। इतना ही क्यों अमितगतिसे कुछ ही समय पीछे **ज्ञानार्णव** (योगशास्त्र) के कर्त्ता **श्रीशुभचन्द्राचार्य**

जाती थी। यह राजमंत्री धर्मचन्द्रकी कन्या थी, यह पंपके समय ई० ९७२के लगभग हुई है। (क० नं० २७)

कन्दमूल–आलू, घुइयां, शकरकन्दी आदि जो भूमिके नीचे होते हैं, इनमें प्रायः अनंतकाय होते हैं इसीसे आलू टुकड़े करनेपर बोदिया जाता है। एक कायमें अनंत एकेन्द्रिय जीव हों उनको अनंतकाय कहते हैं। सप्रतिष्ठित वनस्पति अनंतकाय सहित होती है। जो सम भंग होजावे, तोड़नेसे ऊगे आदि उनकी पहचान है। देखो शब्द 'अनंतकाय'।

कंदर्प–शील रहित उपद्रवरूप परिणाम या हास्य सहित भंड वचन बोलना, यह अनर्थदण्ड-विरतिका प्रथम अतिचार है। (सर्वा० अ० ७–३२)

कंदर्प देव–खोटे परिणामधारी देव।

कंदर्प भावना–जो साधु स्वयं असत्य बोलता व दूसरोंको असत्य सिखाता, राग भावकी तीव्रता सहित शील रहित परिणाम रखता व भंड वचन बोलता। उसके यह भावना होती है जिससे मरकर कंदर्प देवोंमें पैदा होता है। (मू० गा० ६४)

कन्यादान–योग्य कन्याको योग्य वरके साथ देव व पंचोंकी साक्षी पूर्वक विवाहना। (सा० अ० २–५०७)

कपिलापुरी–श्री विमलनाथ तीर्थंकरका जन्म-नगर, फर्रूखाबाद जिलेमें स्टेशनसे ८ मील है। संयुक्त प्रांतमें है। यहां भगवानके चार कल्याणक हुए हैं, मंदिर व धर्मशाला है। चैत्र मासमें मेला होता है। (तीर्थयात्रा० पृ० ६)

कमण्डल–धातु व काठका एक तरहका लोटा जिसमें प्रासुक पानी रहता है। क्षुल्लक धातुका व ऐलक तथा जैन मुनि काठका कमण्डल रखते हैं।

कमलप्रभा–पिशाच व्यंतरोंके काल इन्द्रकी दूसरी वल्लभिका (त्रि० गा० २७२)।

कमलभव–कर्णाटक शांतिनाथ पुराणके कर्ता सन् ११२९ में हुए। इनके गुरु माघनंदि व्रति थे, इनकी उपाधि कविकंजगर्भ व सूक्तिसंदर्भ गर्भ है (क० नं० ३१)।

कमला–पिशाच व्यन्तरोंके काल इन्द्रकी पहली वल्लभिका (त्रि० गा० २७२)।

कम्पलानगरी–देखो शब्द "कपिलापुरी"

करण–समय समय अनन्तगुणा भावोंकी निर्मलता होना जिनसे मोहका उपशम या क्षय हो। देखो शब्द अधःकरण (गो० क० गा० ८९७)

करण चूलिका–यह दश प्रकार है–(१) बन्ध–रागद्वेष मोहादि भावोंसे नवीन पुद्गल कर्मोंका आठ कर्मरूप होकर आत्मासे एकक्षेत्रा-वगाह रूप सम्बन्ध करना, (२) उत्कर्षण–कर्मोंमें जो स्थिति व अनुभाग पहले था उसको बढ़ा देना (३) संक्रमण–जो कर्मकी उत्तर प्रकृति बंधी थी उसके परमाणुओंको अन्य उत्तर प्रकृति रूप कर देना, बदल देना, (४) अपकर्षण–कर्मोंमें जो स्थिति या अनुभाग पहले था उसको घटा देना, (५) उदीरणा–उदयकी आवलीसे बाहरके कर्मके द्रव्यकी स्थिति घटाकर उदयावलीमें मिलाना अर्थात् बिना समय कर्मोंको उदयमें लाना, (६) सत्व–बंधे हुए कर्म पुद्गलोंको आत्माके प्रदेशोंमें ठहरना, (७) उदय–कर्मोंका अपनी स्थिति पूरी होनेपर या ठीक समयपर पकके उदय आना फिर झड़ जाना, (८) उपशांत–जो कर्म कुछ कालके लिये उदयके अयोग्य कर दिया जाय, (९) निधत्ति–जो कर्म न तो अपने समयसे पहले उदय होसकता और न संक्रमण हो-सके, (१०) निकाचित जो कर्म न तो पहले उदय हो, न संक्रमण हो, न उसमें उत्कर्षण तथा अपकर्षण हो सके। (गो० क० गा० ४३९–४४०)

करणलब्धि–करण परिणामोंकी प्राप्ति। देखो शब्द "अधःकरण"।

कराल–भूत जातिके व्यंतरोंके प्रतिरूप इन्द्रकी वल्लभिकादेवीका नाम (त्रि० गा० २७८)।

करिकाण्ड–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ७२ वाँ ग्रह (त्रि० गा० ३६६)।

ग्रन्थोंमें उन्होंने अपनी गुरुपरम्पराका उल्लेख किया है। जिसमेंसे यहां हम धर्मपरीक्षाकी प्रशस्तिके कुछ श्लोक उद्धृत करते हैं,—

सिद्धान्तपाथोनिधिपारगामी
श्रीवीरसेनोऽजनि सूरिवर्य्यः।
श्रीमाथुराणां यमिनां वरिष्ठः
कषायविध्वंसविधौ पटिष्ठः ॥ १ ॥
ध्वस्ताशेषध्वान्तवृत्तिर्मनस्वी
तस्मात्सूरिर्देवसेनोऽजनिष्टः।
लोकोद्योती पूर्वशैलादिवार्कः
शिष्टाभीष्टः स्थेयसोऽपास्तदोषः ॥ २ ॥
भासिताखिलपदार्थसमूहो
निर्मलोऽमितगतिर्गणनाथः।
वासरो-दिनमणेरिव तस्मा—
ज्जायतेस्म कमलाकरबोधी ॥ ३ ॥
नेमिषेणगणनायकस्ततः
पावनं वृषमधिष्ठितो विभुः।
पार्वतीपतिरिवास्तमन्मथो
योगगोपनपरो गणार्चितः ॥ ४ ॥

कोपनिवारी शमदमधारी माधवसेनः प्रणतरसेनः।
सोऽभवदस्माद्गलितमदोस्मा यो यतिसारः प्रशमितसारः।
धर्मपरीक्षामकृत वरेण्यां धर्मपरीक्षामखिलशरण्याम्
शिष्टवरिष्ठोऽमितगतिनामा तस्य पटिष्ठोऽनघगतिधामा।

८ अन्तराय–जो दान लाभादि व बल प्रकाशमें विघ्न करे इसके ५ भेद हैं।

सब १४८ (५+९+२+२८+४+९३+२+५ =१४८) भेद हैं। नामकर्मके १०३ भेद लेनेसे १५८ भेद भी होते हैं।

१४८ प्रकृतिके नाम हैं—

५ ज्ञानावरण–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान।

९ दर्शनावरण–चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, निद्रा, निद्रा निद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला स्त्यानगृद्धि।

२ वेदनीय–सातावेदनीय, असातावेदनीय।

२८ मोहनीय–दर्शन मोहनीय ३–मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक्त। चारित्र मोहनीय २५–१६ कषाय अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४, प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४, संज्वलन क्रोधादि ४। ९ नोकषाय–हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद।

४ आयु–नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव।

९३ नाम–गति ४ +जाति इंद्रिय ५ +५ शरीर औदादिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण +५ बन्धन +५ संघात +१ निर्माण +३ अंगोपांग–औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, +६ संस्थान समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, स्वाति, कुब्जक, वामन, हुंडक +६ संहनन–वज्रवृषभनाराच सं०, नाराच सं०, अर्द्धनाराच सं०, कीलिक सं०, असंप्राप्तासृपाटिका सं० +स्पर्श ८ +रस ५ +गन्ध २ +वर्ण ५ +४ आनुपूर्वी–नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव + अगुरुलघु + उपघात + परघात + आतप + उद्योत + उच्छ्वास + प्रशस्त विहायोगति + अप्रशस्त विहा० + प्रत्येक शरीर + साधारण + त्रस + स्थावर + सुभग + दुर्भग + सुस्वर + दुःस्वर + शुभ + अशुभ + सूक्ष्म + बादर + पर्याप्ति + अपर्याप्ति + स्थिर + अस्थिर + आदेय + अनादेय + यशःकीर्ति + अयशःकीर्ति + तीर्थंकर, २ गोत्र–उच्च, नीच।

५ अन्तराय–दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय, कुल १४८ (सर्वा० अ० ८, ४–५)।

कर्म अवस्था–तीन तरहकी होती है। बंध–उनका बंधना, सत्व–बंध करके आत्माके प्रदेशोंमें स्थिति तक ठहरे रहना, उदय–अपने समयपर झड़ना। (गो० क० गा० ८८)

कर्मआर्य–(कर्मार्य) तीन प्रकार हैं–१ सावद्य कर्मार्य–जो गृहस्थ बहुत पापरूप आजीविका असि (शस्त्र), मसि (लेखन), कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्यासे करें, २ अल्प सावद्य कर्मार्य–अणुव्रतधारी श्रावक जो न्यायरूप छः कर्मसे आजीविका करें व अल्प संतोषपूर्वक करें, ३ असावद्य कर्मार्य–जो पापरूप न करें ऐसे निर्ग्रंथ मुनि। (म० पृ० ५१५–५१६)

कर्मकांड–गोम्मटसार कर्मकांड श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती कृत। इसमें कर्मोंके बंध, उदय, सत्ताका ९७१ गाथाओंमें विस्तारसे कथन है। सं० टीका केशववर्णी कृत, भाषा टीका पं० टोडरमल कृत मुद्रित है।

कर्मचूर व्रत या कर्मक्षय व्रत–इस व्रतमें १४८ उपवास १४८ पारणा करे, २९६ दिनोंमें पूरा करे। यह कर्म नाशक तप है। (दि० पु० १६०)

कर्मचेतना–राग द्वेष सहित कार्य करनेके अनुभवमें तन्मय होना। जैसे रसोई बनाना, मकान बनाना आदि कार्योंमें लीन होना। (पंचास्तिकाय गा. ३८)

कर्म तद् व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य निक्षेप–जिस कर्मको जो अवस्था निक्षेप पदार्थकी उत्पत्तिको निमित्तभूत हो उस ही अवस्थाको प्राप्त वह कर्म निक्षेप्य पदार्थका यह निक्षेप कहलाता है। (क्षि० द० पृ० १४)

कर्मनिर्जरणी व्रत–आषाढ़ सुदी १४, सावन सुदी १४, भादों सुदी १४, क्वाँर सुदी १४ के

श्रीनन्दितटसंज्ञश्च माथुरो वागडाभिधः ।
लाडवागड इत्येते विख्याताः क्षितिमण्डले ॥ २ ॥

अर्थात् काष्ठासंघमें नन्दितट, माथुर, वागड, लाडवागड ये चार गच्छ हैं। माथुरगच्छको माथुरसंघ लिखनेकी भी परिपाटी है। जैसे मूलसंघको भी संघ कहते हैं और उसके नंदि देव आदि चार भेदोंको भी संघ कहते हैं, उसी प्रकारसे यह भी है।

अमितगति काष्ठासंघी ही थे, इसका भी एक प्रमाण मिला है। श्रीभूषणसूरिकृत प्रतिबोधचिन्तामणि ग्रन्थके प्रारंभमें जो आचार्य परम्पराका वर्णन है, उसमें लिखा है:—

भानुर्भूवलये कम्रो काष्ठासंघाम्बरे रविः ।
अमितादिगतिः शुद्धः शब्दव्याकरणार्णवः ॥

इस श्लोकके अन्तिम चरणसे ऐसा जान पड़ता है कि शायद अमितगतिने कोई व्याकरणका ग्रन्थ भी बनाया होगा अथवा उनकी व्याकरणविद्यामें बहुत ख्याति होगी।

काष्ठासंघकी उत्पत्ति।

काष्ठासंघको हमारे यहां जैनाभास माना है, इसबातका तथा उसकी

---

१. दिल्लीमें जो भट्टारककी गद्दी थी और पं० शिवचंद्रजी जिस गद्दीके शिष्य थे, सुनते हैं वह माथुर गच्छकी थी। २. लाडबागड गच्छकी गद्दी सुनते हैं कारंजा (अमरावती) में है। ३. उक्तं च इन्द्रनन्दिकृत नीतिसारे—

गोपुच्छकः श्वेतवासा द्राविडो यापनीयकः ।
निःपिच्छिकश्चेति पञ्चैते जैनाभासाः प्रकीर्तिताः ।

अर्थात् गोपुच्छक (काष्ठासंघ) श्वेताम्बर, द्राविडीय, यापनीय और निःपिच्छिक ये पांच जैनाभास कहे गये हैं।

कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिकनय—जो कर्मबन्ध सहित संसारी जीवको शुद्ध ग्रहण करे । जैसे संसारी जीव द्रव्य दृष्टिसे शुद्ध हैं (सि.द. पृ. ७)

कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय—जो जीवमें अशुद्ध भावोंको माने जैसे जीवको क्रोधी मानी आदि कहना । (सि० द० पृ० ७)

कला—२० काष्ठा १ काष्ठा १५ निमिष (चक्षुटिपकार)

कला प व्याकरण—जैनाचार्यकृत व्याकरण जिसका बंगालमें अधिक प्रचार है ।

कलेवर—ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें १८ वां ग्रह (त्रि. गा. ३६५) ।

कल्की—श्री महावीर भगवानके निर्वाणके १००० वर्ष पीछे पहला कल्की राजा होता है । इस तरह इस दुःखमा कालमें हजार हजार वर्षके पीछे एक एक कल्की होते हैं, बीचमें उप कल्की भी होते रहते हैं । वे जैनधर्मके विरोधी होते हैं । पहला कल्की चतुर्मुख हुआ है । अन्तका जलमंथन होगा (त्रि. गा. ८५१–८५७–८५८) ।

कल्प—स्वर्ग । १६ स्वर्ग हैं वहीं इन्द्र, सामानिक, आदि बड़े छोटे भेद हैं फिर सब ग्रैवेयिकादिमें अहमिंद्र होते हैं । इससे कल्पातीत कहलाते हैं । वे कल्प हैं—१ सौधर्म, २—ईशान, ३—सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, इन हरएकमें एक एक इन्द्र है । ५ ब्रह्म, ६ ब्रह्मोत्तर इन दोमें एक इन्द्र है । ७ लांतव ८ कापिष्ट इनमें भी एक इन्द्र है । ९ शुक्र, १० महाशुक्र इनमें भी एक इन्द्र है, ११ शतार, १२ सहस्रार इनमें भी एक इन्द्र है, १३ आनत, १४ प्राणत, १५ आरण, १६ अच्युत, इनमें हरएकमें एक इन्द्र है कुल इन्द्र १२ हैं ।
(त्रि० ४४८–४५४)

कल्पकाल—बीस कोड़ाकोड़ी सागरका अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी प्रत्येक दस को० को० सागरका, हरएकमें छः काल होते हैं, अवसर्पिणीमें पहला ४, दूसरा ३, तीसरा २, चौथा ४२००० वर्ष कम १ कोड़ाकोड़ी सागरका, पांचवा २१००० वर्ष, छठा २१००० वर्ष । उत्सर्पिणीमें इससे उल्टा है ।
(सर्वा० अ० ३–२७)

कल्पद्रुम (वृक्ष) पूजा—याचकोंकी इच्छानुसार दान करते हुए चक्रवर्ती राजाओं द्वारा जो अरहंतदेवकी पूजा । (सा० अ० २–२०)

कल्पवासी—१६ स्वर्गोंमें रहनेवाले देव ।

कल्पवृक्ष—ये पृथ्वीकायिक भोग भूमिमें होते हैं । उनकी दश जातियां हैं । इनसे भोगभूमिवासी इच्छानुसार पदार्थ प्राप्त करते हैं । वे १० हैं—

१ मद्यांग—अनेक प्रकार पौष्टिक रसोंको देनेवाले ।

२ वादित्रांग—अनेक प्रकारके बाजोंको देनेवाले ।

३ भूषणांग—अनेक प्रकार आभूषणोंको देनेवाले ।

४ मालांग—पुष्पोंकी अनेक तरहकी मालाएँ देनेवाले ।

५ दीपांग—मणिमय दीपोंसे शोभित होते हैं ।

६ ज्योतिरंग—अपनी कांतिसे सदा प्रकाशरूप रहनेवाले ।

७ गृहांग—अनेक प्रकारके मकान स्थापन करनेवाले ।

८ भोजनांग—अमृत समान स्वादिष्ट भोजन देनेवाले ।

९ भाजनांग—अनेक प्रकारके बर्तन देनेवाले ।

१० वस्त्रांग—अनेक प्रकारके वस्त्र देनेवाले ।

ये कल्पवृक्ष न तो वनस्पति हैं न देवोंने स्थापन किये हैं । किन्तु केवल पृथ्वीका सार अर्थात् भूगर्भके रस विशेष सार पदार्थ ही कल्पवृक्षरूप व भोजन वस्त्र वादित्र आदि पदार्थरूप परिणत होजाते हैं । यह उनका भिन्न भिन्न स्वभाव है । (आ. पर्व. ९–३५–४९) ।

कल्प व्यवहार—अंग बाह्य जिनवाणीमें १४ प्रकीर्णक हैं उनमें नौवां प्रकीर्णक । कल्प नाम योग्य आचरण, जिसमें मुनीश्वरोंके योग्य आचरणका विधान हो (गो. जी. गा. ३६७–३६८) ।

कल्पातीत—१६ स्वर्गोंसे ऊपर जो ग्रैवेयिक व अनुदिश और अनुत्तरवासी अहमिन्द्र जहां होते, कल्पकी कल्पना नहीं है । (त्रि० गा० ४५५)

सत्तसए तेवण्णे **विक्कमरायस्स** मरणपत्तस्स ।
नंदियडे वरगामे कट्ठोसंघो मुणेयव्वो ॥ ३९ ॥
नंदियडे वरगामे **कुमारसेणो** य सत्थविणाणी ।
कट्ठो दंसणभट्ठो जादो सल्लेहणाकाले ॥ ४० ॥

अर्थात्——**श्रीवीरसेनके** शिष्य **भगवाज्जिनसेन** जो कि सम्पूर्ण तत्त्वोंके ज्ञाता थे, श्रीपद्मनंदिके पश्चात् चारों संघके स्वामी आचार्य हुए । फिर इनके **गुणभद्र** नामके शिष्य हुए, जो दिव्यज्ञानपरिपूर्ण पक्षोपवास करनेवाले थे । इन्होंने **श्रीविनयसेन** मुनिकी मृत्यु होनेपर सिद्धांत शास्त्रोंका उपदेश किया और पीछे वे भी स्वर्ग लोगको सिधारे अर्थात् श्रीविनयसेनके पश्चात् गुणभद्र आचार्य हुए । विनयसेनका एक **कुमारसेन** नामका शिष्य हुआ । उसने एक वार सन्यास भंग करके फिर दीक्षा नहीं ली और मयूरपिच्छी छोड़कर गोपुच्छकी पिच्छी ग्रहण कर ली । तथा सम्पूर्ण **वागड़** देशमें उन्मार्गकी प्रवृत्ति की । उसने स्त्रियोंको मुनिदीक्षा देनेकी, क्षुल्लक लोगोंको वीरचर्या करनेकी, अर्थात् मुनियोंके समान आतापन-योगादि धारण करनेकी और कठोरकेशोंकी पिच्छी (गोपुच्छ)

---

१. **श्रीवीरसेनके** पश्चात् पट्टके आचार्य श्रीपद्मनन्दि हुए होंगे और उनक पश्चात् वीरसेनके शिष्य जिनसेन हुए होंगे ।

२. **विनयसेनमुनि** जिनसेनके सतीर्थ (एक गुरुके शिष्य) थे, ऐसा **पार्श्वाभ्युदय** काव्यकी प्रशस्तिसे जान पड़ता है । यथा,—

श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृङ्गः श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान् ।
तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण काव्यं व्यधायि परवेष्टितमेघदूतम् ॥ १ ॥

"कषाय नौ नोकषाय–हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुंवेद, नपुंसक वेद मिलाकर कुल २५ भेद होते हैं।

कषायला रसनाम कर्म–जिस कर्मके उदयसे शरीरमें कषायला रस हो। (सर्वा० अ० ८–११)

कषाय विवेक–कषायके त्यागमें सावधानी। उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव व शौच धर्मसे कषायको जीतना। जैसे क्रोधावेशमें कठोर वचन बोलना। आप पूज्यपना रखकर जगतकी निन्दा करनी, कहना कुछ करना कुछ अति लंपटतासे अयोग्य विषय सेवना, इनका विवेक जैन साधुके होता है। (भ० पृ० ७१)

कषाय वेदनीय–१६ प्रकार कषाय कर्म, देखो "कषाय"।

कषाय समुद्घात–क्रोधादि कषायके आवेशमें मूल शरीरमें रहते हुए आत्माके प्रदेशोंका फैलकर बाहर निकलना फिर भीतर समा जाना। वेदना या कषाय समुद्घातमें आत्माके प्रदेश मूल शरीरसे बाहर जावें तो एक या दो या तीन प्रदेशसे लेकर उत्कृष्ट मूल शरीरसे चौड़ाईमें तिगुना क्षेत्र व ऊँचाईमें मूल शरीर मात्र रोके सो इसका घनफल मूल शरीरसे नौगुणा क्षेत्र भया। इससे अधिक बाहर न जावें। (गो० जी० गा० ५४१)

कषाय स्थान–कषायोंके स्थान शक्ति या फल देनेकी सामर्थ्यकी अपेक्षा चार हैं। तीव्रतर, तीव्र, मंद, मंदतर, अनुभागरूप या उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य, अनुभागरूप। चारों कषायोंके चार स्थानोंके दृष्टांत नीचे प्रकार हैं—

कषाय	तीव्रतर	तीव्र	मंद	मंदतर
क्रोध	पाषाण भेद सम घने कालतक रहे	पृथ्वी भेद सम कठि नतासे मिटे	धूल रेखा सम देरमें मिटे	जलरेखा सम तुर्त मिट जाए
मान	पाषाण सम अति कठोर	हड्डी सम कठोर	काठ सम	बेतके समान नम्र
माया	बांसकी जड़ समान वक्र	मेढ़ोंके सींग सम वक्र	गोमूत्र सम वक्र	गायके खुरका चिन्ह सम वक्र
लोभ	किरमिचके रंग सम गाढ़ा	पहियेके चाकके मैल सम	शरीरका मैल सम	हलदीके रंग सम जल्दी मिटे

छः लेश्याओंकी अपेक्षा चौदह भेद हैं। उनका वर्णन नीचेके नकशेसे प्रगट होगा।

लेश्या अपेक्षा कषायके १४ स्थान।

नं०	कषाय स्थान	लेश्या
१	उत्कृष्ट शिला सम	कृष्ण लेश्या
२	अनुत्कृष्ट भूमि सम	कृष्ण
३	,,	कृष्ण, नील
४	,,	कृष्ण, नील, कापोत
५	,,	कृष्ण, नील, कापोत, पीत
६	,,	कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म
७	,,	कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल
८	अजघन्य धूलि रेखा सम	कृष्णादि ६
९	,,	नील आदि ५
१०	,,	कापोत आदि ४
११	,,	पीत, पद्म, शुक्ल
१२	,,	पद्म, शुक्ल
१३	,,	शुक्ल
१४	जघन्य जल रेखा सम	शुक्ल

सर्वथा नीरोग होगये । उस समय उन्होंने क्षुधातुर होकर अन्नपान ग्रहण करनेकी आज्ञा मांगी, परन्तु दूसरे आचार्योंने उन्हें ऐसा करनेकी आज्ञा नहीं दी—समाधिमरण करनेकी ही विधि बतलाई । लोहाचार्य क्षुधावेदनाको सहन नहीं कर सके, इसलिये वे आचार्योंकी आज्ञा पालन करनेमें समर्थ न हुए । उन्होंने अन्नपान ग्रहण कर लिया । इस अपराधमें वे संघसे बाहर कर दिये गये और उनके पट्टपर अन्य किसी आचार्यकी स्थापना हो गई । लोहाचार्यजी संघसे निकलकर **अगरोहा** नगर आये जहांपर अगरवालोंकी बहुत बड़ी बस्ती थी । यद्यपि वे सब अन्यमतावलम्बी थे, परन्तु उन दिनों लोहाचार्यका बहुत बड़ा प्रभाव था इसलिये उनका आगमन सुनकर अगरवालोंने भोजनके लिये प्रार्थना की । परन्तु लोहाचार्यने कहा कि हम मिथ्यादृष्टियोंके घर आहार नहीं कर सकते हैं । यदि तुम लोग जैनधर्म ग्रहण करना स्वीकार करो, तो हम भोजन कर सकते हैं । उनकी विद्वत्ता और तपस्याका अगरवालोंपर इतना प्रभाव पड़ा कि वे लोग जैनधर्मको ग्रहण करना अस्वीकार न कर सके । कोई ७०० अग्रवालोंने जैनधर्म स्वीकार कर लिया, और लोहाचार्यजीको खूब उत्सवके साथ नगरमें ले जा कर भोजन कराया । पीछे वहां जैनमन्दिर बनवाया गया और तत्काल पाषाणकी प्रतिमा न मिल सकनेके कारण उसमें काष्ठकी प्रतिमा स्थापित कराई गई । यह बात जब मूलसंघके आचार्योंने सुनी, तब उन्होंने मिथ्यातियोंको जैन बनानेके उपलक्षमें तो लोहाचार्यकी बहुत प्रशंसा की परन्तु काष्ठकी

कांडक—बहुत समयोंमें जो कर्म द्रव्य पलटे। (गो० क० गा० ४१२)

कांडक घात—नाश करने योग्य कर्मके द्रव्यको जिनकी स्थिति घटाई हो तो अन्तके आवली मात्र निषेकोंको छोड़कर अन्य सर्व शेष स्थितिके निषेकोंमें मिला देना। इसको कांडोत्करण भी कहते हैं। (ल० पृ० २०)

कांडक द्रव्य—जितने कर्मके निषेकोंकी स्थिति घटाकर अन्यमें मिलाया जाता है (ला.पृ.१९-२५) अर्थात् स्थिति कांडकके निषेकोंके परमाणु।

कांडक विधान—जितने कर्मोंकी स्थिति घटाई हो उनको शेष स्थितिके निषेकोंमें मिलानेकी क्रिया। (ल० पृ० २०)

कांडोत्करण—देखो "कांडक घात"।

कांडोत्करण काल—एक कांडकके घातका काल (ल० पृ० २८)

कातंत्र—जैनाचार्यकृत व्याकरण, मुद्रित है।

कांदर्पदेव दुर्गति—जो साधु मिथ्या वचन बोलता हुआ रागभावकी तीव्रतासे हास्यादि कंदर्प भाव करता है वह कंदर्प देवोंमें पैदा होता है (मू.गा.६४)

कापिष्ठ—आठवां स्वर्ग (त्रि० गा० ४५२)

कापोत लेश्या—तीन अशुभ परिणामोंमें जघन्य अशुभ भाव। जो शोक, भय, ईर्षा, परनिंदा करे, अपनी प्रशंसा करे, दूसरेसे अपना गुण सुन हर्षित हो, अहंकाररूप हो, दूसरेके यशको नाश करने वाला हो। जैसे—एक मनुष्य आमको खाना चाहता हुआ जड़से कृष्ण लेश्याके समान, धड़से नील लेश्याके समान, न काटकर बड़ी २ शाखाओंको काटे (सा. स. ३) यह भाव लेश्या है। कबूतरके रंगके समान भूरे रंगकी द्रव्य लेश्या होती है।

काम—जो चित्तको अच्छा लगे, सो प्रेम और सम्भोग करनेमें अच्छा मान पड़े ऐसा सुन्दर इच्छा या न्यायपूर्वक पांच इन्द्रियोंके विषय भोगनेकी इच्छा। (सा.अ.२-५९) यह गृहस्थका तीसरा पुरुषार्थ है।

कामताप्रसाद—इटेके मालिके दि० जैन मुद्रक जो 'वीर'के सम्पादक हैं व भगवान महावीर आदि अनेक पुस्तकोंके रचयिता हैं। अलीगंज जि० एटा निवासी हैं व इतिहास खोजी हैं।

काम तीव्राभिनिवेश—ब्रह्मचर्य अणुव्रतका ५ वां अतीचार। काम सेवनका तीव्र भाव रखना। (सर्वा० अ० ७-२८)

कामदेव—यह बड़े सुन्दर होते हैं। गत अवसर्पिणीके चौथे कालमें भरतमें २४ कामदेव महापुरुष हुए इनमेंसे कुछ तो उस ही भवमें मोक्ष गए, कुछ आगामी अवश्य मोक्ष जांयगे। (१) बाहुबलि, (२) अमिततेज, (३) श्रीधर, (४) दशभद्र, (५) प्रसेनजित, (६) चंद्रवर्ण, (७) अग्निमुक्ति, (८) सनत्कुमार चक्री, (९) वत्सराज, (१०) कनकप्रभ, (११) मेघवर्ण, (१२) शांतिनाथ तीर्थंकर, (१३) कुन्थुनाथ तीर्थंकर, (१४) अरनाथ तीर्थंकर, (१५) विजयराज, (१६) श्रीचंद्र, (१७) राजा नल, (१८) हनुमान (१९) बलराजा, (२०) वसुदेव, (२१) प्रद्युम्नकुमार, (२२) नागकुमार, (२३) श्रीपाल, (२४) जंबूस्वामी केवली। (जैन बालगुटका पृ० ९)

कामधर—लौकांतिक देवोंका एक भेद, जिनके विमान अरुण और गर्दतोय जातिके देवोंके मध्यमें हैं (त्रि० गा० ५३८)

काम पुष्प—विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीमें २६ वां नगर।

कामवेग—कामभाव चित्तमें होनेसे १० वेग होसक्ते हैं (१) सोच करे—विचारे, (२) देखनेकी अति इच्छा हो, (३) दीर्घ निश्वास पटके, (४) शरीरमें ज्वर हो, (५) अंग जलने लगे, (६) भोजन न रुचे, (७) मूर्छा आजाय, (८) उन्मत्त होजाय, (९) प्राण संदेह हो, (१०) मरण होजावे। (भ० पृ० ३११)

कामसार कल्पा—[illegible]

[illegible] है। इसमें १६ [illegible] हैं। इनमेंसे [illegible], ३६

है । हा, उसमें जो सन्यासमरण न करनेकी तथा गोपुच्छ ग्रहण करनेकी बात है वह अवश्य दर्शनसारके कथनसे मिलती है,और उसका वह अंश है भी सर्वानुमत ।

माथुरसंघकी उत्पत्ति ।

यद्यपि माथुरसंघ काष्ठासंघका एक भेद है, तथापि उसमें कुछ विशेषता भी है और शायद इसी कारण वह माथुरगच्छ न कहला कर माथुरसंघ कहा जाता है। एक प्रकारसे यह एक स्वतंत्र संघ है । दर्शनसारमें इसकी उत्पत्तिके विषयमें निम्नलिखित गाथा मिलती है—

तत्तो दुसएतीदे महुराए माहुराण गुरुणाहो ।
णामेण रामसेणो णिप्पिच्छियं वण्णियं तेण ॥ ४१ ॥

अर्थात् काष्ठासंघकी उत्पत्तिके दो सौ वर्ष पीछे मथुरा नगरीमें माथुरसंघका प्रवर्तक रामसेन नामका प्रधान मुनि हुआ । उसने विना पिच्छीके मुनिका स्वरूप वर्णन किया । अर्थात् उसके मतके अनुसार मुनि विना पिच्छिके भी रह सकता है ।

इससे यह भी मालूम होता है कि पांच जैनाभासोंमें जो एक निःपिच्छिक जैनाभास बतलाया है, वह और माथुरसंघ एक ही है । माथुरसंघका ही दूसरा नाम निःपिच्छिक है ।

मतविरोध ।

स्त्रियोंकी दीक्षा, क्षुल्लक लोगोंको वीरचर्या, प्रायश्चित्त आदि विषयोंमें काष्ठासंघका जो मतभेद है, उससे हम भलीभांति परिचित नहीं

उपादान कारण है। चाक आदि निमित्त कारण हैं। (जै० सि० प्र० नं० ४०२–४०८)

कारण विपर्यय–कार्यके कारणको और और समझना।

कारुण्य भावना–दुःखी प्राणियोंका दुःख दूर हो ऐसा वारवार विचारना। (सर्वा० अ० ७–११)

कार्तिकेय स्वामी–स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्राकृतके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ४६)

कार्मणकाय–ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका शरीर जो सर्व संसारी जीवोंके हरसमय साथ रहता है।

कार्मणकाययोग–कार्मण शरीर नाम कर्मके उदयसे जो कार्मण शरीर हो, इसके निमित्तसे आत्माके कर्म ग्रहण शक्तिको धरे, प्रदेशोंका चंचलपना (गो० जी० गा० २४१) यह योग विग्रह गतिमें होता है तथा केवली समुद्घातमें प्रतरद्वय व लोक पूर्णमें होता है।

कार्मण वर्गणा–देखो "कर्म वर्गणा"।

कार्मण बन्धन नाम कर्म–जिसके उदयसे कर्म वर्गणा जो कार्मण शरीरके लिये आई हो वह परस्पर मिलें। (सर्वा० अ० ८–११)

कार्मण शरीर नामकर्म–जिसके उदयसे कार्मण शरीर योग्य वर्गणा खिंचे व शरीर बने। (सर्वा० अ० ८–११)

कार्मण संघात–जिसके उदयसे कार्मण वर्गणा परस्पर छेद रहित शरीर बनाते हुए मिल जावें। (सर्वा० अ० ८–११)

कार्य–कारणका फल।

कार्य पात्र–धर्म, अर्थ, काम इन तीन पुरुषार्थोंमें सहायता देनेवाले। (सा० अ० २–९०)

काव्यमाला–सं० प्रथम गुच्छक, निर्णयसागर बम्बईका मुद्रित जिसमें जैन ग्रंथ कई हैं।

काल–समय; काल द्रव्य जो सर्व जीवादि द्रव्योंकी पर्याय पलटनेमें निमित्त है व लोकाकाशमें एक एक प्रदेशपर भिन्न १ कालाणु रूपसे फैला है। असंख्यात द्रव्य हैं, ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें ३८ वां ग्रह (त्रि० गा० ३६६) व ४२ वां ग्रह (त्रि० गा० ३६७); चक्रवर्तीकी नौनिधियोंमें एक निधि जो छः ऋतु योग्य वस्तु देती है। (त्रि० गा० ६८८); पांचवे नारद भरतके गत चौथे कालमें हुए। (त्रि० गा० ८३४) कालोदधिका स्वामी व्यंतरदेव। (त्रि० गा० ९६२); उत्सर्पिणी व अवसर्पिणीके छः छः काल। हरएक दस कोडाकोडी सागर। देखो शब्द "अवसर्पिणी काल"।

काल केतु–ज्योतिषके ८८ ग्रहोंमें २९ वां ग्रह। (त्रि० गा० ३६६)

काल परिवर्तन–५च परिवर्तनोंमें तीसरा। कोई जीव उत्सर्पिणीके पहले समयमें पैदा हो वह आयु पूरी करके मरेगा, वही जीव दूसरी किसी उत्सर्पिणीके दूसरे समयमें पैदा हो फिर मरे फिर किसी उ०के तीसरे समयमें पैदा हो, इस तरह उत्स० के १० कोडाकोडी सागरके समयोंका क्रमसे जन्म लेकर पूर्ण करे तैसे ही अवसर्पिणीके १० कोडाकोडी समयोंको क्रमसे जन्म लेकर पूरा करे फिर इसी तरह क्रमसे मरण करके भी दोनों कालोंके समयोंको पूरा करे, जितना अनन्तकाल लगे वह एक काल परिवर्तन है। (सर्वा० अ० २–१०)

काललब्धि–किसी कार्यके होनेके समयकी प्राप्ति। सम्यग्दर्शनके लिये अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल मोक्ष जानेमें शेष रहना काललब्धि है। इससे अधिक काल जिसके लिये संसार होगा उसके सम्यक्त न होगा। (सर्वा० अ० २–३)

काल लोकोत्तरमान–जघन्य एक समय उत्कृष्ट सर्व काल। (त्रि० गा० ११)

कालवाद–एकांत अपयार्थमत जो ऐसा मानता है कि काल ही सर्वको उपजाता है, काल ही सर्वका नाश करता है। सोतेको काल ही जगाता है, कालके ठगनेको कोई समर्थ नहीं। ऐसे वचनोंसे कालहीसे सबका होना मानना (गो० क० गा० ८७९)

कालवादी–कालवादके माननेवाले।

पुष्पपूजा तथा भट्टारकोंमें मयूरपिच्छिके स्थानमें गोपुच्छ रखनेके सिवाय और कोई भेद नहीं जान पड़ता है। दोनों संघके श्रावक एक दूसरेके मन्दिरोंमें आते जाते हैं, और एक ही आचार विचारसे रहते हैं। क्षुल्लकोंकी वीरचर्या, स्त्रियोंकी दीक्षा, प्रायश्चित्तादि विवादविषयक बातोंका आज कल काम ही नहीं पड़ता है। इसलिये शेष बातोंमें काष्ठासंघ और मूलसंघका एकमत हो मिलकर रहना कुछ आश्चर्यका विषय नहीं है।

कुछ भी हो, अर्थात् माथुरसंघ जैनाभास भले ही हो परन्तु श्रीअमितगतिमुनिके अगाध पांडित्य और उत्कृष्ट कवित्वके विषयमें कुछभी सन्देह नहीं है। इस विषयमें उनकी प्रशंसा करनेमें कोई भी कुंठित नहीं होगा और उनके पवित्र ग्रन्थोंके पठन पाठनका कोईभी विरोधी नहीं होगा। संसारमें उनकी कीर्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ स्थिर रहेगी। अलमतिविस्तरेण।

की

की आफ नोलेज-बा० चम्पतराय कृत इंग्रेजीमें जैन धर्मके महत्वको दर्शानेवाला ग्रन्थ, मुद्रित है।

कीर्ति-नीलकुलाचलके केसरि द्रहके कमलवत द्वीपमें रहनेवाली देवी (सर्वा० अ० ३-१९) यह ईशान इन्द्रकी आज्ञामें रहनेवाली देवी है। (त्रि० गा० ५७७)

कीर्तिवर्मा-कर्णाटक जैन कवि (सन् ११२५) चालुक्यवंशी राजा त्रैलोक्यमलका पुत्र, गो वैद्य वैद्यक ग्रंथका कर्ता। (क० न० ३०)

कीलक (कीलित) संहनन-नाम कर्म। वह कर्म जिसके उदयसे ऐसी हड्डी हों जो परस्पर कीलित हों। (सर्वा० अ० ८-११)

कु

कुगुरु-जो परिग्रहधारी, आरम्भ करने वाले, मिथ्या तत्वके श्रद्धानी साधु हों, जिनमें पांच अहिंसादि महाव्रत न हों। सुगुरु वे हैं जो इंद्रिय विषयोंकी आशासे रहित, आरंभ परिग्रह रहित, व आत्मज्ञान व ध्यानमें लीन हों। (र० श्लोक १०)

कुंड-द्रह, जैसे जंबूद्वीपके छ कुलाचल पर्वतों पर पद्म आदि छः कुण्ड हैं। (देखो द्वि० जि० पृ० ११७ शब्द अढ़ाई द्वीप)

कुंडनपुर-प्राचीन नाम कौंडिन्यपुर विदर्भदेशकी राजधानी, जहांसे श्रीकृष्ण रुक्मणिको हर लाए थे। जिला अमरावती वर्धा नदीके तटपर आर्वीसे ६ व धामणगांव ष्टेशनसे ११ मील जैन मंदिर है, प्राचीन मूर्ति पार्श्वनाथ। (या० द० पृ० ६२)

कुंडल-सतारा जिलेमें औंध रियासत, कुण्डल ष्टेशनसे २ मील प्राचीन मंदिर पार्श्वनाथ। ग्रामके पास पर्वतपर दो मंदिर गिरी और झरी पार्श्वनाथके नामसे प्रसिद्ध हैं। अगहनमें मेला होता है। (या० द० पृ० २४८)

कुण्डलगिरि-ग्यारहवां महान् द्वीपमें पर्वत ७५००० योजन ऊँचा, इसपर बीस कूट हैं, चारमें जिन मंदिर हैं। (त्रि० गा० ९३)

कुण्डलद्वीप-ग्यारहवां महाद्वीप।

कुण्डलपुर-बिहारमें राजग्रहके पास जहां नालंदा बौद्ध महाविद्यालय था। श्री महावीरस्वामीका जन्म स्थान मानके तीर्थ माना जाता है, जैन मंदिर है। दमोह जिलेसे २० मील मध्य प्रदेशमें पर्वतका आकार कुण्डलरूप है, ५९ जिन मंदिर हैं। श्री महावीरस्वामीकी प्राचीन मूर्ति पद्मासन ४॥ गज ऊँची दर्शनीय है। (या० द० पृ० ४७)

कुण्डलवर-११ वां द्वीप तथा समुद्र (त्रि० गा० ३०४)

कुणक या कुणिक-श्री महावीरस्वामीके समयमें राजा श्रेणिकका पुत्र कुणिक। (श्रेणिकचरित्र)

कुन्ती-युधिष्ठिर आदि पांडवोंकी माता।

श्री कुन्थुनाथ-भरतके १७ वें वर्तमान तीर्थंकर, छठे चक्रवर्ती व तेरहवें कामदेव।

कुंथलगिरि-सिद्धक्षेत्र जिला उसमानाबाद (निजामस्टेट) बारसी टाउन स्टेशनसे १ मील, यहांसे श्री देशभूषण कुलभूषण मुनि श्री रामचन्द्रके समयमें केवली होकर मोक्ष पधारे हैं। पर्वतपर १० मंदिर हैं। (या० द० पृ० २४८)

कुदान-जो सम्यक्त व चारित्र रहित कुपात्र हैं उनको दान देना व सोनाचांदी, स्त्री, पशु आदिका दान देना।

कुदेव-सर्वज्ञ वीतराग हितोपदेशी अर्हंतदेवके सिवाय रागी द्वेषी सब देव। (रत्न० श्लो० ४)

कुंद-विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें बत्तीसवां नगर (त्रि० गा० ७०७)

कुंदकुंद-[illegible] (दि० ग्रं० नं० ६८)

कुन्दकुन्दाचार्य-वि० सं० ४९ में प्रसिद्ध बड़े योगीराज थे, [illegible] नाम श्री महावीर स्वामीके समान [illegible] है। [illegible]

के प्रशिष्य, मतिसागरमुनिके शिष्य और सुप्रसिद्ध रूपसिद्धि[3] ग्रन्थके कर्त्ता दयापालमुनिके सब्रह्मचारी या सतीर्थ थे। शक संवत् ९४८ के लगभग उनके अस्तित्वका पता लगता है जब कि उन्होंने पार्श्वनाथचरितकी रचना की थी। पार्श्वनाथचरितकी निम्नलिखित प्रशस्तिसे इन सब बातोंका पता लगता है:—

श्रीजैनसारस्वतपुण्यतीर्थनित्यावगाहामलवुद्धिसत्वैः ।
प्रसिद्धभागी मुनिपुङ्गवेन्द्रैः श्रीनन्दिसंघोऽस्ति निवर्हितांहः ॥१॥
तस्मिन्नभूदद्भुतसंयमश्रीस्त्रैविद्यविद्याधरगीतिकीर्तिः ।
सूरिः स्वयं सिंहपुरैकमुख्यः श्रीपालदेवो नयवर्त्मशाली ॥२॥
तस्याभवद्भव्यमहोत्पलानां तमोपहो नित्यमहोदयश्रीः ।
निषेधदुमार्गनयप्रभावः शिष्योत्तमः श्रीमतिसागराख्यः ॥३॥
तत्पादपद्मभ्रमरेण भूम्रा निःश्रेयसश्रीरतिलोलुपेन ।
श्रीवादिराजेन कथा निवद्धा जैनी स्वबुद्धयमनिर्दयापि ॥ ४॥

शाकाब्दे नगवार्धिरन्ध्रगणने संवत्सरे क्रोधने
मासे कार्तिकनाम्नि वुद्धिमहिते शुद्धे तृतीया दिने ।
सिंहे पाति जयादिके वसुमतीं जैनी कथेयं मया
निष्पत्तिं गमिता सती भवतु वः कल्याणनिष्पत्तये ॥५

३— हितैषिणो यस्य नृणामुदात्तवाचा निवद्धा हितरूपसिद्धिः ।
वन्द्यो दयापालमुनिः स वाचा सिद्धः सतां मूर्धनि यः प्रभावै ॥
यह रूपसिद्धिव्याकरण मैसूरकी ओरियंटल लायब्रेरीमें मौजूद है ।

४—यस्य श्रीमतिसागरो गुरुरसौ चञ्चद्यशश्चन्द्रसूः
श्रीमान्यस्य स वादिराज गणभृत्सब्रह्मचारी विभोः ।
एकोऽतीव कृती स एव हि दयापालव्रती यन्मन-
स्यास्तामन्यपरिग्रहग्रहकथा स्वे विग्रहे विग्रहः ॥ ४ ॥

(मल्लिषेणप्रशस्तिः)

वनस्पतिकायिकोंके	२८ लाख	कोड़
जलचर पंचेन्द्रियोंके	१२॥ ,,	,,
पक्षियोंके	१२ ,,	,,
चौपदोंके	१० ,,	,,
सरीसृप	९ ,,	,,
देवोंके	२६ ,,	,,
नारकीके	२५ ,,	,,
मानवोंके	१४ ,,	,,
सब	१९७॥	लाख करोड़

(गो० जी० गा० ११३-११७)

कुलकर—महान पुरुष जो प्रजाको मार्ग बताते हैं मनु भी कहते हैं । हरएक अवसर्पिणी व उत्सर्पिणीकी कर्मभूमिकी आदि तीर्थंकरोंके जन्म पहले होते हैं । इस भरतक्षेत्रके गत तीसरे कालमें जब पल्यका ८ वां भाग बाकी रहे तब कुलकर एक दूसरेके पीछे नीचे प्रकार हुए । १ प्रतिश्रुति, २ सन्मति, ३ क्षेमंकर, ४ क्षेमंधर, ५ सीमंकर, ६ सीमंधर, ७ विमलवाहन, ८ चक्षुष्मान, ९ यशस्वी, १० अभिचन्द्र, ११ चन्द्राभ, १२ मरुदेव, १३ प्रसेनजित, १४ नाभिराजा, १५ श्री ऋषभदेव तीर्थंकर, १६ भरतचक्री । ये पूर्वजन्ममें मनुष्यायु बांधकर क्षायिक सम्यक्त पाचुके होते हैं । कोई अवधिज्ञान व कोई जातिस्मरण रखते हैं ।

(त्रि० गा० ७९१-७९४)

कुलगिरि—कुलाचल पर्वत हिमवन, महाहिमवन आदि जंबूद्वीपमें छः हैं । (त्रि० गा० ७२४)

कुलकोड़—१९७॥ लाख कोट कुल देखो "कुल"

कुलचर्या क्रिया—१९ वीं कर्तृन्वय क्रिया, गृहस्थ घरमें कुलका आचरण पाले । पूजा, दान, स्वाध्याय, संयम, तप, पाले व असि आदि कर्मोंसे आजीविका करे । (गृ० अ० १८)

कुल पुत्र—भविष्य भरत चौबीस तीर्थंकरोंमें सातवें तीर्थंकर । (त्रि० गा० ८७३)

कुलमद—अपने पिता, पितामह आदिके ऐश्वर्यको यादकर घमण्ड करना । यह मदन्कारा [illegible] ।

कुलाचल—जंबूद्वीपमें ६ कुलाचल पर्वत हैं जिन्होंने उसके सात विभाग क्षेत्ररूप किये हैं, ये पर्वत बराबर समुद्र तक लम्बे हैं व तीन अपने दक्षिणके क्षेत्रसे दूने चौड़े हैं व विदेहके उपर तीन अपने उत्तरके क्षेत्रसे दूने चौड़े हैं । भरतकी चौडाई ५२६$\frac{6}{19}$ योजन है तब हिमवन प्रथम कुलाचलकी १०५२$\frac{12}{19}$ योजन हैं । वे हैं—हिमवन, महाहिमवन, निषेध, नील, रुक्मि, शिखरी । धातुकी खण्डमें १२ व पुष्करार्धमें १२ हैं (त्रि० गा० ५६५) (देखो प्र० जि० पृ० ९९७-१) ।

कुंवरपाल—पं० बनारसीदास कृत सूक्त मुक्तावलीके छन्द रचे । (दि० ग्रं० नं० १०-४१)

कुरु—वंश, चन्द्रवंश, श्री ऋषभदेवके समयमें हुए । इनके मुखिया राजा सोम श्रेयांस हस्तनापुरवासी । (ह० पृ० १६९);

कुवाद—३६३ प्रकार एकांतमत-देखो "एकांतवाद"

कुबेर—इन्द्रके उत्तर दिशाका लोकपाल । यह एक भव ले मोक्ष जाता है । (त्रि० गा० २२८)

कुबेरदत्त—हरिषेण चक्रवर्तीके समय मलयदेशके रत्नपुरका प्रसिद्ध सेठ । (ह० १ ए० ५०)

कुव्यसन—खोटी आदत, सात प्रकार जूआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पीना, शिकार खेलना, चोरी करना, वेश्या सेवन, परस्त्री सेवन ।

कुव्यसन अतीचार—सात व्यसनोंके दोष बताये । दर्शन प्रतिमावालेके लिये छोड़ना नियमित हैं ।

अतीचार जूआ—बिना पैसेके शर्त लगाना, हारजीत करना, तापादि खेलना ।

अतीचार मांस—[illegible]

अतीचार मदिरा—[illegible]

यह राजा बड़ा वीर और प्रतापी था। उसके एक लेखमें जो कि शक संवत् ९४५ पौष कृष्ण २ का लिखा हुआ है—लिखा है कि राजाओंके राजा जयसिंहने—जो भोज[1]रूप कमलके लिये चन्द्र और राजेन्द्रचोल (परकेसरीवर्मा) हाथीके लिये सिंहके समान था—मालवावालोंके सम्मिलित सैन्यका पराजय किया और चेर तथा चोलवालोंको सज़ा दी।

आगे जो मल्लिषेणप्रशस्तिका कुछ अंश उद्धृत किया गया है, उसके तीसरे पद्यमें जो जयसिंहकी राजधानीको 'वाग्वधूजन्म-भूमौ' विशेषण दिया है और दूसरे पद्यमें वादिराजको 'सिंहसमर्च्य-पीठविभवः' विशेषण दिया है उससे मालूम होता है कि जयसिंह महाराजकी राजधानीमें विद्याकी बहुत चर्चा थी—बड़े बड़े वादी कवि तथा नैयायिक पण्डितोंका वहां निवास था और जयसिंह महाराज वादिराजसूरिके भक्त थे—उनकी सेवा करते थे। यद्यपि इस प्रकारका कोई प्रमाण नहीं मिला है कि जयसिंहनरेश जैनी थे या जैनधर्ममें श्रद्धा रखते थे; परन्तु यह बात दृढ़तापूर्वक कही जा सकती है कि जैनधर्मपर और जैनधर्मके अनुयायियोंपर उनकी कृपा होगी। यही कारण है कि वादिराजसूरिपर उनकी भक्ति थी।

हमारे यहां एक कथा प्रसिद्ध है—और उसका एकीभावकी संस्कृ[2]तटीकामें तथा और भी कई ग्र[3]न्थोंमें उल्लेख मिलता है कि वादिराजसूरिको एक वार कुष्टरोग हो गया था। महाराज जय-

---

१. कई विद्वानोंको इस विषयमें सन्देह हैं कि जयसिंहने भोजको हराया था।

२. देखो, काव्यमाला सप्तमगुच्छक, पृष्ठ १२ की टिप्पणी।

३. देखो, वृन्दावनविलास पृष्ठ ३१ का ३४ वां पद्य।

ष्मक कहलाता है फिर उसके पीछेके समयसे लेकर क्षायिक सम्यक्त ग्रहणके पहले समयतक वह जीव निष्ठायक कहलाता है । निष्ठायकको कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी कहते हैं । यदि देवगति बांधी हो तो यह जीव देवगतिमें, मनुष्य या तिर्यंच बांधी हो तो भोगभूमिमें, नरकगति बांधी हो तो पहले नर्कमें जाकर यह कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी निष्टापन करके क्षायिक सम्यक्ती होता है, कृतकृत्य वेदकके मात्र सम्यक्त प्रकृतिका द्रव्य नाश करनेको रह जाता है इसके कालके चार अंतर्मुहूर्त किये जाय जो पहलेमें मरे तो देव हो, दूसरेमें मरे तो देव या मनुष्य हो, तीसरेमें मरे तो देव, मनुष्य या तिर्यंच हो, चौथेमें मरे तो चारों ही गतिमें जावे । (ल० गा० ११०-१११-१४६)

कृतवीर्य—श्री अरहनाथ तीर्थंकरके समयमें राजा सहस्रबाहुका पुत्र जमदग्नि तपस्वीकी गौको यह बलपूर्वक लेआया और जमदग्निको मार डाला। तब जमदग्निके पुत्र परशुरामने सहस्रबाहु और कृतवीर्यको मारा (इ० २ पृ० २२-२९)

कृति—तीन आदिकी गणना जिसमें वर्गमूलको घटाकर बाकी जो बचे उसका वर्ग किया जाय तो वह बढ़े जैसे तीनमें संभवता वर्गमूल एकको घटाया तब दो रहे दोका वर्ग चारसो तीनसे बढ़ गया । यह लक्षण तीन आदिमें संभव है । (त्रि० गा० १६); वर्ग;

कृति कर्म—अंग बाह्यके १४ प्रकीर्णकोंमें छठा—इसमें नित्य नैमित्तिक क्रियाका वर्णन है । (ग० जि० पृ० १९०।८)

कृतिधारा—(वर्गधारा) एक चार आदि केवल ज्ञान तक कृतिधारा होता है । एक एक [illegible] केवलज्ञानके प्रथम वर्गमूल तक जो वर्गमूल [illegible] वर्ग करनेपर जो राशि हो जो इस [illegible] है । यदि १६ को केवलज्ञान मानले तो [illegible] होंगे । १, ४, ९, १६ क्योंकि [illegible] पहला स्थान, २ का वर्ग ४ दूसरा, ३ का वर्ग ९ तीसरा, ४ का वर्ग १६ । (त्रि० गा० ९२)

कृति मातृकाधारी (वर्ग मातृकाधारा)—कृतिधारामें जितने वर्गस्थान होंगे—१ से लेकर केवलज्ञानके वर्गमूल तक सबका वर्ग होसकता है । ये सब स्थान कृति मातृकाधारा हैं । यदि केवलज्ञानको १६ मानें तब इसके स्थान होंगे । १, २, ३, ४ (त्रि० गा० ६०);

कृतमाल—भरतके विजयार्द्धके तामिश्र कूटपर रहनेवाला व्यन्तरदेव । (त्रि० गा० ७३९);

कृतान्तवक्र—रामचन्द्रजीका सेनापति जो तप-कर स्वर्ग गया था व जो रामचन्द्रजीको समझाने आया, जब लक्ष्मणकी मृत्युसे वे शोकित होरहे थे । इसीने ही वैराग्य उत्पन्न कराया । इसीने सीताजीको रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वनमें छोड़ा था । (इ० ३ पृ० १३४);

कृष्ण—नौमें नारायण गत भरत अवसर्पिणीके । यह आगामी भरतकी चौबीसीमें निर्मल नामके १६ वें तीर्थंकर होंगे । (त्रि० गा० ८७४);

कृष्णदास ब्रह्मचारी—सं० विमलनाथ, मुनिसुव्रतपुराणके कर्ता (काष्टासंघी) (दि. ग्र. नं. ९२);

कृष्ण लेश्या—सबसे खराब परिणाम जो जड़-मूलसे नाश करना चाहे, दुराग्रही, निर्दयी, कठोर, लम्पट, पापासक्त (सा० अ० २-१); काला रंग द्रव्य लेश्या ।

कृष्णवर्ण नामकर्म—जिसके उदयसे शरीरका वर्ण काला हो । (सर्वा० अ० ८।११)

कृष्णा—सनत्कुमार [illegible] [illegible] [illegible] (त्रि० गा० [illegible])

[illegible]

कृषिकर्म आर्य—जो खेती करके [illegible] [illegible]

[illegible] ([illegible])

करना चाहते थे और वह विकार जैसा कि उक्त कथामें कहा गया है—कुष्ठरोग था।

दूसरे दिन महाराजने जाकर देखा तो वादिराजसूरिका दिव्य शरीर था—उनके शरीरमें किसी व्याधिका कोई चिन्ह नहीं दिखलाई देता था। यह देखकर उन्होंने उस पुरुषकी ओर कोपभरी दृष्टिसे देखा जिसने कि दरबारमें इस बातका जिकर किया था। मुनिराज राजाकी दृष्टिका अभिप्राय समझकर बोले—राजन्, इस पुरुषपर कोप करनेकी आवश्यकता नहीं है। वास्तवमें उसने सच कहा था—मैं सचमुच ही कोढ़ी था और उसका चिन्ह अभी तक मेरी इस कनिष्टिका (अंगुली) में मौजूद है। धर्मके प्रभावसे मेरा कुष्ट आज ही दूर हुआ है। इत्यादि। यह सुनकर महाराजको बड़ा आश्चर्य हुआ। मुनिराजपर उनकी बड़ी भक्ति हो गई। मल्लिषेणप्रशस्तिक 'सिंहसमर्च्यपीठविभवः' विशेषण इसी बातको पुष्ट करता है। ऐसे प्रभावशाली महात्माकी जयसिंहनरेश अवश्य ही भक्ति करते होंगे।

वादिराजसूरि कैसे दिग्गज विद्वान् थे, इस बातका अनुमान पाठक नीचे लिखे हुए पद्योंसे करेंगे। ये पद्य श्रवणबेलगुलके 'मल्लिषेणप्रशस्ति'[1] नामक शिलालेखमें खुदे हुए हैं:—

त्रैलोक्यदीपिका वाणी द्वाभ्यामेवोदगादिह।
जिनराजत एकस्मादेकस्माद्वादिराजतः॥ १॥
आरुह्याम्बरमिन्दुबिम्बरचितौत्सुक्यं सदा यद्यश-
श्छत्रं वाक्चमरीज—राजिरुचयोऽभ्यर्णं च यत्कर्णयोः।

1. यह प्रशस्ति शक संवत् १०५० की लिखी हुई है।

दूसरे समयमें वे ही प्रदेश कपाटके आकार फैलते हैं। वातवलयको छोड़कर यदि पूर्व सन्मुख हों तो दक्षिण उत्तर कपाट करें। यदि उत्तर सन्मुख हों तो पूर्व पश्चिम कपाट करें। खड़ेके बारह अंगुल मोटा बैठके शरीरसे तीगुना मोटा प्रदेश रहते हैं। तीसरे समयमें प्रतर रूपसे सर्व आत्मप्रदेश वातवलयको छोड़कर सर्व लोकमें फैलते हैं। चौथे समयमें वातवलयको भी लेकर सर्व लोकमें फैल जाते हैं। लोक पूरण होजाते हैं फिर पलटते हैं। पांचवे समयमें प्रतररूप होते हैं। छठेमें कपाटरूप, सातवेमें दंडरूप आठवेमें मूल देहरूप। (भ० पृ० ६२१)

केवली—सर्वज्ञ वीतराग अरहंत परमात्मा।

केशरिया—अतिशयक्षेत्र। उदयपुर स्टेटमें उदयपुरसे ४० मील ग्राम धुलेव। बहुत विशाल मंदिर है। इसके पाषाणके कोटको सागवाडा निवासी दि० जैन हूमड सेठ धनजी करणने सं० १८६३ में बनवाया था। श्री रिषभदेवकी मूर्ति श्यामवर्ण ६ फुट ऊँची पद्मासन दिगम्बरी मुख्य मंदिरमें है। जैन लोग केशर बहुत चढ़ाते हैं इससे प्रतिमा या क्षेत्रका नाम केशरियाजी पड़ गया है। अन्य बहुतसे जिनमंदिर कोटके भीतर हैं। (ती० या० द० पृ० १२१)

केशरीविक्रम या केशरीसिंह—सातवें नारायणदत्तके मामा विद्याधर, इन्होंने सिंहवाहनी व गरुड वाहिनी विद्याएँ नारायणदत्त व बलदेव नंदिमित्रको दी। (ह० २ पृ० ३६)

केशलोंच—जैन साधु व ऐलक आदिकी [illegible] क्रिया। साधुके २८ मूलगुणोंमें २२ वां मूलगुण दो या तीन या चार मास पीछे उत्कृष्ट मध्यम, जघन्य रूपसे प्रतिक्रमण व उपवास सहित अपने ही हाथसे मस्तक दाढी मूछके केश उपाड़ना। इससे स्वाधीनता, दीन वृत्ति अभाव व शरीरसे निर्ममत्व सिद्ध होता है (मू० गा० २९)।

केशवाणिज्य—दास, दासी, पशु आदिकी बेचके आजीविका करना। (सा० अ० ५–२२)।

केशव—नारायण। प्रत्येक अवसर्पिणी उत्सर्पिणीमें नौ होते हैं।

केशवचंद्राचार्य—वि. सं. १२६। (दि. ग्रं. ५३)

केशवराज—शब्दमणि व्याकरण व शब्दमणिदर्पण टीकाके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ४४८)

केशववर्णी—गोम्मटसारकी संस्कृत टीकाके कर्ता जिसे उन्होंने वि० सं० १३३७ ज्येष्ठ सुदी ९ को पूर्ण की। (दि० ग्र० नं० ५४)

केशवसेन—मुनिसुव्रत पुराण, कर्णामृत पुराण, चतुर्विंशति स्तोत्र, यमकबन्ध आदिके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ५६)

केशवाप कर्म या संस्कार—बालक १२ वां संस्कार। जब बालकके केश बढ़ जावें ३ व ४ वर्षका हो तब मुंडन कराया जावे। होम पूजा करके भगवानके गंधोदकसे केश गीले करके चोटी सहित केश मुंडवावें फिर गंधजलसे स्नान करा वस्त्र पहना मुनिराजके पास वा जिन मंदिर लेजावे। चोटीके स्थानपर साथिया किया जावे। मंत्र व विधि देखो। (गृ० अ० ४);

केशियण्ण—कर्णाटक कवि (सन् १२००) सिद्धप्रायोपगमनका कर्ता। (दि० ग्रं० नं० ४३);

केशिराज—कर्णाटक जैन कवि (सन् ११६०) सूक्ति सुधार्णवके कर्ता मल्लिकार्जुनका पुत्र। होयसाल वंशी राजा नरसिंहके कटकोपाध्याय सुमनोबाणका दौहित्र जनकविका भानजा। चोलपालक चरित्र, सुभद्राहरण, प्रबोधचंद्र, किरातार्जुनीय आदिका कर्ता। (क० जै० नं० २७)

केशरीसिंह पं०—[illegible] पुराणके कर्ता (दि० ग्र० नं० ६७)

केशरीसिंह [illegible]—[illegible] वचनिकाके कर्ता (दि० ग्र० नं० १३–२१)

कै

कैलाश यात्रा—एक छोटी पुस्तक जिसमें [illegible] दास [illegible] पुस्तक [illegible] है। मुद्रित है।

ने इस प्रकार की है—चौलुक्यचक्रवर्ती जयसिंहकी राजधानीमें—जो कि सरस्वतीरूपी स्त्रीकी जन्मभूमि थी—विजेता वादिराजसूरिकी इस प्रकार डुगडुगी पिटती थी कि हे वादियो, वादका घमंड छोड़ दो, हे काव्यमर्मज्ञो, तुम अपनी गमकताका गर्व त्याग दो, हे वाचालो, वाचालता छोड़ दो और हे कवियो, कोमल मधुर और स्फुट काव्य रचनाका अभिमान त्याग दो। जिसकी हज़ार जिह्वायें हैं वह नागराज पातालमें रहता है और इन्द्रका गुरु जो वृहस्पति है वह स्वर्गलोकमें चला गया है। ये दोनों वादी उक्त-स्थानोंमें जीते रहें। इन्हें छोड़कर यहां कोई वादी नहीं रहा है। बतलाइये, यहां और कौन है? जो थे वे तो सब बलक्षीण हो जाने-से गर्व छोड़कर राजससभामें इस विजयी वादिराजको नमस्कार करते हैं। इत्यादि।

एकीभावस्तोत्रके अन्तमें किसी कविका बनाया हुआ जो यह श्लोक है, उसे तो पाठकोंने सुना ही होगा—

वादिराजमनु शाब्दिकलोको वादिराजमनुतार्किकसिंहः।
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते वादिराजमनु भव्यसहायः॥

अर्थात् जितने वैयाकरण हैं, जितने नैयायिक हैं, जितने कवि हैं और जितने भव्यसहायक हैं वे सब वादिराजसूरिसे पीछे हैं। भाव यह कि वादिराजके समान कोई वैयाकरण नैयायिक और कवि नहीं है।

४. समादान क्रिया–संयमी होकर संयमके खण्डनकी तरफ झुकाव।

५. ईर्यापथ क्रिया–भूमि देखकर चलना।

६. प्रादोषिकी क्रिया–क्रोधके आवेशमें वर्तना।

७. कायिकी क्रिया–दुष्टतासे काम करना।

८. आधिकरणिकी क्रिया–हिंसाके उपकरण रखना।

९. पारितापिकी क्रिया–प्राणियोंको संताप उपजाना।

१०. प्राणातिपातिकी क्रिया–प्राण हरण करना।

११. दर्शन क्रिया–रागसे मनोहर रूप देखना।

१२. स्पर्शन क्रिया–रागसे मनोज्ञ वस्तु छूना।

१३. प्रात्ययिकी क्रिया–इंद्रिय विषयोंके अपूर्व २ साधन बनाना।

१४. समन्तानुपातन क्रिया–स्त्री पुरुष व पशुके स्थानमें मल मूत्र करना।

१५. अनाभोग क्रिया–विना देखे विना झाड़े शरीरादि रखना।

१६. स्वहस्त क्रिया–दूसरेके करने योग्य कामको आप करना।

१७. निसर्ग क्रिया–पापके कार्योंकी आज्ञा करना।

१८. विदारण क्रिया–दूसरेके पापाचरणको प्रकाशना।

१९. आज्ञा व्यापादिकी क्रिया–कषायवश आगमके अनुसार स्वयं न चलनेपर ऐसा ही आगममें है यह कहना।

२०. अनाकांक्षा क्रिया–शठता व आलस्यसे शास्त्रोक्त विधिमें अनादर करना।

२१. प्रारम्भ क्रिया–छेदन भेदन करना, कराना आदि।

२२. पारिग्राहिकी क्रिया–परिग्रहकी रक्षामें ध्यान करना।

२३. माया क्रिया–कपटसे ज्ञान व श्रद्धानमें वर्तना।

२४. मिथ्यादर्शन क्रिया–अन्य मिथ्यात्वकी क्रिया करनेवालेकी प्रशंसा करना।

२५. अप्रत्याख्यान क्रिया–त्याग नहीं करना, संयम न धारना। (सर्वा० अ० ६–५)

क्रियाकोष–दौलतराम व किशनसिंहकृत छंदबद्ध। पं० किशनसिंह पाटनीकृत सं० १७८४में, दौलतरामने १७९५ में रचा।

क्रियाऋद्धि–दो प्रकार है। १ चारणत्व–इसके भेद हैं १ जलचारण–जलमें थलवत जाना, जीव न मरें। २ जंघाचारण–भूमिसे ४ अंगुल ऊँचा जांघको उठाए चले जाना, ३ तंतुचारण–तंतुपर चलना, तंतु टूटे नहीं, ४ पुष्प चारण–पुष्पपर बाधा रहित चलना, ५ पत्र चारण–पत्रोंपर बाधा रहित जाना, ६ श्रेणी चारण–आकाशकी श्रेणीमें चलना, ७ अग्नि शिखा चारण–अग्निशिखापर बाधा रहित चलना, ८ आकाशगामित्व–कायोत्सर्ग व पद्मासन आसनसे ही आकाशमें चले जाना। (श० प्र० २२१)।

क्रियावादी–१८० प्रकार एकांतमत देखो "एकांतवाद।"

क्रियाविशाल पूर्व–द्वादशांग वाणीके १४ पूर्वोंमेंसे ११ वां पूर्व। इसमें [illegible] व उनके कारण व ज्योतिषशास्त्रका [illegible] है। ९ करोड़ पद हैं। (गो० जी० गा० ३६६)।

क्रीततर दोष–[illegible] दाम आदि व विद्या आदि बदलेमें देकर आहार लाकर देना। (मू० गा० ४३१)।

क्रोध कषाय–देखो "कषाय"

क्रोध त्याग–[illegible] क्रोध न करके [illegible]। (सर्वा० [illegible])।

क्रौंचवर–[illegible] (त्रि० गा० ३०६)।

पद्य हैं और उनमें यशोधर महाराजकी संक्षिप्त कथा कही गई है। इस काव्यको तंजौरके श्रीयुत टी. एस. कूप्पूस्वामी शास्त्रीने अभी हाल ही छपाकर प्रकाशित किया है । वादिराजसूरिकी रचनामें यह बड़ी खूबी है कि वह सरल होनेपर भी कोमल मधुर और मनोहारिणी है। हमारी इच्छा थी कि उनके ग्रन्थोंके कुछ पद्य यहां उद्धृत करके पाठकोंको उनकी खूबी दिखलावें; परन्तु स्थानाभावसे हम ऐसा न कर सके। अस्तु। तीसरा ग्रन्थ पार्श्वनाथचरित है। उक्त ग्रन्थके हमने दर्शनमात्र किये हैं; पर उसे पढ़ नहीं सके। हमारे मि- पं० उदयलालजी काशलीवालके पास वह है। उन्होंने हमसे उसके कवित्वकी बहुत ही प्रशंसा की है। चौथा ग्रन्थ काकुत्स्थचरित है। यशोधरचरितमें इस ग्रन्थका उल्लेख तो मिलता है; परन्तु तलाश करनेपर भी इसका कहीं पता नहीं लगा।

श्रीपार्श्वनाथ–काकुत्स्थचरितं येन कीर्तितम् ।
तेन श्रीवादिराजेन दृब्धा याशोधरी कथा ॥५॥ सर्ग १

इन चार ग्रन्थोंके सिवा मल्लिषेणप्रशस्तिका जो ‘ त्रैलोक्यदीपिका वाणी ’ आदि श्लोक है उससे मालूम होता है कि वादिराजसूरिका कोई ‘त्रैलोक्यदीपिका ’ नामका ग्रन्थ भी है।

---

१. अर्थात् जिसने पार्श्वनाथचरित और काकुत्स्थचरितकी रचना की, उसी वादिराजने यह यशोधरचरित बनाया। काकुत्स्थ नाम रामचन्द्रका है, अतएव इस ग्रन्थमें बहुत करके उन्हींका चरित होगा।

द्वारा सब प्राणियोंको अभयदान है व ज्ञानदान होता है यह क्षायिक दान है, केवलीके शरीरको बल प्रदानकी कारण परम शुभ अनन्त आहारक वर्गणाएं समय २ उनके शरीरको सम्बन्ध करती हैं यह क्षायिक लाभ है। पुष्पवृष्टि आदि समवसरणमें होती है यह क्षायिक भोग है, सिंहासन छत्रादि प्रगट होते हैं यह क्षायिक उपभोग है। अनंत बल प्रगट होता है यह अनन्त वीर्य है। वास्तवमें आत्माको ही निज दत्त दान, आत्म सुख लाभ, आत्म सुख भोग व आत्म सुख उपभोग व अनन्त बल ये ही पांच लब्धियां हैं (सर्वा॰ अ॰ २–४)

क्षायिक भाव–चार घातिया कर्मोंके क्षयसे जो भाव नौ प्रकार केवलीके होते हैं। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, क्षायिक दानादि ५, क्षायिक सम्यग्दर्शन, क्षायिक चारित्र। (सर्वा॰ अ॰ २–४)

क्षायिक सम्यग्दर्शन या सम्यक्त–जो सम्यग्दर्शन या आत्म प्रतीति अनंतानुबंधी चार कषाय तथा मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक्त प्रकृति इन सात कर्मोंके क्षयसे प्रगट हो। यह अविनाशी है। चौथे अविरत सम्यक्त गुणस्थानसे लेकर सातवें तक किसीमें पैदा होसक्ता है। ऐसे सम्यक्तवाला जीव उसी भवसे या नरक व देवायुबांधी हो तो तीसरे भवसे तथा मनुष्य या तिर्यंच आयु बांधी हो तो चौथे भवसे मुक्त होजाता है। (गो॰ जी॰ गा॰ ६४६);

क्षायिक सम्यग्दृष्टि–क्षायिक सम्यक्तधारी जीव।

क्षायिकज्ञान–ज्ञानावरण कर्मके सर्वथा क्षयसे जो केवलज्ञान प्राप्त हो, यह ज्ञान बिना क्रमके आत्मा हीके द्वारा सहज ही तीन लोक व अलोकके सर्व द्रव्य गुण पर्यायोंको जानता है। (सर्वा॰ अ॰ २–४);

क्षायोपशमिक भाव–मिश्र भाव–देखो शब्द "क्षयोपशम" कर्मोंके क्षयोपशमसे जो भाव हों वे १८ प्रकारके हैं—

४–ज्ञान–मति श्रुत, अवधि, मनःपर्यय।

३–अज्ञान–कुमति, कुश्रुत, कुअवधि।

३–दर्शन–चक्षु, अचक्षु, अवधि।

५–लब्धि–क्षायोपशमिक–दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य।

१–क्षायोपशमिक सम्यक्त, १–क्षायोपशमिक चारित्र, १–संयमासंयम (देशव्रत)=१८ (सर्वा॰ अ॰ २–५);

क्षायोपशमिक लब्धि–दानांतराय आदिके क्षयोपशमसे जो थोड़ा दान देनेका उत्साह, थोड़ा लाभ, थोड़ा भोग, थोड़ा उपभोग, थोड़ा आत्मबल प्रगट हो सो क्रमसे क्षायोपशमिक दान, लाभ भोग, उपभोग, वीर्य है। (सर्वा॰ अ॰ २–५);

क्षायोपशमिक सम्यक्त या वेदक सम्यक्त–जो तत्त्वार्थ श्रद्धान अनंतानुबंधी चार कषायका उपशम या विसंयोजन होते व मिथ्यात्व व मिश्र प्रकृतियोंके उपशम या क्षयसे होते व सम्यक्त मोहनीयके उदयसे हो। यह कुछ मलीन होता है उसमें चल, मल, अगाढ़ दोष लगते हैं। यहां सम्यक्त प्रकृतिका फल वेदा जाता है इसलिये इसको वेदक कहते हैं। सम्यक्त प्रकृति देश घातीका उदय होता है व वर्तमान सर्व घाती अनन्तानुबन्धी आदिका उपशम या क्षय होता है व आगेके इन कर्मोंका सत्तारूप उपशम रहता है इसलिये इसे क्षायोपशमिक कहते हैं। चल दोष वह है जिससे अपने श्रद्धानमें भी सरागकी तरह चंचलता हो। जैसे अपने बनाए मंदिर व दिरमें अपनपनेकी अधिक श्रद्धा रखनी। मलदोष–में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मिथ्यादृष्टि, प्रशंसा व संस्तव ये पांच अतीचार लग जाते हैं। अगाढ़ दोष–में गाढ़पना न हो, सर्व अर्हंत समान हैं तौभी किसीमें अधिक [illegible] करे। जैसे विघ्न नाशमें ही शांतिनाथ ही कुशल होते हैं। (गो॰ जी॰ गा॰ २५);

क्षायोपशमिक या वेदक सम्यग्दृष्टि–क्षायोपशमिक सम्यक्तधारी जीव।

श्रीवादिराजसूरिके समकालीन कई बड़े २ विद्वान हो गये हैं। श्रीविजयभट्टारककी–जिनका कि दूसरा नाम पण्डितपारिजात था, स्वयं वादिराजसूरिने एक पद्यमें स्तुति की है। वह पद्य यह है.—

यद्विद्यातपसोः प्रशस्तमुभयं श्रीहेमसेने मुनौ
प्रागासीत्सुचिराभियोगवलतो नीतं परामुन्नतिम्।
प्रायः श्रीविजये तदेतदखिलं तत्पीठिकायां स्थिते
संक्रान्तं कथमन्यथानतिचिराद्विद्येदृगीदृक्तपः ॥

ये विजयभट्टारक हेमसेन मुनिके पदपर बैठे थे। इनकी प्रशंसाका एक श्लोक मल्लिषेणप्रशस्तिमें भी मिलता है। इस श्लोकसे यह भी मालूम होता है कि उस समयके कोई गंगवंशी नरेश उनके भक्त थेः—

गङ्गावनीश्वरशिरोमणिवन्धसन्ध्या-
रागोल्लसच्चरणचारुनखेन्दुलक्ष्मीः।
श्रीशब्दपूर्वविजयान्तविनूतनामा
धीमानमानुषगुणोऽस्ततमःप्रमांशुः ॥

बहुत करके ये गंगवंशीनरेश चामुंडराय महाराज होंगे। क्योंकि चामुंडरायका समय शककी दशवीं शताब्दी ही है। उनका जन्म शक संवत् ९०० में हुआ था। यद्यपि वे महाराज राजमल्लके मंत्री या सेनापति थे तो भी राजा कहलाते थे। वे जैनधर्मके परम भक्त थे, यह तो प्रसिद्ध ही है।

सर्व अवगाहनाके भेदोंके क्रमसे प्राप्त हो जितना काल लगे वह स्वक्षेत्र प० है।

२–परक्षेत्र परिवर्तन–सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तके निगोदिया घनांगुलके असंख्यातवां भाग अवगाहना-का शरीर धरकर लोकाकाशके मध्य जो मेरुके नीचे आठ प्रदेश हैं उनको मध्यमें लेकर जन्मे। सांसके अठारहमें भाग आयु पाय मरे वही जीव फिर वहीं उतनी ही अवगाहनाका शरीर धारे। ऐसे क्रमसे उतनीवार धारे जितने प्रदेश घनांगुलके असंख्या-तवें भाग प्रमाण जघन्य अवगाहनामें हैं। फिर उससे निकटवर्ती एक प्रदेशको रोककर उपजे इस तरह एक एक प्रदेश क्रमसे रोकता रोकता लोका-काशके सर्व प्रदेशोंको अपना जन्म क्षेत्र बनाले। जितना काल लगे सो परक्षेत्र परिवर्तन है। दोनोंका जोड़ सो इस क्षेत्र परिवर्तनका काल है। (गो० जी० गा० ५६०);

क्षेत्र लोकोत्तर मान–जघन्य एक प्रदेश उत्कृष्ट सर्व आकाश। (त्रि० गा० ११);

क्षेत्र विपाकी कर्म प्रकृति–नरक, देव, तिर्यंच व मनुष्य गत्यानुपूर्वी ये चार प्रकृति जिनके उद-यसे विग्रह गतिमें जीवका आकार पूर्व शरीर प्रमाण बना रहता है। (जै० सि० प्र० नं० ३४९);

क्षेत्र वृद्धि अतीचार–दिग्विरतिका चौथा अ-तीचार। क्षेत्रकी जो मर्यादा जन्म पर्यंत कर चुका है उसमें एक तरफ बढ़ा लेना, दूसरी तरफ घटा देना। (सर्वा० अ० ७–६०);

क्षेमंकर–लौकांतिक देवोंका एक भेद जो अंत-रालमें है, (त्रि० गा० ५३७); विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें ६४ वां नगर, (त्रि० गा० ७००); भ-रतके गत तीसरे कालके अन्तमें प्रसिद्ध तीसरे कुल-कर, (त्रि० गा० ७९१); ज्योतिष ८८ ग्रहोंमें ६१ वां ग्रह। (त्रि० गा० ६६ [illegible]);

क्षेमंधर–भरतके गत तीसरे कालमें प्रसिद्ध चौथे कुलकर, (त्रि० गा० ७९२);

क्षेमचरी–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें २२ वां नगर। (त्रि० गा० ६९८);

क्षेमपुरी–विदेहकी दूसरी राजधानी। (त्रि० गा० ७१२);

क्षेमराज–णमोकार ध्यानार्णव (१४४६ श्लोक) के कर्ता। (दि० ग्र० नं० ४०४);

क्षेमा–विदेहकी पहली राजधानी (त्रि. ७१२)

क्षौद्रवर–सातवां महाद्वीप व समुद्र (त्रि.गा.३०५)

ख

खड्गपुरी–विदेह क्षेत्रकी २० वीं नगरी।
(त्रि० गा० ७१९)

खड्गा–विदेह क्षेत्रकी चौथी नगरी।
(त्रि० गा० ७१२)

खड्गासन–कायोत्सर्ग, दोनों हाथ लम्बे लट-काके चार अंगुलके अंतरसे पगोंको रखकर सीधा ध्यानरूप खड़े होना।

खड्गसेन–पंडित नारनौलवालेने आगरामें सं० १७१३ में त्रिलोक दर्पण छन्द बन्द रचे। (दि० ग्र० नं० १४–४१);

खड्गसेन गृहस्थ–आगरावासी सहस्रनाम पूजा व त्रिलोकदर्पण कथाके कर्ता। (दि०ग्र० नं० ९९);

खड़ी–दूसरे नरककी पृथ्वीमें पांचवां इन्द्रक बिला।

खड़िका–दूसरे नरककी पृथ्वीमें छठा इन्द्रक बिला। (त्रि० गा० १५५)

खंडगिरि–उड़ीसामें कटकसे तीसरा स्टेशन। भुवनेश्वरसे ५ मील–पहाड़ी इसमें कई गुफाओंमें १५० जैन मूर्तियां हैं। कई गुफाएं मुनियोंके ध्यान करनेकी हैं। खारवेलके नामधारी शिलालेख भी हैं जैसे 'आचार्य कुलचन्द्रस्य शुभ' [illegible] [illegible] ([illegible] पृ० २१२) [illegible] [illegible] सन् १०५६ [illegible] १५० वर्ष [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] है

खंड प्रपात–विजयार्द्ध पर्वतकी गुफा।
(त्रि० गा० १८१)

महाकवि मल्लिषेण।

मल्लिषेण नामके पहले वहुतसे आचार्य हो गये हैं, और उनमेंसे वहुतसे ऐसे हैं जिन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना भी की है। हम जिन मल्लिपेणके विषयमें लिखना चाहते हैं, उनसे कुछ ही वर्षों पीछे एक माल्लिपेण नामके दूसरे आचार्य हो गये हैं, जो पहले मल्लिषेणकी ही श्रेणीके विद्वान् थे। इस थोड़ेसे अन्तरके कारण अभीतक वहुत लोग दोनोंको एक ही समझते थे। परन्तु अब यह भ्रम दूर हो गया है। पहिले मल्लिषेण उभयभाषाकविचक्रवर्तीके पदसे सुशोभित थे और दूसरे मलधारिन् पदसे युक्त थे।

उभयभाषाकविचक्रवर्ती मल्लिषेणने महापुराणकी प्रशस्तिमें अपना परिचय इस प्रकार दिया है:—

तीर्थे श्रीमुलगुन्दनाम्निनगरे श्रीजैनधर्मालये
स्थित्वा श्रीकविचक्रवर्तियतिपः श्रीमाल्लिषेणाह्वयः।
संक्षेपात्प्रथमानुयोगकथनव्याख्यान्वितं शृण्वतां
भव्यानां दुरितापहं रचितवान्निःशेषविद्याम्बुधिः॥
वर्षैकत्रिंशताहीने सहस्रे शकभूभुजः।
सर्वजिद्वत्सरे ज्येष्ठे सशुक्ले पञ्चमीदिने॥

---

१. स्याद्वादमंजरीके कर्त्ताका नाम भी मल्लिषेण ही है, परन्तु वे श्वेताम्वर सम्प्रदायमें हुए हैं। २. इस पदका अर्थ समझमें नहीं आता और भी दो एक विद्वान् इस पदसे शोभित रहे हैं, जैसे कि मलधारि श्रीराजशेखरसूरि।

गगननन्दन–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें तेइसवां नगर (त्रि० गा० ७०४);

गगनवल्लभ–विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें तेतीसवां नगर। (त्रि० गा० ७०९);

गंगकीर्ति–आचार्य ११९९ (दि.ग्र.नं० ६०)

गंगदेव–कवि श्रावक प्रायश्चित्तके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ६१);

गंगादास–सम्मेदविलास, सम्मेदशिखर पूजा आदिके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ६२);

गंगानदी–महागंगा नदी जो भरतके हिमवन् पर्वतके पद्मद्रहके पूर्व वज्रद्वारसे निकलकर पर्वतपर पांचसौ योजन जाकर, पर्वतपर गंगा नामा कूट है उसको आध योजन छोड़ मुड़कर दक्षिण दिशाकी तरफ चलकर ५२३ योजन आध कोश जाय तटपर गई, वहां जीह्विका नामा मणिमई प्रणाली है। जो दो कोश लम्बी ऊँची गौमुख है। छः योजन एक कोश चौड़ी है। इसके द्वारसे पर्वतसे पड़ी पचीस योजन हिमवत्की छोड दश योजनकी चौड़ाईके लिये पर्वतके मूलमें जो कुँड दस योजन गहरा व साठ योजन चौड़ा गोल है उसमें पड़ती है। उस कुण्डके मध्य जलसे ऊपर आध योजन ऊँचा योजन चौड़ा गोल टापू है। उसके मध्य दश योजन ऊँचा पर्वत है। उसपर श्री देवीका मंदिर है। उस मंदिरके ऊपर कमलासनपर श्रीजिनबिम्ब है उसपर गंगानदीका जल पडता है। इस कुण्डसे निकल दक्षिण दिशा सुधी जाय विजयार्द्धकी खण्डप्रपात गुफाकी कुतप देहलीके नीचे होकर गुफामें प्रवेशकर आठ योजन चौड़ी होकर उस गुफाके उत्तरद्वारकी दिहलीके नीचे होकर गुफासे बाहर निकलती है। वहां गुफाके दो कुण्डोंसे निकली हुई उनमग्न व निमग्न नामी नदियें गंगासे मिलती हैं। फिर यह गंगा दक्षिण भरतके आधे भागमें सीधी दक्षिणको गई सो $119\frac{3}{38}$ योजन गई फिर मुड़कर पूर्व दिशा सन्मुख होकर जंबूद्वीपके कोटका मागध नामा द्वारके भीतर होकर लवणसमुद्रमें पड़ी है। जब गंगा नदी निकलती है तब सवा छ योजन चौड़ी होती है। इसका दश गुणा साढ़े बासठ योजन होकर समुद्रमें गिरती है (त्रि० गा० ५८२....) ऐसी दो दो गंगा नदी धातुकी खंड व पुष्करार्द्धमें भी हैं, विस्तारमें अंतर है, यह नदी अकृत्रिम है सदा ऐसी बहा करती हैं।

गच्छ–सात मुनियोंका समूह (मू०गा० १९३)

गज–सौधर्म ईसान स्वर्गोंमें उनतीसवां इन्द्रक विमान (त्रि० गा० ४६६)

गजकुमार–वसुदेवजीका पुत्र अंतमें मुनि हुए उपसर्गसह स्वर्ग गए।

गजदन्त–मेरुकी चार विदिशाओंमें हाथीके दांतके आकार चार पर्वत हैं–माल्यवान, महासौमनस, विद्युपभ, गंधमादन। ये पर्वत मेरुपर्वत व नील व निषिद्ध कुलाचलोंको स्पर्शते हैं (त्रि. गा. ६६३–६६४) इनपर क्रमसे ईशान दिशासे लगाय नव सात, नव सात कूट हैं, (त्रि. गा. ७३७) पांच मेरु सम्बन्धी ढाईद्वीपमें बीस गजदंत हैं। इनके मध्यमें दोनों तरफ सुमेरुके उत्तम भोगभूमि है।

गजपन्था–तीर्थ, दि०जैन सिद्धक्षेत्र। बंबई प्रांत नासिक स्टेशनसे ९ मील व नासिक शहरसे ४मील। उत्तरको मसरूल गामसे १ मील४००फुट ऊँचा है। यहांसे आठ कोड़ि मुनि व बलभद्रादिने मोक्ष पाई है। ऊपर चरणचिह्न हैं व गुफाओंमें प्राचीन दि.जैन मूर्तियां अंकित हैं नीचे मंदिर व धर्मशाला हैं (या० द० पृ० २९१);

गण–तीन मुनियोंका समूह (मू. गा. १९१) वृद्ध मुनियोंका समुदाय (ह० पृ० ६१२);

गणग्रह क्रिया–दीक्षान्वय क्रिया चौथी। नया दीक्षित जैनी अपने घरसे पूर्व स्थापित अन्य देवताओंकी मूर्तियोंको अन्य स्थानमें पधरावे। रागी देवोंको विदाकर वीतराग देवकी पूजा व स्थापना करे। (गृ० अ० ९)

गणकपति–ज्योतिषियोंका नायक (त्रि.गा.६८३)

वंशपुराणके कर्त्ता **जिनसेनने** हरिवंशपुराण शक संवत् ७०५ में समाप्त किया है, सो उक्त दो जिनसेन तो मल्लिषेणके पिता हो नहीं सकते हैं; क्योंकि इन दोनोंसे मल्लिषेणका समय दो सौ वर्ष पीछे है, अतः इनके पीछे होनेवाले कोई तीसरे ही जिनसेन इनके पिता होंगे।

मल्लिषेणकृत महापुराण बहुत छोटा है। केवल दो हजार श्लोकोंमें उसकी संक्षेपतः रचना की गई है। परन्तु ग्रन्थ बहुत सुन्दर है और उसमें अनेक विषय ऐसे आये हैं जो दूसरे ग्रन्थोंमें नहीं हैं। इसकी एक प्रति कोल्हापुरके भट्टारक **लक्ष्मीसेन**जीके मठमें प्राचीन कानड़ी लिपिमें ताड़पत्रोंपर लिखी हुई है। उसपर इस बातका उल्लेख नहीं है कि वह कब लिखी गई है। श्रवणवेलगुलके **ब्रह्मसूरिशास्त्रीके** भंडारमें भी शायद उसकी एक प्रति है।

' उभयभाषाकविचक्रवर्ती ' ने इसमें सन्देह नहीं कि अनेक ग्रन्थोंकी रचना की होगी, परन्तु अभीतक उनके सिर्फ तीन ही ग्रन्थोंका पता लगा है, एक **महापुराण** जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है, दूसरा **नागकुमारकाव्य** और तीसरा **सज्जनचित्तवल्लभ**। ये तीनों ग्रन्थ संस्कृतमें हैं। प्राकृतमें अभीतक आपका कोई भी ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुआ है, परन्तु होगा अवश्य। क्योंकि आपने अपनेको संस्कृतके समान प्राकृतका भी कवि कहा है। प्रवचनसारटीका, पंचास्तिकाय-टीका, ज्वालिनीकल्प, पद्मावतीकल्प, वज्रपंजरविधान, ब्रह्मविद्या और आदिपुराण ये ग्रन्थ भी मल्लिषेणाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हैं; परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि उनमेंसे उभयभाषाकविचक्रवर्तीके रचे हुए कौनसे हैं, और दूसरोंके कौनसे ?

गतिगमन—लेश्या या कषाय रहित योग प्रवृत्ति रूप भाव जैसे मरते समय होते हैं वैसे ही पापोंका जहां संयोग होता है उसी गतिमें जीव जाता है—

लेश्या भेदसे	कहां जाता है
(१) उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या	सर्वार्थसिद्धि
(२) जघन्य ,, ,,	शतार सहस्रार स्वर्गमें
(३) मध्यम ,, ,,	इन दोनोंके मध्य
(४) उत्कृष्ट पद्म लेश्या	सहस्रार स्वर्ग
(५) जघन्य ,,	सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग
(६) मध्यम ,,	इन दोनोंके मध्यमें
(७) उत्कृष्ट पीत लेश्या	सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग
(८) जघन्य ,,	सौधर्म ईशान
(९) मध्यम ,,	इन दोनोंके मध्यमें
(१०) उत्कृष्ट कृष्ण लेश्या	सातवां नरकका इंद्रक
(११) जघन्य ,,	पांचमा नरक, अंतइंद्रक
(१२) मध्यम ,,	दोनोंके मध्यमें
(१३) उत्कृष्ट नील लेश्या	पांचवा नरकका अंतसे पहला इन्द्रक
(१४) जघन्य ,,	तीसरा नरकका अंत इंद्रक बिला
(१५) मध्यम ,,	दोनोंके मध्यमें
(१६) उत्कृष्ट कापोत लेश्या	तीसरा नरकका अंतसे पहला इंद्रक
(१७) जघन्य ,,	पहला नरक पहला इंद्रक
(१८) मध्यम ,,	दोनोंके मध्यमें

(गो० जी० गा० ५२०–५२६)

गतिनाम कर्म—वह कर्म जिसके उदयसे चार गतिमेंसे किसीमें जावे।

गतिपरिणाम—गमनका स्वभाव जीवका ऊपर जानेका।

गति मार्गणा—चार गतियोंमें यदि ढूंढा जावे तो सर्व संसारी जीव मिल जावेंगे।

गद्यचिंतामणि—जीवन्धर चरित्र सं० में मनोहर गद्य। मुद्रित।

गन्ध—मध्य लोकमें रहनेवाले व्यंतरोंकी जाति जो १ लाख दस हजार एक हाथ पृथ्वीसे ऊपर बसते हैं, इनकी आयु अस्सी हजार वर्षकी होती है। (त्रि० गा० २९१–३) सातवें क्षौद्र समुद्रका स्वामी व्यंतरदेव (त्रि० गा० ९६४)

गन्धकुटी—चैत्यालयका मध्य भाग जहां प्रतिमा विराजमान होती है। समवसरणमें अर्हंतके विराजनेका स्थान सदा गंध युक्त रहता है इससे उसे गंधकुटी कहते हैं। (सा० अ० ६–१४)

गन्ध नाम कर्म—जिसके उदयसे शरीरमें गंध हो।

गन्धमादन—जंबूद्वीपमें मेरूकी विदिशामें एक गजदंत (त्रि० गा० ६६३) इसपर सात कूट हैं। एक कूटका भी नाम है।

गन्धमालिनी—विदेहका बत्तीसवां देश जो सीतोदा नदीके उत्तर तटपर है; गंध मादनगजदंतका एक कूट। (त्रि० गा० ७४१)

गन्धर्व—व्यंतर देवोंमें चौथा भेद। इनकी भी दश जातियें हैं—१ हाहा, २ हूहू, ३ नारद, ४ तुंबुरु, ५ कदंब, ६ वासव, ७ महास्वर, ८ गीतरति, ९ गीतयशा, १० दैवत, (त्रि० गा० २६३) मेरु पर्वतके नंदनवनमें एक भवनका नाम (त्रि० गा० ६१९) विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें छत्तीसवां नगर (त्रि० गा० ७०५)

गन्धर्व सेना—पाटलीपुत्रके राजा गंधर्वदत्तकी कन्या गानमें बड़ी चतुर थी। इसने यह अहंकार किया जो मुझे जीत लेगा, उसके साथ विवाह करूंगी। एक पांचाल उपाध्याय ५०० शिष्यों सहित गया। व महेलके पास रातको तीन चार बजे ऐसा मधुर गान किया कि गंधर्वसेनाकी आंख खुली। वह गानके वशीभूत हो दौड़कर आने लगी, तो उसका पग फिसल गया और जमीनपर गिरकर मर गई। यह कर्णइन्द्रियकी विषयलंपटताका दृष्टांत है।

(आ० कथा० न० २९)

गन्धवती—शिखरी कुलाचलपर नौवा कूट।

(त्रि० गा० ७२९)

मत रहो, स्त्रियोंसे सम्बन्ध मत रक्खो; परिग्रह धनादिकी आकांक्षा मत करो, भिक्षामें जो लूखा सूखा भोजन मिले, उससे संतोषपूर्वक पेट भर लो और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करके अपने यति नामको सार्थक करो। इस छोटेसे ग्रन्थके पाठ करनेसे अनुमान होता है कि श्रीमल्लिषेणाचार्यको अपने समयके मुनियोंको शिथिलाचारमें प्रवृत्त देखकर बड़ी चोट लगी थी। उनके हृदयकी वह चोट सज्जनचित्तवल्लभके कई श्लोकोंसे स्पस्ट व्यक्त होती है। इसमें सन्देह नहीं कि वे बड़े दृढ़व्रती और विरक्त मुनि होंगे; परन्तु उस समयके सब ही मुनि ऐसे नहीं होंगे। उनमें अवश्य ही शिथिलाचारकी प्रवृत्ति होने लगी होगी। भट्टारकोंकी उत्पत्ति भले ही बहुत पीछे हुई हो परन्तु उनका बीज उनसे कई सौ वर्ष पहिले हमारे मुनिसमाजमें पड़ चुका होगा।

दूसरे मल्लिषेण आचार्य जिनकी कि '**मलधारिन्**' पदवी थी और जिनका उल्लेख इस लेखके प्रारंभमें किया गया है, शक संवत् १०५० की फाल्गुन कृष्ण तृतीयाको श्वेतसरोवरमें (श्रवणबेलगुलमें) समाधिस्थ हुए थे ऐसा मल्लिषेणप्रशास्तिसे[1] मालूम पड़ता है जो कि 'इन्स्क्रिप्शन्स एट् श्रवणबेलगोला' नामक अंग्रेजी पुस्तकमें प्रकाशित हो चुकी है। वे **अजितसेन** नामक आचार्यके शिष्य थे और बड़े भारी विद्वान् योगी और जितेन्द्रिय थे।

---

१ यह बड़ी भारी प्रशस्ति श्रवणबेलगोलाके पार्श्वनाथवस्ती नामके मन्दिरमें कई शिलाओंपर उकीरी हुई अब भी मौजूद है।

गिरनार महात्म्य-पुस्तक मुद्रित ।

गिरिशिखर-विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें ४९वां नगर । (त्रि० गा० ७०८);

गी

गीतयशा-गंधर्व जातिके व्यंतरोंमें नौमा भेद (त्रि. गा. २६३); गंधर्वोंका इन्द्र (त्रि. गा. २६४);

गीतरति-ईशानादि उत्तर इन्द्रोंकी सात प्रकार सेनामें नर्त्तकी सेनाका प्रधान देव (त्रि० गा० ४९७); गंधर्वोंका इन्द्र (त्रि०गा० २६४); गंधर्व जातिके व्यन्तरोंमें ८वां भेद (त्रि.गा. २६३);

गु

गुण-पूरे द्रव्यमें जो व्यापक हो व द्रव्यके साथ सर्व पर्यायोंमें पाया जावे । द्रव्यके साथ सहभावी हो। दो भेद हैं, सामान्यगुण जो सर्व द्रव्योंमें रहे, अस्तित्व आदि । विशेष गुण-जो सब द्रव्योंमें न व्यापें जैसे जीवका चेतना गुण (जै०सि० प्र० नं० ११३-६);

गुणकीर्ति-आचार्य सं० १०३७ (दि० ग्र० नं० ६६);

गुणचन्द्र-आचार्य सं० १०४९ (दि० ग्र० नं० ६७), भट्टारक सं० १२०० जैन पूजा पद्धति आदिके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ६८)

गुणधरस्वामी-जयधवल सिद्धांत तथा चूर्ण सिद्धांतकी टीका । (दि० ग्र० नं० ६९)

गुणनंदि-आचार्य सं० २६३, (दि० ग्र० नं० ६३); भट्टारक ऋषि मण्डन विधान आदिके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ६४)

गुणभद्र भट्टारक-पूजा स्तव, धन्यकुमार चरि आदिके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ७२)

गुणभद्राचार्य-त्रिभुवनाचार्यके शिष्य, कुन्देन्दु प्रकाश काव्य व हरिवंशपुराणके कर्ता । (दि०ग्र० नं० ७१)

गुणभद्रस्वामी-जिनसेनाचार्यके शिष्य, आदिपुराणका उत्तर भाग, उत्तरपुराण, आत्मानुशासन, भावसंग्रह, जिनदत्त काव्य आदिके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ७०)

गुणभूषण-कवि । भव्यजन चित्तवल्लभ, श्रावकाचार हिन्दी टीका सहित मुद्रित । (दि.ग्र.नं. ७३)

गुणरत्नाचार्य-षट्दर्शन समुच्चयटीका (६००० श्लोक) (दि० ग्र० नं० ७५)

गुणवती-वानरवंशी, वानरद्वीपके राजा अमरप्रभने लंकाके राक्षसवंशी राजाकी कन्या गुणवतीको विवाहा । इस राजाके समयसे बन्दरोंके चिह्न सब ध्वजाओंपर रक्खे गए तबसे वानरवंशी कहलाए ।

(इ० २ पृ० ५६)

गुणवर्म-कर्णाटक जैन कवि (सन् १०९०) लक्षण ग्रन्थकर्ता । प्रसिद्ध कवि । हरिवंशपुराणका कर्ता (क० नं० २०)

गुणवर्म-कर्णाटक जैन कवि । सन् १२२५ पुष्पदंतपुराणका कर्ता (क० नं० ५७) इसकी उपाधियें हैं । गुणाब्जवनकलहंस, कवितिलक आदि ।

गुणप्रत्यय अवधिज्ञान-देखो "क्षायोपशमिक अवधिज्ञान" ।

गुणयोनि-सर्व ही संसारी जीव जहां जहां जन्म धारण करते हैं उन उत्पत्ति स्थानोंको योनि कहते हैं । वे गुणोंकी अपेक्षा नौ प्रकारकी होती हैं। येही जीवोंके शरीर ग्रहणका आधाररूप स्थान हैं । वे नौ हैं-

१ सचित्त-जीव सहित शरीर, २ अचित्त-जीव रहित पुद्गल, ३ मिश्र-सचित्त अचित्त, ४ शीत-पुद्गल, ५ उष्ण-पुद्गल, ६ मिश्र, ७ संवृत-गुप्त पुद्गल, ८ विवृत-प्रगट पुद्गल, ९ मिश्र-संवृत विवृत । हरएक योनिमें तीन गुण होने ही चाहिये, चाहे तो सचित्त हो या अचित्त हो या मिश्र हो; तथा वह शीत हो या उष्ण हो या मिश्र हो, और वह संवृत हो या विवृत हो या मिश्र हो। देवनारकियोंकी योनि अचित्त ही है । गर्भसे पैदा होनेवालोंकी योनि सचित्त अचित्त मिश्ररूप है ।

स्वामि समन्तभद्र मैसूर प्रान्तस्थ कांचीनगरीके रहनेवाले थे। उस समय कांचीदेशमें जैनधर्मका बहुत अच्छा प्रचार था। वहां बड़े २ विद्वान् और तपस्वी ऋषिमुनि विहार किया करते थे। उस समय तक वहां बौद्धधर्मका प्रवेश नहीं हुआ था। क्योंकि ऐसा उल्लेख मिलता है कि ईसाकी तीसरी शताब्दिमें बौद्धभिक्षुक उस देशमें आये थे। परन्तु अन्य प्रान्तोंमें बौद्धधर्मका खासा प्रचार हो रहा था। उस प्रान्तमें ईसाकी तीसरी सदीसे लेकर जबतक भगवान् अकलंकदेवने अवतार लेकर जैनधर्मकी फिरसे विजय दुंदुभी नहीं बजाई, तबतक बौद्धधर्म बराबर रहा है। अस्तु।

स्वामीने गृहस्थधर्म धारण करके पीछे दीक्षा ली अथवा बाल्यावस्थामें ही दीक्षा ले ली, चरित्रमें इस बातका कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है। तो भी उनके सम्पूर्ण विषयोंके आश्चर्यकारक पांडित्यपर विचार करनेसे यह कहा जा सकता है कि उन्हें शिक्षा बाल्यकालमें ही मिली होगी। दीक्षा लेनेके पश्चात् स्वामीने कांचीदेशमें विहार करके जैनधर्मका बड़ा भारी उद्योत किया। परन्तु उसी समय उन्हें 'भस्मक व्याधि' नामका रोग हो गया। जिससे कि चाहे जितना खाया पिया जाय, सब भस्म हो जाता है और भूखकी वेदना बराबर बनी रहती है। इसके कारण मुनिधर्मका पालन करना असंभव हो गया। लाचार स्वामीको उस समय अपने चारित्र मार्गसे च्युत हो जाना पड़ा। भूख शांत करनेके लिये उन्होंने यतिवेष त्याग दिया और साधारण साधुका वेष धारण करके कांचीदेशसे बाहर चल दिया।

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण इन पांच लब्धिरूप परिणामोंका प्रकाश होता है तब पहलेसे एकदमसे जीव चौथे दरजेमें आकर सबसे पहले उपशम सम्यग्दृष्टी होता है। यह जीव मात्र एक अंतर्मुहूर्तके लिये अनन्तानुबंधी कषाय चार और मिथ्यात्व इन पांच कर्मप्रकृतियोंको उपशम कर देता है। उनका उदय नहीं होता है।

इस अंतर्मुहूर्तमें मिथ्यात्वके कर्मद्रव्यके तीन भाग होजाते हैं। कुछ कर्म सम्यक्त प्रकृतिरूप कुछ मिश्र रूप कुछ मिथ्यात्व रूप रहते हैं। अंतर्मुहूर्त पीछे यह जीव उपशम सम्यक्त अवश्य छोड़ेगा। यदि सम्यक्त प्रकृतिका उदय होगया तो क्षयोपशम या वेदक सम्यक्त होजायगा। गुणस्थान चौथा ही रहेगा। इस सम्यक्तका काल उत्कृष्ट ६६ सागर है। यदि मिथ्यात्वका उदय आगया तो पहले मिथ्यात्व गुणस्थानमें, यदि अनंतानुबन्धी किसी कषायका उदय आया तो दूसरे सासादनमें, यदि मिश्रका उदय आया तो तीसरे मिश्र गुणस्थानमें आजायगा। सासादन काल जघन्य एक समय उत्कृष्ट छः आवली है। इतना काल उपशम सम्यक्तके अन्तर्मुहूर्तमें शेष रहेगा तब यह दरजा होगा। इसमें सम्यक्त छूट गया, परन्तु मिथ्यात्व आया नहीं। यह नियमसे शीघ्र मिथ्यात्व गुणस्थानमें आजाता है, फिर सादि मिथ्यादृष्टी जीव मिश्रके उदयसे तीसरेमें या फिर अनंतानुबंधी व दर्शन मोहनीयकी तीन इन सातोंको उपशम करके चौथेमें आजाता है। तीसरेमें मिथ्यात्व व सम्यक्तके मिले हुए दही गुड़के मिले स्वादके समान भाव होते हैं। इसका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है। यहांसे फिर मिथ्यात्वमें जासक्ता या चौथेमें आ जाता है।

चौथे गुणस्थानमें क्षयोपशम सम्यक्की उन सातों प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टी भी हो सक्ता है, नहीं तो सातवें गुणस्थान तक क्षयोपशम सम्यक्त बना रहता है। क्षायिक सम्यक्त चौथेसे सातवें तक किसीमें भी प्राप्त होसकता है। क्षायिक सम्यक्त कभी भी छूटता नहीं है तथा जिसको यह प्राप्त होजाता है वह संसारमें अधिकसे अधिक ३३ सागर दो कोड़ पूर्व (आठ वर्ष और एक अंतर्मुहूर्त कम) वर्ष ही रहेगा फिर अवश्य मोक्ष होगा। यह सम्यक्ती यातो उसी भवसे या तीसरे या चौथेसे अवश्य मोक्ष होगा। चौथे गुणस्थानका भी उत्कृष्ट काल ३३ सागर कुछ वर्ष अधिक है। कोई२ जीव एकदमसे पहलेसे पांचवे व सातवेमें भी चढ़ जाते हैं। जब अप्रत्याख्यानावरण कषायका भी उपशम होजाता है तब यह जीव पांचवेंमें चौथे या पहलेसे आता है। वहां देशव्रती श्रावक होजाता है। ११ प्रतिमाओंके नियम ऐलक तक इसही गुणस्थानमें होते हैं। इस पांचवें गुणस्थानका काल जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट आठ वर्ष एक अंतर्मुहुर्त कम एक कोड़ पूर्व वर्ष है, जो उत्कृष्ट आयु विदेहमें होती है।

जब वही जीव प्रत्याख्यानावरण कषायका भी उपशम कर देता है तब पांचवे या पहलेसे एकदमसे सातवेंमें आता है तब साधुकी ध्यानमई अवस्था होती है। यहां वह अप्रमत्त होता है। यहां संज्वलन चार व नौ नोकषायका मंद उदय होता है। इसका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है। फिर तीव्र संज्वलनके उदयसे छठे प्रमत्त गुणस्थानमें आजाता है। साधुका उपदेश, आहार विहार आदि शरीर व वचनकी क्रिया इस छठे गुणस्थानमें होती है। इसका भी उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, फिर पीछे सातवेंमें आता है। कोई साधु आत्मध्यान विना अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं रह सक्ता है। छठा सातवां वारवार बदला करता है।

यहांसे आनेजानेको दो श्रेणियां हैं—एक क्षपक श्रेणी जहां मोहका क्षय किया जाता है। दूसरी उपशम श्रेणी जहां मोहका उपशम किया जाता है। जो उसी भवसे मोक्ष जायगा वह

लगाकर शिवजीके मन्दिरमें जा पहुंचे ! स्वामीजीको बारबार वेष बदलते देख यह शंका हो सकती है कि उनकी श्रद्धा कैसे ठीक रही होगी? इसका उत्तर कथाकोशमें इस प्रकार दिया गया है:—

अन्तस्फुरितसम्यक्त्वे बहिर्व्याप्तकुलिङ्गकः ।
शोभितोऽसौ महाकान्तिः कर्दमाक्तमणिर्यथा ॥

अर्थात् अन्तरंगके स्फुरायमान सम्यक्त्वसे और बाह्यके कुलिंग वेषसे स्वामी समन्तभद्र ऐसे शोभित होते थे, जैसे कीचड़में लिपटा हुआ अतिशय चमकदार मणि । सारांश यह है कि प्रबल रोगके कारण उनका चारित्र शिथिल हो गया था; परन्तु सम्यक्त्वमें या श्रद्धानमें कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा था, वे असंयतसम्यग्दृष्टी थे । अस्तु । जिस समय शिवजीको वह विपुल नैवेद्य अर्पण होने लगा, उस समय स्वामीजीने जो कि शैव साधुका वेष धारण किये हुए वहां खड़े थे, कहा—"यदि महाराजकी आज्ञा मुझे मिल जावे, तो मैं यह नैवेद्य स्वयं भोलानाथको भक्षण करा सकता हूं !" किसी चंचल पुरुषने यह आश्चर्ययुक्त वार्ता तत्काल ही राजासे जाकर कह दी । राजा बड़े ही प्रसन्न हुए और स्वामीजीके दर्शन करनेके लिये स्वयं चले आये । फिर उन्होंने आज्ञा दे दी कि यह सब प्रसाद इन्हीं नवागत ऋषि महाराजके हाथसे शिवजीको अर्पण हुआ करेगा । ऐसा ही हुआ । स्वामीजीने मन्दिरके किवाड़ बन्द किये और नैवेद्य जिससे कि सैकड़ों ब्राह्मणोंका पेट भरता था, आप अकेले गिलंकृत कर गये । फिर क्या था, हमेशाके लिये यह नियम हो गया । लोक

गुणस्थान कर्मरचना-१४८ कर्मप्रकृतियों- बंधकी अपेक्षा १२०=१४८-(१६ वर्णादि+१० बंधन संघात + २ मिश्र सम्यक्त) उदयकी अपेक्षा १२२=(१२०+मिश्र+सम्यक्त)। सत्तामें १४८।

	बन्ध			उदय			सत्ता		
नं०	बंधाभाव	बन्ध	बन्ध व्युच्छिति	उदयाभाव	उदय	उदय व्युच्छिति	सत्ता भाव	सत्ता	सत्ता व्युच्छिति
१	३	११७	१६	५	११७	५	०	१४८	०
२	१९	१०१	२५	११	१११	९	३	१४५	०
३	४६	७४	०	२२	१००	१	१	१४७	०
४	४३	७७	१०	१८	१०४	१७	०	१४८	१
५	५३	६७	४	३५	८७	८	१	१४७	१
६	५७	६३	६	४१	८१	५	२	१४६	०
७	६१	५९	१	४६	७६	४	२	१४६	८
८	६२	५८	३६	५०	७२	६	१०	१३८	०
९	९८	२२	५	५६	६६	६	१०	१३८	२०६
१०	१०३	१७	१६	६२	६०	१	४६	१०२	१
११	११९	१	०	६३	५९	२	१०	१३८	०
१२	११९	१	०	६५	५७	१६	४७	१०१	१६
१३	११९	१	०	८०	४२	३०	६३	८५	०
१४	०	१२०	०	११०	१२	१२	६३	८५	८५

व्युच्छिति=आगेके लिये नाश।

नोट-

१. मिथ्यात्वगुण०-में तीर्थङ्कर व आहारक द्विकका बंध नहीं होता; ये तीन और २ मिश्र व सम्यक्त ५ का उदय नहीं; व्युच्छति १६ की। मिथ्यात्व, हुंडक संस्थान, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्या०, नरकायु, असं० सं०, एकेंद्रिय ४, स्थावर, सूक्ष्म, आतप, अपर्याप्त, साधारण। उदयव्यु० ५-मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म अपर्याप्त, साधारण।

२. सासादन-बंध व्यु० २५ (अनं० क० ४ + स्त्यान गृ० + निद्रा२ + प्रचला २ + दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्जक, वामन, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलित, अप्र० विहायोगति, स्त्रीवेद, नीच गोत्र, ति० गति, ति० गत्या, तिर्यंच आयु, व उद्योत); यहां नरक गत्या० का उदय नहीं। उदय व्यु० ९-अनं० ४ + एकेंद्रिय + ४ + स्थावर। ३ का सत्व नहीं तीर्थंकर, आहारकद्विक।

३. मिश्र-यहां मनुष्य व देवायुका भी वन्ध नहीं। उदय-देव मनुष्य तिर्यंच ३ आनुपूर्वीका उदय भी नहीं, परन्तु मिश्रका उदय है। उदयव्यु० १ मिश्र। सत्ता तीर्थंकर नहीं।

४. अविरत सं०-यहां मनुष्य देव आयु व तीर्थंकरका वन्ध होगा। बंध व्यु० १०=(अप्र० ४ + मनुष्य गति + मनुष्य गत्या. + मनुष्य आयु + औदारिक श० + औदारिक अंगो० + वज्रवृषभनाराच) उदय-यहां ४ आनुपूर्वी व सम्यक्तका उदय भी होगा। उदय व्यु० १७=(अप्र० ४ + देवगति + देवगत्या. + देवायु + नरकगति + नरकगत्या + नरकायु + वैक्रियिक श० + वैक्रियिक अंगो० + मनुष्य गत्या० + तिर्यंगत्या० + दुर्भग + अनादेय + अयश) सत्ताव्यु० नरकायु।

५. देशविरत-बंध व्यु० ४। प्रत्या० ४। उदय व्यु० ८-(प्रत्या० ४ + तिर्यंचगति + तिर्यंचगत्या. + उद्योत + नीच गोत्र)। सत्ताव्यु०-१ तिर्यंचायु।

६. प्रमत्तविरत-बंध व्यु० ६-(अथिर + अशुभ + असाता + अयश + अरति + शोक)। उदय-आहारक द्विकका भी। उदय व्यु० ५-(आहारक द्विक + निद्रा २ + प्रचला २ + स्त्यान गृद्धि)।

लोगोंको धोखा क्यों देता रहा, और तूने हमारे सदाशिवको आजतक नमस्कार क्यों नहीं किया ? इसपर स्वामीने अपनी भस्मव्याधिकी सारी कथा कह सुनाई और नमस्कार करनेके विषयमें कहा कि ये सदाशिव रागद्वेष युक्त हैं और मैं वीतरागका उपासक हूं ! यदि मैं अपने अष्टकर्मविनिर्मुक्त वीतरागदेवका स्मरण करके नमस्कार करता तो इन्हें सहन नहीं होता ! इसलिये मैंने नमस्कार नहीं किया है। परन्तु राजाने कहा "चाहे जो हो अब तुझे नमस्कार करना ही पड़ेगा।" शिवकोटिका इस विषयमें अतिशय आग्रह देखकर स्वामीने कह दिया, "अच्छा आपका आग्रह ही है, तो मैं कल सबेरे आपके सदाशिवको नमस्कार करूंगा।" यह सुनकर राजा स्वामिसमन्तभद्रको रातभर अंधेरी कोठरीमें कैद रखनेकी आज्ञा देकर अपने महलमें चला गया।

रातको जब स्वामीजीने शुद्धचित्तसे जिनेश्वरदेवका स्मरण किया, तब जिनशासनी अम्बिकादेवीने उपस्थित होकर स्वामीकी स्तुति की और कहा; " सबेरे आपकी इच्छानुसार सब कार्य हो जायगा। आप स्वयंभूस्तोत्रकी रचना करके तीर्थंकरोंकी स्तुति कीजिये, इससे आपकी सब चिन्ता दूर हो जायगी" ऐसा कहकर देवी अदृश्य हो गई और स्वामी शुद्धान्तःकरणसे श्रीजिनेन्द्रदेवका ध्यान करने लगे।

सवेरा होते ही राजाने उस अंधेरी कोठरीमेंसे स्वामीको निकलवाया, जिसमें वायुका लेश भी प्रवेश नहीं हो सकता था और उन्हें सब प्रकारसे आरोग्य और प्रसन्न देखकर बड़ा अचरज मानां। बाहर

१. प्रभाते च समागत्य राज्ञा कौतूहलाद्द्रुतम् ।
समस्तलोकसंदोहसंयुतेन महाधिया ॥
कारागृहं समुद्घाट्य बहिराकारतो द्रुवम् ।
आरोग्यं तं समालोक्य सन्मुखं हृष्टचेतसः ॥

३२०० की, दूसरी १६००, तीसरी ८०० चौथी ४००, पांचवीं २००, छठी १०० की होगी। (जै० सि० प्र० ३८९)

गुणहानि आयाम—एक गुणहानिका समय समूह जैसे ऊपरके दृष्टांतमें ८, प्रत्येक गुणहानिका काल यही होगा। (जै० सि० प्र० ३९०)

गुणहानि स्पर्द्धकशलाका—एक गुणहानिके स्पर्द्धकों या कर्म द्रव्यका समूह जैसे ऊपरके दृष्टांतमें ३२०० या १६०० आदि (क० पृ० ८)

गुणायननन्दि—सं० ११९९में आचार्य (दि० ग्रं० नं० ६९)

गुणावा—पटना जिलेमें नवादा स्टेशनसे १॥मील। यहां गौतमस्वामी—श्री महावीरस्वामीके मुख्य गणधरका निर्वाण माना जाता है। चरणचिह्न हैं, मंदिर है (या० द० पृ० २१६)

गुप्ति—जब रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीताने दण्डक वनमें मिट्टीके वर्तनोंमें रसोई बनाई थी तब दो चारण मुनिको आहार दिया था, सुगुप्ति और गुप्ति (इ० २ पृ० १०७); मन, वचन, कायको रोककर धर्मध्यानमें रखना। (सर्वा० अ० ९–४)

गुरु—निर्ग्रंथ जैन साधु जो आरम्भ व परिग्रहसे रहित हो विषयोंकी आशासे वर्जित हो व आत्मज्ञान, ध्यान, व तपमें लीन हो। (रत्न. श्लो. १०)

गुरु उपासना (भक्ति)—निर्ग्रंथ साधुओंकी सेवा, उनसे उपदेश ग्रहण, उनका आज्ञानुवर्ती रहना (सा० अ० २–४१)

गुरुपादाष्टक—शांतिदास कृत।

गुरुदत्त—हस्तिनापुरके राजपुत्र। इसने एक सिंहको गुफा बंद करके मार डाला था। यह चंद्रपुरीमें ब्राह्मण पुत्र कपिल हुआ। गुरुदत्त मुनि हो कपिलके खेतमें ध्यान कर रहे थे। कपिलने मुनिको जला दिया, वे केवली हो मोक्ष गए। (आ० क० नम्बर ६९)

गुरुमूढता—जो साधु आरम्भवान परिग्रहवान हों संसारके प्रपंचमें फँसे हों उनका आदर मूढतासे करना। (रत्न० १४)

गुरु स्पर्श नाम कर्म—जिससे शरीर भारी हो। (सर्वा० अ० ८–११)

गुलजारीलाल—पंडित। आत्मविलास पद्यके कर्ता। (दि० ग्रं० नं० १८–४१)

गुलाबराय—पंडित। सं० १८४२ इटावामें शिखर विलास पद्यबद्ध मोतीरामके साथ रचा। (दि० ग्रं० नं० १९–४१)

गू

गूजरमल—पंडित। दलतावरके साथ जिनदत्त चरित्र पद्य रचा। (दि० ग्रं० नं० २०–४८)

गूढ दन्त—भरतकी आनेवाली उत्सर्पिणीमें चौथे चक्रवर्ती। (त्रि० गा० ८७७)

गूढब्रह्मचारी—जो कुमार अवस्थासे मुनि होकर मुनियोंके पास विद्याभ्यास करें, फिर असमर्थ होकर व राजादिकी प्रेरणासे गृहस्थमें आजावें। (गृ० अ० १२)

गृ

गृह—घर

गृहत्याग—घरमें रहना छोड़कर विरक्त होना।

गृहत्याग क्रिया—गर्भान्वय क्रियाओंमें २२ वी क्रिया—जब गृहस्थ वैराग्यवान हो तब बड़े पुत्रको सर्व गृह भार सौंपे व कहे कि मैंने अपने द्रव्यके तीन भाग किये हैं—एक भाग धर्मके लिये, दूसरा भाग घर खर्चके लिये। तीसरे भागमें मेरे सब पुत्र व पुत्रियोंको बराबर भाग है। तू सबकी रक्षा करना, ऐसा समझाकर घर छोड़ना कि इस भावसे मुनिदीक्षा धारूँगा। (गृ० अ० १८)

गृहपति—घरका प्रबन्धक, चक्रीका रत्न।

गृहस्थाचार्य—जो गृहस्थोंमें विद्या, बुद्धि, प्रभाव चारित्रादिमें बड़ा हो व धर्मक्रिया करा सकता हो ऐसा उत्तम गृहस्थ (सा० अ० २–१०); गणाधि० धर्माचार्य।

[illegible] जयजयकार किया । इसके पश्चात् जब स्वामी चौवीस तीर्थंकरोंकी स्तुति पूर्ण कर चुके, तब राजाने पूछा कि आप कौन हैं? आपने यह वेष क्यों धारण किया और यहां आनेका क्या कारण है? तब स्वामीने यह श्लोक कहकर अपना परिचय दिया—

काञ्च्यां नग्नाटकोऽहं
मलमलिनतनुर्लाम्बुशे पाण्डुपिण्डः ।
पुण्ड्रेण्ड्रे शाक्यभिक्षु—
र्दशपुरनगरे मिष्टभोजी परिव्राट् ॥
वाराणस्यामभूवं
शशधरधवलः पाण्डुराङ्गस्तपस्वी
राजन् यस्यास्ति शक्तिः
स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी ॥

भावार्थ—मैं काञ्ची नगरीका नग्न दिगम्बर यति; शरीरमें रोग होनेसे पुंढ्र नगरीमें बुद्धाभिक्षुक बनके रहा, फिर दशपुर नगरमें मिष्टान्नभोजी परिव्राजक बनके रहा, फिर इस वाराणसीमें आकर शैव तपस्वी बनके रहा । हे राजन्, मैं जैननिर्ग्रन्थवादी—स्याद्वादी हूं । यहा जिसकी शक्ति वाद करनेकी हो, वह मेरे सम्मुख आकर वाद करे ।

स्वामीका आत्मचरित्र सुनकर राजाने जान लिया कि ये कोई महान् विद्वान् आचार्य हैं । अलौकिक स्तवनके प्रभावसे जब शिव-मूर्ति खंडित हुई थी और चंद्रप्रभकी मूर्ति प्रगट हो गई थी, उसी समय राजाकी स्वामीपर भक्ति हो गई थी और यह उनका वृत्तान्त

स्वामीके पीछे ६२ वर्ष वाद १०० वर्षमें पांच श्रुतकेवली हुए।

गोम्मटस्वामी–श्रवणवेलगोला मैसुरमें बड़े पर्वत (ज्येष्ठ) पर श्री वाहुवलि, आदिनाथके पुत्रकी १७ फुट ऊँची मूर्ति तपके समयकी राजा चामुण्डराय कृत प्रतिष्ठित (सन् ९८३) विराजित दर्शनीय है, (मदरास जैन स्मारक पृ० २११)

(१) दूसरी मूर्ति ऐसी ही ४१ फुट ऊँची मंगलोर जिलेके कारकलकी पहाड़ीपर (प्रतिष्ठा सन् १४३१, (३) तीसरी मूर्ति ऐसी ही ३७ फुट ऊँची मंगकोरसे १४ मील येनुरकी पहाड़ीपर है। प्रतिष्ठा (सन् १६०३) (मदरासस्मारक पृ. १२८–१३०)

गोभेदा–पहली रत्नप्रभा पृथ्वीके खर भागकी छठी पृथ्वी, १००० योजन मोटी जहां भवनवासी व्यंतर रहते हैं। (त्रि० गा० १४७)

गोविंद–(कायस्थ) जैन पंडित। पुरुषार्थानुशासन श्रावकाचारका कर्ता। (दि० ग्र० ७६–८)

गौतम गणेश–इन्द्रभूत गौतम मूलमें ब्राह्मण थे, श्री महावीर तीर्थंकरके शिष्य जैन साधु हो सर्व जैन संघके शिरोमणि हुए। महावीरस्वामीके निर्वाण दिन केवलज्ञानी हुये, १२ वर्ष पीछे मोक्ष गए।

गौतम गृहस्थ–प्रतिक्रमण टीका व संबोध पंचासिकाके कर्ता। (दि० ग्र० नं० ७६)

गौतमस्वामी कवि–इष्टोपदेश सटीक, होराज्ञान ज्योतिषके कर्ता। (दि० ग्र० पृ० ५९)

गौरवदास- फफून्द निवासी (स० १५८१) यशोधरचरित्र पद्यके कर्ता (दि०ग्र०नं० २९–४२)

ग्र

ग्रन्थ–परिग्रह, गांठ, बंध।

ग्रंथि–८८ ज्योतिष ग्रहोंमें ३१ वां ग्रह (त्रि० गा० ३६६)।

ग्रह–नक्षत्र कुल ८८ होते हैं, सूर्य चंद्र आदि। (त्रि० गा० ३६३)

ग्रहण–अवग्रह, जानना, सूर्य या चन्द्रका ग्रहण पड़ना।

ग्रहीत मिथ्यात्व–जो मिथ्या श्रद्धान परके उपदेशसे हो। उसीके पांच भेद हैं–एकांत, संशय, विपरीत, अज्ञान, विनय या ३६३ प्रकार एकांतवाद है। सर्वा० अ० ८–१)

ग्राम–जो क्षेत्र वाड़से वेढ़ा हो (त्रि. गा.६७६)

ग्रैवेयिक–१६ स्वर्गके ऊपर नौ ग्रैवेयिक हैं अधोके तीन अवस्तन ग्रै०, मध्यमके तीन मध्यम ग्रै०, ऊपरके तीन उपरिम ग्रै० कहलाते हैं। अधोमें १११, मध्यमें १०७, ऊर्ध्वमें ९१ विमान हैं, कुल ३०९ विमान हैं। यहां अहमिन्द्र पैदा होते हैं। मिथ्यादृष्टी जैन साधु यहांतक आकर अहमिंद्र होसक्ते हैं। (त्रि० गा० ४६१, ४९९)

ग्लान मुनि-रोगी मुनि (सर्वा. अ. ९–२४)

घ

घटमान देश सम्बन्धी–जिस श्रावकके व्रतोंका अच्छा अभ्यास हो। (सा० अ० ३–८)

घटमान योगी–जिसको योग या ध्यानका अच्छा अभ्यास हो। (सा० अ० ३–६)

घटा–चौथे नर्ककी पृथ्वीका सातवां इन्द्रक विला (त्रि० गा० १५८)

घटिका–(घड़ी) २४ मिनिटकी।

घन–दही आदि पीने योग्य गाढ़े पदार्थ। (सा० अ० ८–५७)

घन धारा–घन संख्याका समूह, जैसे एकका घन एक, दोका घन ८, तीनका घन २७। ऐसे घन स्थान केवलके आधे प्रमाण तक होंगे। जैसे यदि केवलज्ञान ६५५३६ हो तो आधा ३२७६८ हुआ। इसका घन मूल ३२ है। इसके ऊपर घन मूल स्थान ३३,३४,३५,३६,३७,३८,३९,४० ऐसे आठ होंगे। इस ८ को ३२ में मिलाए ४० होंगे। इनको आसन्न घनमूल कहते हैं। इसका घन ६४००० होगा सो यही घनधाराका अंतिम स्थान होगा। केवलज्ञान तक घनधाराके स्थान केवलज्ञानके आसन्न घनमूल प्रमाण हैं। (त्रि० गा० ६०)

स्वामिसमन्तभद्राचार्यने फिर अनेक देशोंमें विहार किया, अनेक एकान्त वादियोंको परास्त करके उन्हें अनेकान्त पक्षकी महिमा दिखलाई, जहां तहां जैनधर्मकी विजयदुन्दुभी वजाई, विद्वत्तापूर्ण अनेक ग्रन्थोंकी रचना की और अन्तमें कठिन तपस्या करके एक वनमें समाधि लगाये हुए शरीर त्याग कर दिया।

मैसूर राजमें **श्रवणवेलगुल** नामका जैनियोंका प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है, जिसे लोग जैनवद्री भी कहते हैं। वहांपर वाहुवलि या गोमठस्वामीकी एक अद्वितीय और सुविशाल प्रतिमा है। जिस पर्वत-पर यह प्रतिमा है, उसे विन्ध्यगिरि कहते हैं। विन्ध्यागिरिके एक जिनमन्दिरमें एक विशाल शिलापर "मल्लिषेणप्रशास्ति" नामका वड़ा भारी लेख खुदा हुआ है, जिसकी नकल 'प्रो० राइस' नामके एक अंग्रेजने अपनी इन्स्क्रिप्शन् ऐट् श्रवणवेलगोला नामकी पुस्तकमें प्रकाशित की है। उक्त लेखमें भगवान् समन्तभद्रके विषयमें निम्नालिखित परिचय मिलता है,—

वन्द्यो भस्मकभस्मसात्कृतिपटुः पद्मावतीदेवता-
दत्तोदात्तपदः स्वमन्त्रवचनव्याहूतचन्द्रप्रभः।
आचार्य्यः स समन्तभद्रगणभृद्येनेह काले कलौ
जैनं वर्त्म समन्तभद्रमभवद्भद्रं समन्तान्मुहुः॥

चूर्णिका—यस्यैवं विद्यावादारम्भसंरम्भविजृम्भिताभिव्यक्तयः सूक्तयः—

पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता
पश्चान्मालवसिन्धुढक्कविषये काञ्चीपुरे वैदिशे।
प्राप्तोऽहं करहाटकं वहुभटं विद्योत्कटं सङ्कटम्

घ्राण इन्द्रिय–नाशिका इंद्रिय जिससे दो तरहका गन्ध मालूम हो । देखो शब्द "इंद्रिय विषय"

च

चक्र–सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें अन्तका सातवां इन्द्रक विमान । (त्रि० गा० ४६६)

चक्रधर–चक्रवर्ती राजा ।

चक्रपुर (शुक्र)–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें १९ वां नगर । (त्रि० गा० ६९९)

चक्रपुरी–विदेहमें २९ वीं राजधानी । (त्रि० गा० ७१९)

चक्ररत्न–सुदर्शनचक्र जो चक्रवर्ती व अर्द्ध चक्रीके होता है ।

चक्रवर्ति (चक्री)–छः खण्डके पृथ्वीके स्वामी भरत व ऐरावतमें हरएक उत्सर्पिणी व अवसर्पिणीमें जब तीर्थंकर २४ होते हैं तब ये १२ होते हैं । विदेह कुल १६० हैं। वहां यदि उत्कृष्ट हो तो एक समय १६० हों व जघन्य हो तो वीस हों (त्रि० गा० ६८१) चक्रवर्तीकी विभूति ऐसी होती है–

८४ लाख हाथी ८४ लाख रथ ११८ लाख घोड़े	१४ रत्न–चक्र, असि, छत्र, दण्ड, मणि, चर्म, काकिणी, गृहपति, सेनापति

हाथी, घोड़ा, शिल्पी, स्त्री व पुरोहित । नवनिधियें होती हैं । उनके नाम हैं—

(१) कालनिधि–छः ऋतुकी वस्तुदायक, (२) महा कालनिधि–भोजनदाता, (३) पांडुनिधि–अन्नदाता, (४) माणवक निधि–आयुधदाता, (५) शंखनिधि–वादित्रदाता, (६) नैसर्पनिधि–मंदिर दायक, (७) पद्मनिधि–वस्त्रदाता, (८) पिंगल निधि–आभूषण दाता, (९) रत्ननिधि–रत्नदाता । छानवे हजार स्त्रियें होती हैं, ३२००० मुकुटबद्ध नमन राजा करते हैं । (त्रि० ६८२–६८३)

वर्तमान भरतके १२ चक्री जो गत चौथे कालमें होचुके हैं वे हैं–भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शांतिजिन, कुंथुजिन, अरजिन, सुभौम, महापद्म, हरिषेण, जय, ब्रह्मदत्त । भविष्यमें होनेवाले भरतके १२ चक्री–भरत, दीर्घदंत, मुक्तदंत, गूढदंत, श्रीषेण, श्रीभूति, श्रीकांत, पद्म, महापद्म, चित्रवाहन, विमलवाहन, अरिष्टसेन ।

(त्रि० गा० ८१५–८७७)

चक्रेश्वरी देवी–श्री ऋषभदेवकी भक्त शासनदेवी । (प्र० सा० पृ० ७१)

चक्षुष्मान–वर्तमान अवसर्पिणीके १४ कुलकरोंमेंसे आठवें कुलकर ।

चंचत–पहले सौधर्म ईशान युगलका ग्यारहवां इन्द्रक विमान (त्रि० गा० ४६४)

चन्द्र–प्राकृत लक्षण व्याकरणके कर्ता आचार्य (दि० ग्र० नं० ४०९)

चतुरानुयोग–चार अनुयोग–१ प्रथमानुयोग जिसमें महान पुरुषोंके चरित्र हैं । २ करणानुयोग–जिसमें लोकवर्णन व गणित आदि है । ३ चरणानुयोग–जिसमें मुनि व श्रावकके चारित्रका कथन है । ४ द्रव्यानुयोग–जिसमें जीवादि छः द्रव्यचर्चा हो ।

चतुराश्रम–चार आश्रम मानव जीवनके होते हैं । ब्रह्मचर्याश्रम–ब्रह्मचर्य पालते हुए विद्या पढना । गृहस्थाश्रम–गृहस्थमें स्त्रीसहित रह धर्म अर्थ व काम पुरुषार्थ साधना, वानप्रस्थाश्रम–सातमी प्रतिमासे ११वीं तक व्रत पालनेवाले स्त्रीरहित त्यागी । सन्यासाश्रम–निर्ग्रंथ साधु हो तप करनेवाले । (श्रा० पृ० २९६)

चतुरिन्द्रिय जाति कर्म–जिसके उदयसे चार इंद्रिय धारी जंतुओंकी जातिमें पैदा हो ।

चतुर्गति–चार गति–नरक, तिर्यंच, देव, मनुष्य ।

चतुःरत्न–बलभद्रके पास चार रत्न होते हैं । रत्नोंकी माला, हल, मुसील, गदा (त्रि.गा. ८२९)

चतुर्थ वेला–एक दिन बीचमें भोजन करके तीसरे दिन लेना । एक दिनमें दो दफे भोजन नियत है । जहां पहले दिन एक दफे तीसरे दिन एक दफे बीचके दिन कुछ नहीं । वह चतुर्थ वेला है या एकोपवास । (त्रि० गा० ७८५)

इसलिये आराधनासारकी कथाको भी कोई निरी कपोलकल्पित कहनेका साहस नहीं कर सकता है ।

भगवान समन्तभद्रके विषयमें आराधनासार और मल्लिषेणप्रशस्तिमें जो कुछ लिखा है, उससे अधिक परिचय अभीतक कहीं भी प्राप्त नहीं हुआ । इसलिये हमारे पाठकोंको भी इसीसे सन्तोष करना पड़ेगा।

यद्यपि आचार्य महाराजकी जीवनसम्बन्धी वार्ता अन्य किसी ग्रन्थमें नहीं मिलती है तो भी उनकी प्रसिद्ध इतनी अधिक रही है कि प्रायः सभी बड़े २ ग्रन्थकारोंने उनका नाम स्मरण किया है और बड़ी भारी भक्तिसे उनकी स्तुति की है । उस स्तुतिको पढ़कर और उसके बनानेवाले आचार्योंकी योग्यताका विचार करके अनुमान होता है कि शायद भगवत्समन्तभद्रका सिंहासन हमारी आचार्यपरम्परामें सबसे ऊंचा है । देखिए, थोड़ेसे प्रशंसासूचक श्लोक हम यहांपर उद्धृत करते हैं:—

राजाधिराज अमोघवर्षके परमगुरु और प्रख्यात महापुराणके कर्त्ता श्रीजिनसेनाचार्यने अपने ग्रन्थके आदिमें लिखा है;—

नमः समन्तभद्राय महते कविवेधसे ।
यद्वचोवज्रपातेन निर्भिन्ना कुमताद्रयाः ॥ ४३ ॥
कवीनां गमकानां च वादीनां वाग्मिनामपि ।
यशः सामन्तभद्रीयं मूर्ध्नि चूडामणीयते ॥ ४४ ॥

भावार्थ—जिसके वचनरूपी वज्रके आघातसे मिथ्यारूपी पर्वत चूर चूर हो गये, उस कविश्रेष्ठ समन्तभद्रको नमस्कार हो । कविता करनेवाले कवि, कविकी कृत्तिका मर्म शोधनेवाले गमक, वाद करके विजयी होने वाले **वादी** और मनोरंजक व्याख्यान देनेवाले **वाग्मि,**

८. उत्तराध्ययन–उपसर्ग व परीषह सहनेकी विधि।

९. कल्प्य व्यवहार–योग्य आचरणका विधान।

१०. कल्प्याकल्प्य–योग्य अयोग्य व्यवहार निरूपण।

११. महाकल्प्य–महान पुरुषोंके योग्य आचरण।

१२. पुंडरीक–चार देवोंमें उपजनेके साधन।

१३. महा पुंडरीक–इंद्र अहमिंद्र आदिमें उपजनेका साधन।

१४. निषिद्धिका–प्रमाद कृत दोषहरण प्रायश्चित्त। (गो० जी० गा० ३६७–३६८)

चतुर्दश मनु–देखो "चतुर्दश कुलकर"।

चतुर्दश मल दोष–मुनि १४ मल दोष रहित भोजन करते हैं–१ नख, २ केश या रोम, ३ द्वेन्द्रियादि मृतक जीव, ४ हाड़, ५ जव गेहूंका बाहरी भाग कण, ६ कुंड–शालि आदिका भीतरी भाग, ७ पीप, ८ चमड़ा, ९ रुधिर, १० मांस, ११ बीज उगने योग्य, १२ फल, १३ कंद, १४ मूल। (मू० प्र० ११३)

चतुर्दश मार्गणा–जिन २ धर्म विशेषोंसे संसारी जीवोंको खोजा जाय। (जै.सि.प.नं.४६८–४६९) वे १४ हैं–(१) ४ गति (२) ५ इंद्रिय (३) ६ काय (४) १५ योग (५) ३ वेद (६) २५ कषाय (७) ८ ज्ञान (८) ७ संयम (९) ४ दर्शन (१०) ६ लेश्या (११) २ भव्यत्व (१२) ६ सम्यक्त, (१३) २ संज्ञित्व (१४) २ आहार।

चतुर्दश रत्न–चक्रवर्तीके १४ रत्न होते हैं–७ चेतन–१ गृहपति, २ सेनापति, ३ शिल्पी, ४ पुरोहित, ५ स्त्री, ६ हाथी, ७ घोडा व ७ अचेतन–१ चक्र, २ असि (खडग), ३ छत्र, ४ दंड, ५ मणि, ६ चर्म, ७ कांकिणी (त्रि.गा. ६८२)

इनमेंसे ७ चेतनरत्न विजयार्द्धसे लाए जाते हैं वृषभाचलपर नाम लिखनेवाला कांकिणी रत्न, गुफामें प्रकाश कारक मणिरत्न व जलपर चलवत गमनका कारण चर्मरत्न श्रीदेवीके मंदिरसे लाते हैं। छत्र, दंड, असि, चक्र ये चार आयुधशालामें होते हैं। (त्रि० गा० ८२३)

चतुर्दश राजू–चौदह राजू–यह लोक १४ राजू ऊँचा है। देखो (प्र० जि० पृ० ११०)

चतुर्दश विद्या–(१) तंत्र, (२) सामुद्रिक, (३) स्वप्न, (४) ज्योतिष, (५) योग, (६) शिल्प, (७) कोक, (८) अश्व, (९) कृषि, (१०) नाट्य, (११) वास्तु (मकान बनाना), (१२) रसायन, (१३) धनुष्य, (१४) ब्रह्म।

चतुर्निकाय देव–४ प्रकार देवोंके समूह भवनवासी, व्यंतर जो प्रथम पृथ्वीके खर भाग व पंक भागमें रहते व कुछ मध्य लोकमें रहते हैं। ज्योतिषी जो मध्यलोकमें सूर्य चंद्रादि विमानोंमें रहते हैं व कल्पवासी जो स्वर्गोंमें रहते हैं।

चतुःपाद–८८ ज्योतिष ग्रहोंमें ३२ वां ग्रह (त्रि०. गा० ३६८)

चतुर्विंशति जिन स्तुति–सरस्वती भवन बंबईमें है।

चतुर्भावना–चार भावनाएं मुनि व गृहस्थको विचारना चाहिये–(१) सर्व प्राणी मात्रपर मैत्रीभाव, (२) गुणवानोंपर प्रमोद भाव, (३) दुःखितोंपर करुणाभाव, (४) अविनयी जीवोंपर मध्यस्थ या उपेक्षा या वैराग्य भाव। (सर्वा० अ० ७–११)

चतुमास–चार मास। आषाढ़ सुदी १४से कातिक सुदी १४ तक व कातिक सुदी १५ तक साधु ऐलक व क्षुल्लक नियमसे एक स्थलपर रहते हैं। शेष श्रावक इच्छानुसार वर्तते हैं।

चतुर्मुख–श्री महावीर स्वामीके मोक्षके १००० वर्ष पीछे प्रथम कल्की ७० वर्ष आयु जो जैन धर्मका विरोधी होता है (त्रि० गा० ८५१)

चतुर्मुख यज्ञ (मह)–महा मुकुटबद्ध राजाओंके द्वारा अर्हतकी महा पूजा, सर्वतोभद्र पूजा। (श्रा० अ० २–१८)

चतुर्मुखी–विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें १८वां नगर। (त्रि० गा० ६९८)

ज्ञानार्णवके कर्त्ता श्रीशुभचन्द्राचार्यने अपनी लघुता प्रगट करते हुए कहा है,

समन्तभद्रादि कवीन्द्रभास्वतां
स्फुरन्ति यत्रामलसूक्तिरश्मयः।
व्रजन्ति खद्योतवदेव हास्यतां
न तत्र किं ज्ञानलवोद्धता जनाः॥

अर्थात्—जहां समन्तभद्रादि कवीन्द्र सूर्योंकी निर्मल सूक्तिरूपी किरणें प्रकाशमान हैं, वहां ज्ञानरूपी लवसे उद्धत हुए पुरुष जुगनू (पटवीजने) के समान क्या हास्यको प्राप्त नहीं होते हैं? अवश्य होते हैं।

चन्द्रप्रभचरितमहाकाव्यके कर्त्ता महाकवि श्रीवीरनन्दिने कहा है:—

गुणान्विता निर्मलवृत्तमौक्तिका
नरोत्तमैः कण्ठविभूषणीकृता।
न हारयष्टि परमेव दुर्लभा
समन्तभद्रादिभवा च भारती॥

भावार्थ—गुण अर्थात् सूतसे गूंथी हुई (पक्षमें गुणयुक्त) उज्वल गोल मोतियोंवाली (निर्मल व्रतरूपी मोतियोंवाली) और श्रेष्ठ पुरुषोंके कंठको शोभित करनेवाली हारकी लड़ी परम दुर्लभ नहीं किन्तु समन्तभद्रादि आचार्योंके मुखसे उत्पन्न हुई भारती—सरस्वती ही दुर्लभ है।

जैसा कि ऊपरके श्लोकोंमें कहा है भगवत्समन्तभद्र काव्य, न्यायादि सभी विद्याओंमें पारंगत होंगे। यही कारण है कि काव्य,

चंद्र प्रज्ञप्ति–दृष्टिवाद बारहवें अंगमें पहला परिकर्म । इसमें चंद्रमाका गमन परिवारादिका वर्णन है । इसके मध्यम पद ३६०५०००० हैं ।

(गो० जी० ३६३३)

चंद्रवंश–सोमवंश–ऋषभदेवके पुत्र बाहुबलि उनके पुत्र सोमयशने इस वंशकी स्थापना की ।

(ह० पु० १६८)

चंद्रमाल–पश्चिम विदेह सीतोदा नदीके उत्तर तट देवारण्य वेदीसे आगे पहला व क्षार पर्वत ।

(त्रि. गा. ६६९)

चन्द्रसागर ब्र०–पांडवपुराण, रामायण व नागकुमार षट्पदीके कर्ता (दि. ग्र. नं. ७९)

चंद्रसेन कवि–केवलज्ञान हुए ज्योतिषके कर्ता।

(दि. ग्र. नं. ७७)

चन्दाबाई–संस्कृतज्ञ पंडिता जैन बालाविश्राम आरा (विहार) की संस्थापिका । स्त्री शिक्षोपयोगी ग्रन्थोंकी कर्ता । 'जैनमहिलादर्श' मासिक पत्रकी संपादिका । बाबू निर्मलकुमारजीकी चाची, हाल मौजूद हैं ।

चन्द्रा–देवोंके इंद्रोंमें तीन सभाएं होती हैं । मध्यकी परिषदका नाम (त्रि. गा. २२९)

चंद्राभ–लौकांतिक देवोंका एक भेद जो आदित्य और वह्नि जातिके मध्यमें रहते हैं । (त्रि. गा. ५३७) विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणिका ३६ वां नगर ।

(त्रि. गा. ७००)

चन्द्राभा–ज्योतिषी देवोंमें इन्द्र चन्द्रकी पहली पट्ट महादेवी । (त्रि. गा. ४४७)

चमर–भवनवासीके असुरकुमारोंके प्रथम इंद्र (त्रि. गा. २०९) चमरेन्द्रकी ज्येष्ठ देवियां पांच हैं–कृष्णा, सुमेघा, सुका, सुकाढ्या और रत्नी ।

(त्रि. गा. २३६)

चमरेन्द्र–देखो "चमर" ।

चम्पक–वन, जो नंदीश्वर द्वीपमें वापिकाके तटपर १ लाख योजन लम्बे व आधलाख योजन चौड़े हैं । (त्रि. गा. ९७२)

चम्पतराय बारिष्टर–जैनधर्मके महत्वको बतानेवाली की आफ-नालेज, जैन लॉ, सन्यास धर्म, गृहस्थ धर्म आदि पुस्तकोंके निर्माता व प्रकाशक । अपना जीवन जैनधर्मकी सेवामें बितानेवाले । आप हाल विद्यमान हैं ।

चम्पापुरी–(नाथनगर) विहार प्रांत भागलपुरसे ४ मील नाथनगर टेशनसे मिली हुई । वहां श्री वासपूज्य बारहवें वर्तमान भरत तीर्थंकरके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान चार कल्याणक हुए हैं । दो मंदिर हैं । चरणचिन्ह प्राचीन हैं । यहांसे ॥ मील चम्पानालामें दि० जैन प्राचीन बिम्ब हैं । भादों सुदी ११से १५ तक मेला होता है । (या. द. ए. २१७)

चम्पाराम–पं० पाटनवाले (सं० १९१६) गौतम परीक्षा, वसुनंदि श्रावकाचार, चर्चासागर, योगसार वचनिकाके कर्ता (दि. ग्र. ए. २४–४२)

चय–श्रेणी व्यवहार गणितमें समान हानि व वृद्धिका परिमाण (जै. सि. प्र. नं० ३९७) इसका कायदा यह है कि निषेकहार (गुण हानि आयामका दूना) में एक अधिक करके गुण हानिका प्रमाण जोड़कर आधा करे । जो आवे उसको गुण हानि आयामसे गुणा करे । इस गुणन फलका भाग विवक्षित गुण हानिके द्रव्यको देनेसे चय निकलती है । जैसे ३२०० गुणहानिका द्रव्य हो, गुणहानि ६ व उसका आयाम ८ हो तो चय क्या होगी ?

$$\frac{३२००}{१} \div \frac{८\times२+१\times८}{२} = ३२००\times\frac{२}{२००} = ३२ \text{ चय है ।}$$

(जैन. सि. प्र. नं. ३९८)

चरणानुयोग–वह जिन शास्त्र जिसमें मुनि व श्रावकका चारित्र लिखा हो ।

चरमदेह–अंतिम शरीर, उसीसे मोक्ष होगी ।

चरमकालि–कर्मोंकी स्थिति घटाकर कर्म परमाणुओंको जो अंतसमय नीचेके निषेकोंमें मिलाए जावें । (ल. ए. १०)

चरमकालि पतन काल–कर्मके द्रव्यकी अंतिम फालिको नीचेके निषेकोंमें मिलानेका अंतिम समय ।

(ल. ए. २८)

इनके सिवाय और भी कई छोटी बड़ी टीकाएं सुनी जाती हैं । अब विद्वान् पाठक सोचें कि, जिसका मंगलाचरण ही इतना गौरवयुक्त है, वह सारा ग्रन्थ कैसा होगा ? सच पूछो, तो इस ग्रन्थके नष्ट होनेसे जैनधर्मका सर्वस्व खो गया है ।

महाभाष्यके सिवाय **रत्नकरंडश्रावकाचार, युक्त्यनुशासन, जिनशतकालंकार, विजयधवलटीका, तत्त्वानुशासन,** ये पांच ग्रन्थ और भी समन्तभद्रस्वामीके बनाये हुए प्रसिद्ध हैं । यद्यपि इनमेंसे रत्नकरंड और युक्त्यनुशासनके सिवाय शेष ग्रन्थोंका प्रचार नहीं है और न सर्वत्र पाये जाते हैं, परन्तु कई प्राचीन भडारोंमें इनका अस्तित्व सुना जाता है । न्याय और सिद्धान्तके सिवाय जब आचार्य महाराजकी योग्यता काव्यादि विषयोंमें भी थी, तब कहा जा सकता है कि उन्होंने काव्य व्याकरणादि विषयोंके ग्रन्थ भी बनाये होंगे । कोई व्याकरण ग्रन्थ तो उनका ज़रूर ही होगा । क्योंकि शाकटायन व्याकरणमें उनका मत कई जगह दिया गया है । काव्योंमें केवल एक जिनशतकालंकार हाल ही छपकर प्रकाशित हुआ है । खेद है कि हम लोगोंके अभाग्यसे उनके और किसी भी काव्य व्याकरणादि ग्रन्थका पता नहीं चलता है । *

---

* यह लेख श्रीयुत तात्यानेमिनाथ पांगलके मराठी लेखका संशोधित और परिवर्द्धित अनुवाद है ।

मध्यमें विजयवान नाभि गिरि है उसपर निवासी व्यंतरदेव । (त्रि. गा. ७१९)

चारण ऋद्धि–तपके बलसे मुनियों द्वारा प्राप्त शक्ति जिससे आकाशमें जासके हैं । "देखो क्रिया ऋद्धि"

चारित्र–संसारके कारणोंको मिटानेके लिये उत्सुक महात्माका सम्यग्ज्ञानी होते हुए कर्मोंके ग्रहणके निमित्त क्रियाओंसे विरक्त होना; आत्माके शुद्ध स्वभावमें रमण करना निश्चय चारित्र है, मुनिका महाव्रतादि चारित्र पालना व्यवहार चारित्र है । इसके पांच भेद हैं—

(१) सामायिक–इंद्रिय दमन व प्राणी रक्षाके साथ आत्मामें समभाव पूर्वक लय होना, (२) छेदोपस्थापना–प्रमादसे अनर्थ होजानेपर उसको दूर करके फिर सामायिकमें स्थिर होना, (३) परिहार विशुद्धि–विशेष संयम जिससे प्राणियोंको बाधा न हो । (४) सूक्ष्म साम्पराय–अति सूक्ष्म कषाय सहित चारित्र जो १०वें गुणस्थानमें होता है, (५) यथाख्यात चारित्र–मोहके उदयके अभाव पूर्ण वीतराग भाव । (सर्वा. अ. ९–१०)

चारित्र आराधना–चारित्रको भलेप्रकार सेवना ।

चारित्र आर्य–चारित्रको पालनेवाले मुनि, इनके दो भेद हैं-१ अभिगत चारित्रार्य–विना उपदेशके ही आत्मध्यानसे ११ व १२ वें गुणस्थानपर पहुंचनेवाले । २- अनभिगत चारित्रार्य–जो बाहरी उपदेशको पाकर जिनके चारित्र मोह उपशम या क्षय हुआ हो । (त० रा० ७)

चारित्र औपशमिक–जो चारित्रमोहनीयके उपशमसे वीतराग भाव हो ।

चारित्र क्षायिक–जो चारित्रमोहनीयके नाशसे चारित्र हो ।

चारित्र चूडामणि व चूडामणि–कौमार व्याकरण व मंत्र सुत्रामृतीके कर्ता (दि.ग्र.नं० ८१)

चारित्र मोहनीय कर्म–जो आत्माके शांत भाव व वीतराग भावको मलीन करे । इसके १६ कषाय व नौ नोकषाय ऐसे २५ भेद हैं । (सर्वा.अ.८–९)

चारित्र लब्धि–चारित्रकी प्राप्ति । श्रावकके देश चारित्रको मिथ्यादृष्टी या असंयत सम्यग्दृष्टी प्राप्त करता है तथा सकल चारित्र जो मुनि धर्म है उसे ये दोनों एकदमसे तथा देश संयत श्रावक प्राप्त करता है । (ल० गा० १६०)

चारित्र विनय–तत्वको समझकर चारित्र पालनेमें चित्तका उत्साह व आदर । (सर्वा. अ. ९–२३)

चारित्र सार–चामुण्डराय कृत सं० गद्य श्लोक १८७५ सटीक मुद्रित ।

चारित्र सिंह साधु–कातंत्र विभ्रमावचूरिके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ४०६)

चारित्र सुन्दर कवि–महिपाल चरित्रके कर्ता । (दि० ग्र० नं० ८२)

चारुकीर्ति–चन्द्रप्रभकाव्य टीका, आदिपुराण, यशोधरचरित्र, नेमि निर्वाण काव्य टीका, पार्श्व निर्वाण काव्य टीकाके कर्ता । (दि. ग्र. नं० ८३)

चारुकीर्ति पंडिताचार्य–गीत वीतराग ५७९ श्लोक (गीतगोविंदके ढंगपर) के कर्ता । (दि० ग्र० नं० ४०६)

चारुदत्त–चम्पापुरके सेठ भानुदत्त और सुभद्राका पुत्र, अन्तमें मुनि हो स्वर्ग गया । (आ० क० नं० ३५)

चारुदत्त चरित्र–मुद्रित ।

चारुनन्दि–आचार्य सं० १२१६ (दि० ग्र० नं० ८४)

चार्ट–सार्वधर्म, २४ तीर्थंकर मान, गुणस्थान, पंचपरमेष्टी गुण मुद्रित ।

चिकत्स पंडित–गुणपाठ वैद्यक ग्रन्थ २०००का कर्ता । (दि० ग्र० नं० ८५)

चिकागो प्रश्नोत्तर मुद्रित–इसमें वे प्रश्न हैं जो वीरचंद राघवजी गांधीको आत्मानन्दजी श्वे० साधुने दिये थे ।